एमएएचआई –608

मास्टर ऑफ आर्ट्स (हिस्ट्री)

चतुर्थ सेमेस्टर

भारतीय संस्कृति: सल्तनत काल से आधुनिक काल तक

अध्ययन मण्डल

अध्यक्ष,

कुलपति,

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी

अध्ययन मण्डल के सदस्यों के नाम

1. प्रोफेसर गिरिजा प्रसाद पाण्डे, निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
2. प्रोफेसर रामेश्वर प्रसाद बहुगुणा, इतिहास विभाग एवं संस्कृति विभाग, जामिया मिल्लिआ इस्लामिय विश्वविद्यालय , दिल्ली
3. प्रोफेसर शन्तन सिंह नेगी , इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, एच.एन.बी. गढ़वाल केन्द्रीय विश्वविद्यालय,गढ़वाल
4. प्रोफेसर वी.डी.एस. नेगी , इतिहास विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, एस.एस.जे. परिसर, अल्मोड़ा
5. डॉ. मदन मोहन जोशी, समन्वयक इतिहास विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

पाठ्यक्रम समन्वयक: डॉ. मदन मोहन जोशी

इकाई लेखन-

इकाई एक-	सल्तनत कालीन संस्कृति डॉ.तबस्सुम निगार, इतिहास एवं संस्कृति विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, विवि
इकाई दो-	विजयनगर साम्राज्य की संस्कृति डॉ. आनन्द कुमार शर्मा, बालाजी विहार, लश्कर, ग्वालियर
इकाई तीन-	मुगल कालीन संस्कृति सिराज मुहम्मद, इतिहास विभाग, एम.बी.पी.जी.स्नात. महाविद्यालय,हल्द्वानी।
इकाई चार-	आधुनिक भारत: विकास यात्रा एवं विविध प्रवृत्तियां सिराज मुहम्मद, इतिहास विभाग, एम.बी.पी.जी.स्नात. महाविद्यालय,हल्द्वानी।
इकाई पांच-	आधुनिकतावाद: कला एवं साहित्य जगत सिराज मुहम्मद, इतिहास विभाग, एम.बी.पी.जी.स्नात. महाविद्यालय,हल्द्वानी।
इकाई छह-	उत्तर आधुनिकतावाद: कला,साहित्य,संगीत एवं स्थापत्य सिराज मुहम्मद, इतिहास विभाग, एम.बी.पी.जी.स्नात. महाविद्यालय,हल्द्वानी।
इकाई सात-	आधुनिक भारत में लिंग भेद एवं जाति व्यवस्था डॉ विकास रंजन कुमार, इतिहास विभाग, राज0 स्नात0 महा0 बाजपुर, ऊ0सिं0नगर,
इकाई आठ-	आधुनिक भारत में प्रिंट मीडिया, इलैक्ट्रोनिक मीडिया तथा सूचना क्रांति डॉ. मनोज शर्मा, इतिहास विभाग, किरोड़ीमल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय,
इकाई नौ-	समकालीन भारत की चुनौतियां डॉ. मनोज शर्मा, इतिहास विभाग, किरोड़ीमल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय,

आई.एस.बी.एन.	:
कॉपीराइट	: उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
प्रकाशन वर्ष	:
Published by	: उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल-263139
Printed at	:

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

ब्लॉक एक

इकाई एक :सल्तनत कालीन संस्कृति

1-1 प्रस्तावना

1-2 उद्देश्य

1-3 वास्तुकला

1-3-1 संरचनात्मक स्वरुप

1-3-1-1 मेहराब और गुम्बद

1-3-1-2 भवन निर्माण सामग्री

1-3-1-3 साज–सज्जा

1-3-2 शैलीगत विकास

1-2-2-1 प्रारंभिक स्वरुप

1-2-2-2 ।ाल्जी काल

1-2-2-3 तुगलक़ काल

1-2-2-4 अंतिम चरण

1-4 चित्रकला

1-4-1 भित्ति चित्र

1-4-2 पाण्डुलिपि चित्रण

1-4-3 सुलेख कला

1-5 संगीत

1-6 सूफीवाद एवं भक्ति

1-6-1 सूफीवाद

1-6-2 भारत में सूफी मत का विकास

1-6-3 चिश्ती सिलसिला

1-6-4 सुहरावर्दी सिलसिला

1-6-5 भक्ति आन्दोलन

1-7 विशेष शब्दावली

1-8 प्रस्तावित अध्ययन सामग्री

1-9 निबंधात्मक प्रश्न

1-1 प्रस्तावना

संस्कृति शब्द की उत्पत्ति अंग्रेजी शब्द के कल्चर (ब्नसजनतम) से लिया गया है। जिसक अर्थ फसलों एवं पशुओं की उत्पत्ति तथा धार्मिक उपासना के कार्य से सम्बंधित था, क्योकि मानव जीवन के आरंभिक समय में मनुष्य ये ही कार्य करता था। सामान्यतः ऐसा माना जाता है कि संस्कृति स्वाभाव का भाग नहीं बल्कि यह मनुष्य या समाज के अधिग्रहण से सम्बंधित है। और इतिहासकार प्रायः संस्कृ ति को एक ऐसे तत्व के रूप में परिभाषित करते हैं जो किसी क्षेत्र या काल के समाज के बारे में बताती है। यदि संस्कृति उपलब्धियों के सन्दर्भ में सोची जाय तो उपलब्धियों की परिभाषा भी उतनी ही आवश्यक हो जाती है, जितनी संस्कृति की। संस्कृति किसी समाज में गहराई तक व्याप्त गुणों का समग्र रूप से एक नाम है, जो उस समाज के सोचने, विचारने कार्य करने, बोलने, साहित्य, कला, वास्तुकला, चित्रकला इत्यादि में परिलक्षित होती है। इतिहासकार इसे किसी क्षेत्र काल के समाज की थाती कहते हैं। इस तरह संस्कृति किसी समाज की सामाजिक परंपरा का प्रतीत होती है।

यदि हम भारत की बात करें तो यहाँ की सांस्कृतिक परंपरा अत्यंत संपन्न रही है। भारतीय सभ्यता की एक अन्य विशेषता आत्मसात करने की प्रवृत्ति है। इसी विशेषता के कारण विभिन्न जातियों के रूप में यूनानी, शक, कुषाण, हुण, तुर्क, अफगान, मंगोल, आदि भारत की ओर आये। ये लोग अपने साथ अपनी सांस्कृतिक परम्पराएँ भी लाये। इन सभी ने मिल जुल कर कालांतर में एक समग्र संस्कृ ति का विकास किया है, और भारतीय संस्कृति को अत्यधिक विविधता प्रदान की है। इस मेलजोल से अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए, जिसमे इस मिलीजुली संस्कृति के विकास को बढाया। आज ये तत्व भारत की अवधारणा का आधार बन गए हैं। इसी कड़ी में यहाँ हम भारत में तुर्कों के आगमन के पश्चात् सल्तनत कालीन संस्कृति को समझने और मूल्यांकन करने का प्रयास करेंगे।

सल्तनत काल के सांस्कृतिक विकास को विकास के एक नए चरण के रूप में देखा जा सकता है। जब ये तुर्क भारत आये तब उनकी आस्था केवल इस्लाम में ही नहीं थी, बल्कि शासन, कला, वास्तुकला, धार्मिक विश्वासों, साहित्य इत्यादि के बारे में उनके विचार भी इस्लामी थे। यहाँ आने पे उनके इन विचारों का समन्वय भारतीय कला, वास्तुकला, धार्मिक विश्वास साहित्य इत्यादी के साथ हुआ, जिससे एक नयी समन्वित संस्कृति का जन्म हुआ। परन्तु यह समन्वय की प्रक्रिया काफी लम्बी थी, जिसमे मंदिरों इमारतों की तोड़–फोड़ के साथ–साथ निर्माण की प्रक्रिया सतत रूप से चलती रही। इसके साथ ही अन्य क्षेत्रों में भी आपसी लेन देन की प्रक्रिया शुरू हुई। जैसे कला, वास्तुकला,

संगीत, साहित्य, धार्मिक विश्वास, रीती–रिवाज़, और समारोहों में हमें देखने को मिलता है। इस प्रक्रिया में अनेक उतार चढ़ाव भी आये जिनका स्वरुप अलग–अलग कालों में अलग–अलग रहा।

1-2 उद्देश्य

इस अध्याय में हमें मध्यकालीन भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं को समझ सकेगे जो निम्न हैंकृ

•मध्यकाल में वास्तुकला के क्षेत्र में हो रहे परिवर्तन को समझने का प्रयास करेंगे।

•कुछ चुने हुए उदाहरण के माध्यम से इमारतों पर की गयी कलात्मकता को समझेंगे।

•मध्यकालीन संस्कृति के अंतर्गत चित्रकला एवं उसकी विभिन्न कलात्मकता का निरिक्षण कर सकेंगे।

•संगीत के क्षेत्र में सल्तनत कालीन सुल्तानों की रूचि एवं अन्य संगीत की चर्चा करेंगे।

•सल्तनत कालीन संस्कृति के अंतर्गत साहित्य एवं मध्यकालीन धार्मिक विश्वासों में सूफीवाद एवं भक्ति आन्दोलन को समझेंगे।

1-3 वास्तुकला

हिंदुस्तान में नए शासक वर्ग के आगमन और दिल्ली सल्तनत की स्थापना ने उत्तरी भारत की सांस्कृतिक संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन किये। नए संरचनात्मक स्वरुप मेहराब और गुम्बद इमारतों के निर्माण की सामग्री, दीवारों पर की गयी कलाकारी का प्रयोग किया गया। तुर्की शासकों ने फारसी परम्पराओं से परिचित कराया जो सामान रूप से विकसित थीं। इसके अतिरिक्त अनेक क्षेत्रीय शैली का भी विकास हुआ। यह सत्य है की ये फारसी परम्पराएँ उस समय भारत में प्रचलित सांस्कृतिक परम्पराओं के बिलकुल भिन्न थीं, परंतु मध्य एशिया में प्रमुख सांस्कृतिक केन्द्रों से विद्वानों, कलाकारों और गायकों के आगमन से ये परम्पराए मिलकर एक नयी संस्कृति को जन्म दे रही थीं।

1-3-1- संरचनात्मक स्वरुप

1-3-1-1 मेहराब और गुम्बद

उत्तर भारत में 13वीं सदी के बाद इमारतों के निर्माण में पक्की इंटों का प्रयोग आरम्भ हो गया था, और अब भवनों के निर्माण में तेज़ी आ रही थी। इसका मुख्य कारण चुने–गारे का सीमेंट के रूप में प्रयोग आरम्भ हो चूका था। इसके साथ ही वैज्ञानिक तरीके से मेहराबों को बनाने के लिए ईंटो को वक्राकार रूप में लगाया जाने लगा। इन इंटों को इस रूप में जोड़ने के लिए अच्छे सीमेंट की आवश्यकता थी, जोकि चुने और गारे के रूप में मौजूद था। इन वैज्ञानिक तरीके से बने मेहराब की छतों और शिखरों का स्थान गुम्बद ने ले लिया। मेहराब को विभिन्न रूप में बनाया गया, परन्तु उसके नुकीले स्वरुप के यथावत रहने दिया गया। मेहराब में एक अन्य प्रयोग चार कोनों वाला मेहराब जो तुगलक सुल्तानों द्वारा अपनाया गया, यह अंत तक प्रचलन में रहा।

गुम्बद निर्माण में भी विशेष तकनीक की अवश्यकता थी। एक ऐसे तकनीक की अवश्यकता थी जो गोलाकार गुम्बद के निर्माण के लिए कमरे की वर्गाकार अथवा आयताकार दीवारों को गोलाकार गुम्बद के रूप में परिवर्तित कर सके। इसके लिए एक चोर से दूसरी चोर तक वर्ग विन्यास को बगली डाट की मदद से बहुभुजीय योजना में बदल दिया गया। बाद में 15वीं सदी में इसमें और परिवर्तन किये गए।

1-3-1-2 भवन निर्माण सामग्री

तुर्कों के आगमन के बाद पहली बार खान से निकले हुए पदार्थों का प्रयोग इमारतों के निर्माण में किया गया। पक्की इमारतों में पत्थरों मा अत्यधिक प्रयोग हुआ। नीव में खुरदुरे एवं छोटे पत्थरों का प्रयोग किया गया, और उपरी इमारतों के लिए उबड़–खाबड़ पत्थरों का प्रयोग हुआ। प्लास्टर के लिए खड़िया (जिप्सम) का प्रयोग हुआ। और चूने के प्लास्टर का प्रयोग पानी रिसने वाले स्थान पर किया गया।

1-3-1-3 साज–सज्जा

इस्लामी भवनों में साज सज्जा केवल सुलेख, ज्यामिति, और फूल–पत्तियों या बेल तक ही सिमित थे। सुलेख के लिए जिस लिपि का प्रयोग किया जाता उसे कूफी कहा जाता है। इसके साथ ही पत्थरों पर गचकारी और चित्रकला का भी प्रयोग किया गया है।

1-3-2- शैलीगत विकास

1-3-2-1 आरम्भिक स्वरुप

यह काल स्थापत्य कला के विकास की प्रथम अवस्था माना जाता है। इस काल की इमारतें हिन्दू शैली के प्रत्यक्ष प्रभाव में बनी है, जिनकी दीवारें चिकनी एवं मज़बूत हैं। इस काल में बने स्तम्भ, मंदिरों के प्रतीक होते हैं। पहली बार हिन्दू कारीगरों द्वारा बरामदों में मेहराबदार दरवाज़े बनाये गये। मुसलमानों द्वारा निर्मित मस्जिदों के चारों तरफ़ मीनारें उनके उच्च विचारों का प्रतीक के रूप में प्रयोग किये गए। शासकों की आरंभिक आवश्यकताओं में रहने के लिए आवास तथा मस्जिद की अवश्यकता थी। जिसके लिए अनेक मंदिरों और अन्य स्थानों को अपने हिसाब से बदल डाला और अनेक को नष्ट करके उसकी सामग्री को नए भवनों के निर्माण कार्य में इस्तेमाल किया। आरंभिक सल्तनत काल में बनी कुछ प्रमुख इमारतों का वर्णन इस प्रकार है–

कुव्वत–उल–इस्लाम मस्जिद

1192 ई. में तराइन के युद्ध में पृथ्वीराज चौहान के हारने पर उनके क़िले श्रायपिथौराश पर अधिकार कर वहाँ पर श्कुव्वत–उल–इस्लाम मस्जिदश का निर्माण कुतुबुद्दीन ऐबक ने करवाया। वस्तुतः कुतुबुद्दीन ऐबक ने दिल्ली विजय के उपलक्ष्य में 1192 ई. में कुत्ब अथवा कुव्वत–उल–इस्लाम मस्जिद का निर्माण कराया।

कुतुबमीनार

यह मीनार दिल्ली से 12 मील की दूरी पर मेहरौली गाँव में स्थित है। प्रारम्भ में इस मस्जिद का प्रयोग अजान (नमाज़ के लिए बुलाना) के लिए होता था, पर कालान्तर में इसे श्कीर्ति स्तम्भश के रूप में माना जाने लगा। 1206 ई. में कुतुबुद्दीन ऐबक ने इसका निर्माण कार्य प्रारम्भ करवाया। ऐबक इस इमारत में चार मंज़िलों का निर्माण कराना चाहता था, परन्तु एक मंज़िल के निर्माण के बाद ही उसकी मृत्यु हो गई। बाद में इसकी शेष मंज़िलों का निर्माण इल्तुतमिश ने 1231 ई. में करवाया।

अढ़ाई दिन का झोपड़ा

कुतुबुद्दीन ऐबक ने अढ़ाई दिन का झोपड़ा, जो वास्तव में एक मस्जिद है, का निर्माण अजमेर में करवाया। इसके नाम के विषय में जॉन मार्शल का कहना है कि, चूँकि इस मस्जिद का निमार्ण मात्र ढाई दिन में किया गया था, इसलिए इस मस्जिद को श्अढ़ाई दिन का झोपड़ाश कहा जाता है। पर्सी ब्राउन का कहना है कि, यहाँ एक झोपड़ी के पास अढ़ाई दिन का मेला लगता था, इस कारण इस स्थान को अढाई दिन का झोपड़ा कहा गया है।

विग्रहराज बीसलदेव ने इस स्थान पर एक सरस्वती मन्दिर बनवाया था। बीसलदेव द्वारा रचित हरिकेलि नामक नाटक तथा सोमदेव कृत ललित विग्रहराज की कुछ पंक्तियाँ आज भी इसकी दीवारों पर मौजूद है। कुतुबुद्दीन ऐबक ने इसे तुड़वाकर मस्जिद बनवायी। यह मस्जिद कुब्बत मस्जिद की तुलना में अधिक बड़े आकार की एवं आकर्षक है। इस मस्जिद के आकार को कालान्तर में इल्तुतमिश द्वारा विस्तार दिया गया। इस मस्जिद में तीन स्तम्भों का प्रयोग किया गया, जिसके ऊपर 20 फुट ऊँची छत का निर्माण किया गया है। इसमें पाँच मेहराबदार दरवाज़े भी बनाये गये हैं। मुख्य दरवाज़ा सर्वाधिक ऊँचा है। मस्जिद के प्रत्येक कोने में चक्रकार एवं बांसुरी के आकार की मीनारें निर्मित हैं।

नासिरुद्दीन महमूद का मक़बरा या सुल्तानगढ़ी

स्थापत्य कला के क्षेत्र में इस मक़बरे के निर्माण को एक नवीन प्रयोग के रूप में माना जाता है। चूँकि तुर्क सुल्तानों द्वारा भारत में निर्मित यह पहला मक़बरा था, इसलिए इल्तुतमिश को मक़बरा निर्माण शैली का जन्मदाता कहा जा सकता है। सुल्तानगढ़ी मक़बरे का निर्माण इल्तुतमिश ने अपने ज्येष्ठ पुत्र नासिरुद्दीन महमूद की याद में कुतुबमीनार से लगभग 3 मील की दूरी पर स्थित मलकापुर में 1231 ई. में करवाया था। पर्सी ब्राउन के शब्दों में सुल्तानगढ़ी का शाब्दिक अर्थ है– 'गुफा का सुल्तान'। यह मक़बरा आकार में दुर्ग के समान ही प्रतीत होता है। मक़बरे की चाहरदीवारी के मध्य में लगभग 66 फुट का आंगन है। आंगन के बीच में अष्टकोणीय चबूतरा निर्मित है, जो धरातल में मक़बरे की छत का काम करता है। आंगन में कही भूरे रंगका पत्थर तो कही संगमरमर का प्रयोग किया गया है। मस्जिद के पूर्वी छोर पर एक खम्बा स्थित है, जिसकी ऊँचाई चहारदीवारी से अधिक है। स्तम्भयुक्त मस्जिद के बरामदे में एक छोटी मस्जिद का निर्माण किया गया था, जिसमें राज परिवार के लोग नमाज़ पढ़ा करते थे। मस्जिद में एक तहखाना भी बना था, जहाँ राज–परिवार के लोग एकान्तिक क्षण व्यतीत किया करते थे। मस्जिद में निर्मित मेहराबों में मुस्लिम कला एवं पूजास्थान तथा गुम्बद के आकार की छत में हिन्दू कला शैली का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

इल्तुतमिश का मक़बरा

इस मक़बरे का निर्माण इल्तुतमिश द्वारा कुव्वत मस्जिद के समीप लगभग 1235 ई. में करवाया गया था। 42 फुट वर्गाकार इस इमारत के तीन तरफ़ पूर्व, दक्षिण एवं उत्तर में प्रवेश द्वार बना है। पश्चिम की ओर का प्रवेश द्वार बंद हे। 30 घन फीट का बना आन्तरिक कक्ष अपनी सुन्दरता के कारण हिन्दू तथा जैन मन्दिरों के समकक्ष ठहरता है। मक़बरे की दीवारों पर कुरान की आयतें खुदी हैं। मक़बरे में बने गुम्बदों में घुमावदार पत्थर के टुकड़ों का प्रयोग किया गया है। गुम्बद के चोकोर कोने में गोलाई लाने के लिए जिस शैली का प्रयोग किया गया है, उसे गुम्बद निर्माण के इतिहास में 'स्क्रीच शैली' के नाम से जाना जाता है। यह मक़बरा एक कक्षीय है।

इल्तुतमिश के अन्य निर्माण कार्यों में बदायूँ में निर्मित 'हौज–ए–शम्सी', 'शम्सी' ईदगाह' एवं जामा मस्जिद प्रमुख है। जामा मस्जिद, जिसका निर्माण 1223 ई में हुआ, यह अपने समय की सर्वाधिक बड़ी एवं मज़बूत मस्जिद है। इसका पुनरूर्निमाण मुहम्मद बिन तुग़लक़ एवं अकबर ने करवाया था। जोधपुर राज्य के नागौर स्थान पर इल्तुतमिश ने 1230 ई. में 'अतारिकिन' नामक एक विशाल दरवाज़े का निर्माण करवाया। कालान्तर में मुहम्मद बिन तुग़लक़ ने इसका जीर्णोद्वार करवाया। मुग़ल सम्राट अकबर ने इसी दरवाज़े से प्रेरित होकर बुलन्द दरवाज़े का निर्माण करवाया था।

सुल्तान बलबन का मक़बरा

सुल्तान बलबन का मक़बरा वास्तुकला की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण रचना है। इस मक़बरे का कक्ष वर्गाकार है। सर्वप्रथम वास्तविक मेहराब का रूप इसी मक़बरे में दिखाई देता है।

मुइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह

इस दरगाह या ख़ानक़ाह का निर्माण इल्तुतमिश ने करवाया था। कालान्तर में अलाउद्दीन ख़लिजी ने इसे विस्तृत करवाया। बलबन ने रायपिथौरा क़िले के समीप स्वयं का मक़बरा एवं लाल महल नामक मकान का निर्माण करवाया। दिल्ली में बना उसका मक़बरा शुद्ध इस्लामी शैली में निर्मित है।

1-3-2-2 ख़लिजी कालीन वास्तुकला

इल्ततुमिश की मुत्यृ के बाद ख़लिजी सुल्तान अलाउद्दीन ख़लिजी ने अनेक निर्माण कार्य शुद्ध इस्लामी शैली के अन्तर्गत करवाये। अलाउद्दीन ने सीरी नामक गाँव में एक नगर की स्थापना की। जियाउद्दीन बरनी ने इस नगर को 'नौ' अथवा श्नया नगरश कहा। इस नगर के बाहर अलाउद्दीन ख़लिजी ने एक तालाब एवं उसके किनारे कुछ भवनों का निर्माण करवाया था, आज 'हौज–ए–रानी' के नाम से प्रसिद्ध यह स्थान काफ़ी जीर्ण–शीर्ण स्थिति में है। अमीर खुसरो ने इसकी प्रशंसा में लिखा है– 'पानी के बीच गुम्बद समुद्र की सतह पर बुलबुले के समान है।"

अलाई दरवाज़ा

इसका निर्माण कार्य अलाउद्दीन ख़लिजी द्वारा 1310–1311 ई. में आरम्भ करवाया गया। इसके निर्माण का उद्देश्य कुव्वत मस्जिद में चार प्रवेश द्वार बनाना था– दो पूर्व में, एक दक्षिण में और एक उत्तर में। इसका निर्माण ऊँची कुर्सी पर किया गया है। कुर्सी पर सुन्दर बेल–बूटे बने थे। दरवाज़े में लाल पत्थर एवं संगमरमर का सुन्दर संयोग दिखता है, साथ ही आकर्षक ढंग से कुरान की आयतों को लिखा गया है। इस मस्जिद में बनी एक गुम्बद में पहली बार विशुद्ध वैज्ञानिक विधि का प्रयोग किया गया है। अलाई दरवाज़ा की साज–सज्जा में बौद्ध तत्वों के मिश्रण का आभास होता है। अलंकरण में इतनी सघनता है कि, कहीं पर इंच भर भी जगह रिक्त नहीं है। द्वारों के अन्दर पुष्पमालानुमा झालर अत्यधिक आकर्षक है। पर्सी ब्राउन ने अलाई दरवाज़े के विषय में कहा है कि– 'अलाई दरवाज़ा इस्लामी स्थापत्य कला के विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।' जॉन मार्शल ने अलाई दरवाज़े के विषय में कहा है कि– "अलाई दरवाज़ा इस्लामी स्थापत्य कला के ख़ज़ाने का सबसे बड़ा हीरा है।" पहली बार वास्तविक गुम्बद का स्वरूप अलाई दरवाज़ा में ही दिखाई देता है।

जमात ख़ाँ मस्जिद

जमात ख़ाँ मस्जिद का निर्माण अलाउद्दीन ख़लिजी ने निज़ामुद्दीन औलिया की दरगाह के समीप करवाया। पूर्णतः इस्लामी शैली में निर्मित इस मस्जिद में लाल पत्थर का प्रयोग किया गया है। इसके डाटों के कोने में कमल के पुष्प से इस मस्जिद में हिन्दू शैली के प्रभाव का आभास होता है। डाटों पर कुरान की आयतें भी उत्कीर्ण हैं। इस मस्जिद में तीन कमरे बने हैं, जिनमें दो कमरे आयताकार हैं तथा मस्जिद के मध्य भाग में निर्मित कमरा चोकोर है। पूर्णरूप से इस्लामी परम्परा में निर्मित यह भारत की पहली मस्जिद है।

ख़लिजी काल में पूर्णत निर्मित अन्य निर्माण कार्यों में कुतुबुद्दीन मुबारक ख़लिजी द्वारा भरतपुर में निर्मित 'ऊखा मस्जिद' एवं ख़ज़्रि ख़ाँ द्वारा निर्मित निज़ामुद्दीन औलिया की दरगाह विशेष उल्लेखनीय है।

1-3-2-3 तुग़लक़ काल में वास्तुकला

तुग़लक़ वंश के शासकों ने ख़लिजी कालीन इमारतों की भव्यता एवं सुन्दरता के स्थान पर इमारतों की सादगी एवं विशालता पर अधिक ज़ोर दिया। अपने पूर्व शासकों के विरुद्ध ग़यासुद्दीन तुग़लक़ ने सादगी एवं मितव्ययिता की नीति अपनाई। मुहम्मद बिन तुग़लक़ की प्रशासनिक समस्याओं एवं धनाभाव के कारण फ़िरोज़ शाह तुग़लक़ ने पुरानी विचारधारा के कारण साज–सज्जा पर अधिक ध्यान नहीं दिया। इस काल की प्रमुख इमारतें निम्नलिखित हैं–

तुग़लक़ाबाद

ग़यासुद्दीन तुग़लक़ ने दिल्ली के समीप स्थित पहाड़ियों पर तुग़लक़ाबाद नाम का एक नया नगर स्थापित किया। रोमन शैली में निर्मित इस नगर में एक दुर्ग का निर्माण भी हुआ है। इस दुर्ग को 'छप्पन कोट' के नाम से भी जाना जाता है। दुर्ग की दीवारें मिस्र के पिरामिड की तरह अन्दर की ओर झुकी हुई हैं। इसकी नींव गहरी तथा दीवारें मोटी हैं। क़िले के अन्दर निर्मित सुल्तान के राजमहल के विषय में इब्न बतूता ने कहा कि, 'राजमहल सूर्य के प्रकाश में इतना चमकता था कि, कोई भी व्यक्ति उसे टकटकी बाँधकर नहीं देख पाता था।' राजमहल में शाही दरबार तथा जनान खाने का भी निर्माण किया गया था। तुग़लक़ाबाद नगर में प्रवेश के लिए 52 द्वार बनाये गये थे। राजमहल के निर्माण में टाइलों का उपयोग किया गया था। सर जॉन मार्शल ने इस निर्माण कार्य के विषय में कहा है कि, 'इसकी सुदृढ़ता की व्यवस्था धोखा है, क्योंकि निर्माण निम्नकोटि का है। सम्भवतः मंगोलों के आक्रमण के भय से इसका निर्माण इतनी शीघ्रता से किया गया कि, इसमें विशिष्ट शैली तथा कला का अभाव सर्वत्र दिखाई देता है।

ग़यासुद्दीन का मक़बरा

कृत्रिम झील के अन्दर निर्मित इस मक़बरे की दीवारें चौड़ी एवं मिस्र के पिरामिडों की तरह भीतर की ओर झुकी हैं। यह मक़बरा चर्तुभुज के आकार के आधार पर स्थित है, मक़बरे की ऊँचाई लगभग 81 फीट है। मक़बरें में ऊपर संगमरमर का सुन्दर गुम्बद बना है, गुम्बद की छत कई डाटों पर आधारित है। मक़बरे में आमलक और कलश का प्रयोग हिन्दू मंदिरों की शैली पर किया गया है। लाल पत्थर से निर्मित इस मक़बरे के चारों ओर मज़बूत मीनार का निर्माण किया गया है। फर्ग्युसन के शब्दों में– 'मक़बरे की ढालू दीवारें एवं क़रीब–क़रीब मिस्र के ढंग की दृढ़ता, विशाल एवं सुदृढ़ दीवारें एक योद्धा

की समाधि के नमूने का निर्माण कर रही हैं। इस मक़बरे का पंचभुजीय होना इसकी महत्त्वपूर्ण विशेषता है। जॉन मार्शल के शब्दों में– श्इस मक़बरे की दृढ़ता तथा सादगी के आधार पर हम कह सकते हैं कि, उस महान् योद्धा की समाधि के लिए इससे उपयुक्त स्थान और कोई नहीं हो सकता था।श मुहम्मद तुग़लक़ ने तुग़लक़ाबाद के समीप ही आदिलाबाद नामक क़िले का निर्माण करवाया था।

जहाँपनाह नगर

मुहम्मद तुग़लक़ ने इस नगर की स्थापना रायपिथौरा एवं सीरी के मध्य करवाई थी। नगर के चारों तरफ़ 12 गज़ मोटी दीवार सुरक्षा के दृष्टिकोण से बनाई गई थी। इस नगर के अवशेषों में श्सतपुत्रश अर्थात् श्सात मेहराबों का पुत्रश आज भी वर्तमान में है। अवशेष के रूप में बचा 'विजय मंडल' सम्भवतः महल का एक भाग था। पर्सी ब्राउन ने इस निर्माण कार्य के विषय में कहा है कि– 'इसकी स्थापत्य शैली से स्पष्ट हो जाता है कि, इसके कारीगर सुन्दर भवन निर्माण शैली से पूर्व परिचित थे।

सतपुलाह

मुहम्मद तुग़लक़ द्वारा सात मेहराबों वाला एक दो मंज़िला पुल की स्थापना की गयी। इसका निर्माण एक कृत्रिम झील में पानी पहुँचाने के लिए किया गया था।

बारह खम्भा

धर्मनिरपेक्ष इमारतों में तुग़लक़ कालीन सामंत निवास के लिए बनी इस इमारत का विशिष्ट स्थान है। इस इमारत की महत्त्वपूर्ण विशेषता सुरक्षा तथा गुप्त निवास है। फ़िरोज़शाह तुग़लक़ की स्थापत्य कला में रुचि के विषय में फ़रिश्ता ने कहा है कि– 'सुल्तान फ़िरोज़शाह तुग़लक़ वास्तुकला का महान् प्रेमी था। उसने 200 नगर, 20 महल, 30 पाठशालायें, 40 मस्जिदें, 100 अस्पताल, 100 स्नानगृह, 5 मक़बरे एवं 150 पुलों का निर्माण करवाया। फ़िरोज़ ने फ़िरोज़ाबाद, फ़तेहाबाद, हिसार, जौनपुर आदि नगरों का निर्माण करवाया। यमुना नदी पर निर्मित नहर इसका महत्त्वपूर्ण निर्माण कार्य हैं।

कोटला फ़िरोज़शाह

सुल्तान फ़िरोज़शाह तुग़लक़ ने पाँचवी दिल्ली बसायी, जिसमें एक महल की स्थापना की। यह श्कोटला फ़िरोज़शाहश के नाम से विख्यात है। सुल्तान फ़िरोज़शाह तुग़लक़ ने दिल्ली में कोटला फ़िरोज़शाह दुर्ग का निर्माण करवाया। इसका क्षेत्रफल शाहजहाँबाद से दो–गुना है। दुर्ग के अन्दर निर्मित इमारतों में जन सामान्य के लिए आठ मस्जिदें एवं व्यक्तिगत प्रयोग के लिए निर्मित एक मस्जिद उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त दुर्ग के अन्दर तीन राजमहल एवं अनेक शिकार खेलने के स्थानों का निर्माण किया गया है। दुर्ग के अन्दर निर्मित जामा मस्जिद के सामने सम्राट अशोक का टोपरा गाँव से लाया गया स्तम्भ गड़ा है। मेरठ से लाया गया अशोक का दूसरा स्तम्भ 'कुश्क–ए–शिकार' महल के सामने गड़ा है। इसके साथ ही दुर्ग के अन्दर एक दो मज़िली इमारत के अवशेष प्राप्त हुए हैं, जिसका उपयोग विद्यालय के रूप में किया जाता था।

फ़िरोज़शाह का मक़बरा

यह मक़बरा एक वर्गाकार इमारत है। इसका प्रधान दरवाज़ा दक्षिण की तरफ़ है। मक़बरे की मज़बूत दीवारों को फूल–पत्तियों एवं बेल–बूटों से सजाया गया है। मक़बरें में संगमरमर का भी प्रयोग किया गया है। संगमरमर तथा लाल पत्थर के संयोग से निर्मित इस मक़बरे का गुम्बद अष्टकोणीय ड्रम पर निर्मित है।

ख़ान–ए–जहाँ तेलंगानी का मक़बरा

ख़ानेजहाँ जूनाशाह ने इस मक़बरे का निर्माण अपने पिता एवं फ़िरोज़ के प्रधानमंत्री ख़ान–ए–जहाँ तेलंगानी की याद में कराया था। यह मक़बरा अष्टभुज के आकार में निर्मित है। इस मक़बरे की तुलना जेरुसलम में निर्मित उमर की मस्जिद से की जाती है।

शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया का मक़बरा

इस मक़बरें में संगमरमर का अच्छा प्रयोग किया गया है।

खिड़की मस्जिद

ख़ानेजहाँ जूनाशाह द्वारा जहाँपनाह नगर में निर्मित यह मस्जिद वर्गाकार रूप में है। तहखाने के ऊपर बनी यह मस्जिद दुर्ग के समान दिखती है। इसकी तुलना इल्तुतमिश के 'सुल्तानगढ़ी' से की जाती है।

काली मस्जिद

फ़िरोज़शाह तुग़लक़ के काल में निर्मित यह मस्जिद दो मंज़िली है। इसमें अर्धवृतीय मेहराबों का प्रयोग हुआ है। मस्जिद का विशाल आँगन चार भागों में बँटा है। इस मस्जिद का निर्माण ख़ानेजहाँ जूनाशाह ने करवाया था।

बेगमपुरी मस्जिद

जहाँपनाह नगर में निर्मित यह मस्जिद अपने गुम्बदों एवं मेहराबों के प्रयोग से काफ़ी प्रभावशाली दिखती है। इसमें संगमरमर का प्रयोग किया गया है।

कलां मस्जिद

'ख़ान–ए–जौनाशाह' द्वारा निर्मित यह मस्जिद शाहजहाँबाद में स्थित है। इसकी छत पर गुम्बद तथा चारों कोनों में बुर्ज बने हैं। इस मस्जिद का निर्माण भी तहखाने के ऊपर हुआ है।

कबीरुद्दीन औलिया का मक़बरा

ग़यासुद्दीन द्वितीय के समय में इस मक़बरे का निर्माण कार्य प्रारम्भ हुआ। नासिरुद्दीन मुहम्मद के समय में यह कार्य पूरा हुआ। इस मस्जिद को 'लाल गुम्बद' भी कहा जाता है। आयताकार रूप में बनी इस मस्जिद में लाल पत्थर एवं सफ़ेद संगमरमर का प्रयोग किया गया है।

1-3-2-4 अंतिम चरण

सैय्यद कालीन वास्तुकला

इस समय तक स्थापत्य कला का पतन आरम्भ हो चुका था। सैय्यद कालीन इमारतों को ख़लिजी कालीन इमारतों की नकल भर माना जा सकता है। सैय्यदों एवं लोदियों के समय में ख़लिजी युग की प्राणवंत शैली को पुनरूजीवित करने के प्रयास किये गये। किन्तु ये सीमित अंशों में ही सफल हुए

तथा यह शैली "तुग़लक़ युग के मृत्युकारी परिणाम को हटा नहीं सकी।" इस काल में ख़िज़्र ख़ाँ द्वारा स्थापित श्ख़िज़्राबादश एवं मुबारक शाह द्वारा स्थापित नगर श्मुबारकाबादश का निर्माण हुआ।

सुल्तान मुबारक शाह का मक़बरा

यह मक़बरा मुबारकपुर नामक गाँव में स्थित है। मक़बरे के चारों ओर बने बरामदों की ऊँचाई अधिक है। गुम्बद के शिखर को डाटदार दीपक से सुसज्जित करने का प्रयास किया गया है। जॉन मार्शल के अनुसार– ष्इस मस्जिद का सबसे बड़ा दोष यह है कि, निर्माणकर्ताओं ने इसे इतना ऊँचा बना दिया है कि, दर्शक सरलता से इसे देख नहीं सकते।" यह मक़बरा अष्टभुजीय है।

मुहम्मद शाह का मक़बरा

इस अष्टभुजीय मक़बरे में अत्यधिक ऊँचाई होने के दोष को दूर किया गया है। मक़बरे में कमल आदि प्रतिरूपों की साज–सज्जा हेतु चीनी टाइलों का उपयोग किया गया है।

लोदी काल में वास्तुकला

लोदी काल में किये गए कुछ महत्त्वपूर्ण निर्माण कार्य निम्नलिखित हैं–

बहलोल लोदी का मक़बरा

यह मक़बरा 1418 ई. में सिकन्दर शाह लोदी द्वारा बनवाया गया था। 5 गुम्बदों वाले इस मक़बरें के बीच में स्थित गुम्बद की ऊँअचाई सर्वाधिक है। इसके निर्माण में लाल पत्थर का प्रयोग हुआ है।

सिकन्दर लोदी का मक़बरा

इब्राहीम लोदी द्वारा यह मक़बरा 1517 ई. में बनवाया गया। मक़बरे में निर्मित गुम्बद के चारों तरफ़ आठ खम्भों की छतरी निर्मित है। यह मक़बरा एक ऐसी बड़ी चहारदीवारी के प्रांगण में स्थित है, जिसके चारों किनारे पर काफ़ी लम्बे बुर्ज है। इसकी छत पर दोहरे गुम्बद की व्यवस्था है। जॉन मार्शल के अनुसार सम्भवतः इस शैली ने मुग़ल सम्राटों के विशाल उ।ान युक्त मक़बरे का पथ प्रदर्शन किया। मुग़ल शैली को अपने विकास में इस मक़बरे से महत्त्वपूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ।

मोठ की मस्जिद

इस मस्जिद का निर्माण 'सिकन्दर लोदी' के वज़ीर मियाँ भुआ द्वारा करवाया गया। मस्जिद की प्रशंसा में सर सैय्यद अहमद ने कहा कि, ष्यह लोदी स्थापत्य आकार में सुन्दर एवं एक उपहार कृति है। जॉन मार्शल के अनुसार लोदियों की स्थापत्य कला में जो भी सबसे सुन्दर है, उसका संक्षिप्त रूप मोठी मस्जिद में विमान है।

सैय्यद एवं लोदी काल में कुछ अन्य मक़बरों का भी निर्माण किया गया, जैसे– श्बड़ा ख़ाँ एवं छोटे ख़ाँ का मक़बराश, श्शीश गुम्बदश, श्दादी का गुम्बदश, श्पोली का गुम्बदश एवं श्ताज ख़ाँ का गुम्बदश आदि। पर्सी ब्राउन ने इस युग को 'मक़बरों के युग' के नाम से सम्बोधित किया है। बड़े ख़ाँ और छोटे ख़ाँ के मक़बरे का निर्माण सिकन्दर लोदी ने करवाया था।

1-4 सल्तनत काल में चित्रकला

मुस्लिम आक्रमण के पूर्व भारत में चित्रकारी का हिन्दू, बौद्ध एवं जैन चित्रकला के अन्तर्गत काफ़ी विकास हुआ था, अजन्ता चित्रकला के बाद भारतीय चित्रकला का प्रभाव कम हो गया। और ऐसा माना जाता है कि सल्तनत काल में तो चित्रकला का क्षेत्र बहुत ही संकुचित रहा। रूसी विद्वान एफ.

रोसेनवर्ग के अनुसार– "7वीं सदी से 16वीं सदी तक भारतीय चित्रकला का विकास अवरुद्ध था।" पर्सी ब्राउन के अनुसार "650 ई. के बाद अकबर के शासन काल तक भारतवर्ष में चित्रकला का विकास नहीं हुआ।" सामान्यतः सल्तनत काल को भारतीय चित्रकला के पतन का काल भी माना जाता है। कुरान की दी गई व्यवस्था के अनुसार– शकिसी मनुष्य, पशु, पक्षी या फिर जीवधारी का चित्र बनाना पूर्णतः प्रतिबन्धित था। सम्भवतः सल्तनत काल में चित्रकारी के विकास के अवरुद्ध होने का यही कारण बना। फिर भी इस काल में चित्रकारी के कुछ प्रमाण मिले हैं। 19 वीं सदी के बाद के वर्षों में सर्वप्रथम श्मुहम्मद अब्दुल्ला चग़ताईश ने यह विचार प्रस्तुत किया कि दिल्ली सल्तनत काल में चित्रकला का अस्तित्व था। 1947 ई. में हरमन गोइट्ज ने 'दी जनरल ऑफ़ दी इण्डियन सोसाइटी ऑफ़ ओरियण्टल आर्ट' में लिखे एक लेख के जरिये यह विचार व्यक्त किया कि, दिल्ली सल्तनत काल में चित्रकला का अस्तित्व था।

1353 ई. में मुहम्मद तुग़लक़ के समय का एक ऐसा चित्र प्राप्त हुआ है, जिसमें एक संगीत गोष्ठी का चित्रण किया गया है तथा स्त्रियाँ सुल्तान के समक्ष वीणा और सितार बजा रही हैं। उनमें से एक स्त्री शराब का प्याला सुल्तान को पकड़ा रही है। सम्भवतः यह चित्रकार 'शाहपुर' द्वारा बनवाया गया था। इसके अतिरिक्त चित्रकारी के कुछ अवशेष सल्तनतकालीन कुर्सी, मेज, अस्त्र–शस्त्र, बर्तन, पताका, कढ़ाई के वस्त्रों आदि पर दिखाई पड़ते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि, सल्तनतकालीन शासकों के हृदय में चित्रकला के प्रति घृणा की भावना नहीं थी। यह अवश्य सही बात है की सल्तनत कालीन शासकों ने चित्रकारों को संरक्षण नहीं दिया। फिर भी इतिहासकारों द्वारा किये गए नए शोध इस ओर इशारा करते हैं की सल्तनत काल में चित्रकला आवश्यक रूप से मौजूद थी, जो भित्ति चित्रों की परंपरा के रूप में हमें दिखाई देती है। जिसे हम तीन भागों में विभाजित कर समझ सकतें हैं।

1-4-1- भित्तिचित्र

भित्तिचित्र चित्रकला की सबसे पुरानी विधि है। जो दीवारों पर मिट्टी की सहायता से बनायीं जाती थी। और समय के साथ साथ इसमें उपयोग में लायी जाने वाली वस्तुएं बदलती रही। आपको याद होगा अजंता एलोरा की गुफाओं की दीवारों पर की गयी चित्रकारी। यह उसका ही विकसित रूप है। आज हमें सल्तनत कालीन भित्ति चित्रकला दिखाई तो नहीं देते, परन्तु समकालीन साहित्यिक स्त्रोतों से इसकी जानकारी अवश्य प्राप्त होती है। जिसे साइमन डिग्बी ने 'द लिटरेरी एविडेंस फॉर पेंटिंग इन द दिल्ली सल्तनत' में संकलित ओर विश्लेषित किया है।

सल्तनत कालीन एतिहासिक साहित्य तबकात ए नसीरी में लिखित एक कसीदा जिसमे सुल्तान इल्तुतमिश को खलीफा द्वारा सम्मानित खिलअत का उल्लेख है। इसी कसीदे में खलीफा के दूत के स्वागत के लिए मेहराब पर उकेरित या चित्रित जानवरों एवं मानव आकृतियों का उल्लेख भी किया गया है। चित्रकला की यह परम्परा सिर्फ भित्ति चित्र तक ही नहीं रही बल्कि नुह सिपहर में तम्बुओं पर की गयी चित्रकारी का भी वर्णन मिलता है। इससे कपड़ों पर की गयी चित्रकारी का पता चलता है।

एक अन्य प्रमाण अफीफ द्वारा लिखित तारीख–ए–फिरोजशाही से भी प्राप्त होता है। जिसमे महल की दीवारों पर सजावट के लिए आकृति चित्रण की परंपरा का पता चलता है, जिसे फिरोजशाह ने गैर इस्लामी मानते हुए प्रतिबंधित करने की घोषणा की थी। इसके साथ ही आम लोगों के मुख्य रूप से गैर मुस्लिमों के घरों में भित्ति चित्र चित्रण के भी साक्ष्य मिलते हैं। मुल्ला दाउद द्वारा लिखित चंदायन

की नायिका के उपरी कक्ष की सजावट का वर्णन मिलता है। 15वीं शताब्दी के अन्य पाण्डुलिपि में नायिका के कक्ष की दीवारों पर चित्रित रामायण के दृश्य को दर्शाया गया है।
एक अन्य चित्र जो मिफ्ता–उल–फौज्ला में दर्ज है, जिसमे कोई आमिर वर्ग का व्यक्ति पाककला को देख रहा है। सल्तनत काल में मालवा चित्रकला का भी अपना एक अलग स्थान है।

1-4-2 पाण्डुलिपि चित्रण

सल्तनत काल में पाण्डुलिपि चित्रण के विषय के सन्दर्भ में विवाद है, इसके बावजूद 15वों शताब्दी से मुगलों के आने तक एवं उसके बाद भी ग्रन्थ चित्रण के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। जिनमे से कुछ का विषय प्रांतीय दरबारों से सम्बंधित है, परन्तु ऐसे भी ग्रन्थ चित्र हैं जिनका किसी दरबार से कोई सम्बन्ध नहीं है। ये स्वतंत्र रूप से और सल्तनत काल में ही तैयार की हुई मालूम पड़ती हैं। जिनमे से दो प्रमुख हैं–

•**हमज़ानामा–** इसमें अमीर हमज़ा जोकि पैगम्बर के साथियों में से थे, उनकी शौर्यगाथाओं का वर्णन है। यह लगभग 1450 ई० के आस–पास तैयार की गयी है।

•**दूसरा चंदायन**– जो मुल्ला दाउद की रचना है, यह लौर और चंदा की प्रेम कथा है।

1-4-3 सुलेखकला (कुरान की आयतों को सजावट के साथ प्रस्तुत करना)

इस्लाम में सुलेखन कला को एक अलग महत्व प्राप्त है। मुख्य रूप से इसका प्रयोग पुस्तकों और इमारतों के अलंकरण में किया जाता था। लेकिन कुरआन का सुलेखन पुस्तक कला का एक महत्वपूर्ण रूप बन गया था। हस्त शिल्प में सुलेखन कला को एक मत्वपूर्ण स्थान दिया गया। समय समय पर इसकी लेखन कला में भी परिवर्तन होते रहे नस्क, शिकस्ता, तलिख, कूफी तथा नस्तालिक प्रमुख हैं। कुतुबमीनार पर की गयी सुलेखन कला नस्तालिख रूप में की गयी है, जोकि आधुनिकतम लिपि है।

1-5- सल्तनल काल में संगीत

जब तुर्क भारत में आये तो वे अपने साथ ईरान एवं मध्य एशिया के समृद्ध अरबी संगीत परम्परा को भी लाए। उनके पास कई नये वा।यंत्र थे, जैसे श्रबाबश, और श्सारंगीश। तुर्क अपने साथ श्सारंगीश जैसे वा। को लाए, परन्तु यहाँ आकर उन्होंने शसितारश और श्तबलाश जैसे वा।ों को भी अपनाया। दिल्ली सल्तनत के कुछ शासक, जैसे– बलबन, जलालुद्दीन ख़लिजी, अलाउद्दीन ख़लिजी एवं मुहम्मद तुग़लक़ ने संगीत के प्रति रुचि होने के कारण राज दरबारों में संगीत सभाओं का आयोजन करवाया। ग़यासुद्दीन तुग़लक़ संगीत का विरोधी था। सिकन्दर लोदी शहनाई सुनने का शौक़ीन था। इस काल में सूफ़ी सन्तों ने भी संगीत के विकास में योगदान किया। शेख़ मुइनुद्दीन चिश्ती के अनुसार– "संगीत आत्मा के लिए पौष्टिक आहार है"। बलबन का पुत्र श्बुगरा ख़ाँश महान् संगीत प्रेमी था। बलबन का पौत्र कैकुबाद सर्वाधिक संगीत प्रेमी सुल्तान था। बर्नी ने इसके बारे में लिखा है कि– 'कैकूबाद ने संगीतकारों एवं गजल गायकों को इतनी अधिक संख्या में संरक्षण प्रदान किया कि, राजधानी की गलियाँ तथा सड़कें इनसें भरी हुई थीं।
आरंभिक मध्य काल में संगीत की दो धाराएँ दृष्टिगत होती हैं–

उत्तर भारत की संगीत धारा

दक्षिण भारत की संगीत धारा

उत्तर भारत में तुर्कों के अधिपत्य के बाद संगीत के क्षेत्र में परिवर्तन साफ़ दिखाई देने लगे। जिसे समझने की दृष्टि से मोटे तौर पर हम दो भागों में बाँट सकते हैं–– दरबारी संगीत एवं सूफी संगीत

संगीत को संरक्षण

बरनी ने इस समय के मशहूर संगीतकारों श्शाहचंगीश, श्नुसरत ख़ातूनश एवं श्मेहर अफ़रोज का उल्लेख किया है। अलाउद्दीन ख़लिजी के दरबार में तत्कालीन महान् कवि एवं संगीतज्ञ अमीर खुसरो को संरक्षण प्राप्त था। अमीर खुसरो ने भारतीय एवं इस्लामी संगीत शैली के समन्वय से अनेक यमन–उसाक, मुआफिक, धनय, मुंजिर, ज़िलाफ, सजगिरी और सरपदा जैसे राग–रागनियों को जन्म दिया। उसने दक्षिण के महान् गायक श्गोपाल नायकश को अपने दरबार में आमंत्रित किया था। इस काल में प्रचलित श्ख्याल गायकीश के अविष्कार का श्रेय जौनपुर के सुल्तान हुसैन शाह शर्की को दिया जाता है। संगीत के क्षेत्र में उपलब्धि के कारण इसे 'नायक' की उपाधि प्राप्त हुई थी। मालवा का शासक बाज बहादुर संगीत में रुचि रखता था। कव्वाली गायन शैली का प्रचलन भी सल्तनत काल में ही प्रारम्भ हुआ। सल्तनत काल में अनेक वा।यंत्र जैसे श्रबाबश, श्सारंगीश, श्सितारश तथा श्तबलाश का प्रचलन था।

अमीर खुसरो ने भारतीय वीणा ओर ईरानी तम्बूरा के मिश्रण से सितार का अविष्कार किया। इसी काल में मृदंग को दो हिस्सों में बाँट कर तबले को जन्म दिया गया। मध्यकालीन संगीत परम्परा के आदि संस्थापक अमीर खुसरों थे। सर्वप्रथम उन्होंने भारतीय संगीत में कव्वाली गायन को प्रचलित किया। अमीर खुसरों को 'तूतिये हिन्द' अर्थात् श्भारत का तोताश आदि नाम से भी जाना जाता था। इस समय दक्षिण भारत में संगीत पर आधारित कुछ महत्त्वपूर्ण पुस्तकों की रचना हुई, जैसे– संगीत रत्नाकर, संगीत समयसार, संगीत शिरोमणि, संगीत कौमुदी, संगीत नारायण आदि। सल्तनत काल में इल्तुतमिश व ग़यासुद्दीन तुग़लक़ द्वारा संगीत के विकास के क्षेत्र में कोई काम नहीं किया गया। मुहम्मद बिन तुग़लक़ संगीत का बहुत बड़ा प्रेमी था। उसके बारे में कहा जाता है कि, जब वह सिंहासन पर बैठा तो, जन–साधारण के लिए 21 दिनों तक संगीत गोष्ठी का प्रबन्ध किया जाता था। इसी तरह सिकंदर लोदी भी संगीत प्रेमी एवं उसका समर्थक था।

1-6 सल्तनत काल में सूफीवाद और भक्ति आन्दोलन

1-6-1 सूफीवाद

इस्लाम में विभिन्न रहस्यात्मक प्रवृत्तियों को सूफीमत या तसव्वुफ़ के नाम से जाना जाता है। इस्लाम में व्यक्तिगत अनुभव पर आधारित रहस्यवादिता के माध्यम से इश्वर और व्यक्ति के मध्य सीधा संपर्क स्थापित करने की बात की जाती है। प्रत्येक धर्म अपने विकास के क्रम में रहस्यवाद का सहारा लेता है। अतः हम यह कह सकते हैं कि सूफी मत कुरान की पवित्र भावना पर आधारित इस्लाम का स्वाभाविक विकास है। सूफी संत शरियत को स्वीकार करते थे परन्तु वे परम्पराओं में बंध कर नहीं रहे, बल्कि एसी प।ति विकसित करी, जिसका उद्देश्य इश्वर से सीधा संपर्क स्थापित करना था।

सूफी कहलाने वाले रहस्यवादियों का जन्म इस्लाम के आरंभिक काल में ही हो गया था। हसन बसरी तथा राबिया बसरी जैसे आरंभिक सूफियों ने प्रार्थना उपवास एवं इश्वर के प्रति भय के स्थान पर प्रेम को अधिक महत्व दिया। उस समय तक सूफियों ने ऊन से बना मोटा वस्त्र धारण करना आरम्भ कर दिया था, जो आरंभिक संतो की विरासत थी। वे धन की उपलब्द्धता के होते हुए निर्धनता का जीवन को सूफी जीवन बताते हैं। इन सूफियों में शिक्षा की तलाश में अरब एवं सीरिया का व्यापक भ्रमण

किया, और चिंतन–मनन करके ईश्वर से मिलन अर्थात आत्मा की परमात्मा से मिलन की संकल्पना प्रस्तुत की। लेकिन सूफी संत मंसूर–अल–हल्लाज को उनके इस दृष्टिकोण के कारण रुढ़िवादी तत्वों से उनका टकराव आरम्भ हुआ, और उन्हें फासी दे दी गयी। इसके बावजूद जनता ने इन सूफियों के प्रति श्रद्धा और विश्वास में कोई कमी नहीं आयी। एक अन्य सूफी अल–गजाली ने सूफीवाद को इस्लामी रूढ़ीवाद से समन्वित करने प्रयास किया, और सफल भी रहे। बाद के वर्षों में सूफीवाद कई सिलसिलों में विभक्त हो गया, और प्रत्येक सिलसिला किसी प्रमुख सूफी संत से जुदा होता था। इसी समय खानकाहों की स्थापना हुई, जहाँ सूफी अपने शिष्यों के साथ रहते थे। पीर अपने शिष्यों (मुरीद) में से किसी एक को वाली चुनता है, जो उसके धार्मिक सामाजिक और वैचारिक कार्यो को आगे बाधा सके। इस तरह पीरी और मुरीदी का सिलसिला आरम्भ ही गया।

1-6-2 भारत में सूफी मत का विकास

जैसा की हम सब जानते हैं की तुर्कों के आगमन एवं सल्तनत स्थापित करने से पूर्व भी भारत के लिए इस्लाम धर्म नया नहीं था। सिंध, पंजाब के क्षेत्र में आठवीं से दसवीं सदी से ही इस्लाम का प्रचार होना आरम्भ हो गया था। देश में अरब व्यापारियों और सूफी संतों का आगमन होने लगा। अलबरूनी द्वारा लिखित किताब–उल–हिन्द की रचना से अरबों के लिए भारतीय और हिन्दू दर्शन अपरिचित नहीं था। इतना ही नहीं अब तक अनेक बौद्ध जातकों, हिन्दू कथाओं, खगोलीय पुस्तकों तथा आयुर्विज्ञान इत्यादि का अरबी अनुवाद हो चुका था। भारत आकर बसने वाले आरंभिक सूफियों में अल हुजविरी (लगभग 1088 ई.) प्रमुख हैं। उनके द्वारा लिखित कशफ़–उल–महजूब सूफियों के लिए महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिसे सूफी मत का एक मानक दस्तावेज़ भी माना जाता है। तुर्कों के आगमन के पश्चात भारत में अनेक सूफी सम्प्रदायों की स्थापना हुई। 13वीं सदी में मध्य एशियाई देशों में मंगोलों के आक्रमण के कारण अनेक सूफी संत भारत की ओर शांति की तलाश में आये और यही बस गए। 13वीं–14वीं सदी में भारत में जगह–जगह खानकाह स्थापित हो गए। भारत में स्थापित सूफी मत का आधार इस्लाम, खासकर ईरान और मध्य एशिया में स्थापित सूफी सिद्धांत और मान्यताएं थीं। परन्तु भारत में स्थापित होने के बाद इसके विकास में भारतीय तत्वों की ही भूमिका रही है। एक बार भारत में स्थापित हो जाने के बाद उनका विकास अलग ढंग से हुआ। जबकि यह सत्य है कि इसका जन्म बहार हुआ और उसके प्रभाव को नाकारा नहीं जा सकता , पर यह पूर्ण रूपेण भारतीय परिवेश में ही विकसित हुआ।

सल्तनत काल के दौरान कई सिलसिले लोकप्रिय थे, जिनमे दो प्रमुख थेरू चिश्ती और सुहरावर्दी। सुहरावर्दी सिलसिले के लोग मुख्यतः पंजाब और सिंध में रह रहे थे, जबकि चिश्ती लोग दिल्ली और इसके आसपास के क्षेत्रों जैसे– राजस्थान, पंजाब के कुछ भाग और आधुनिक उत्तर प्रदेश में सक्रीय थे। इसके अतिरिक्त ये सिलसिले बंगाल, बिहार, मालवा, गुजरात, और बाद में दक्कन तक फ़ैल गए। कुब्रिया नमक सिलसिला कश्मीर में था।अतः इनमे से कुछ प्रमुख की चर्चा हम यहाँ करेंगे।

1-6-3 चिश्ती सिलसिला

भारत में मुईनुद्दीन चिश्ती द्वारा स्थापित चिश्ती सिलसिला मूलतः भारतीय था। मुईनुद्दीन के आरंभिक जीवन और उनकी गतिविधियों के बारे में जानकारी बहुत कम प्राप्त होती है। और न ह उनके उपदेशों या शिक्षा का कोई संकलित ग्रन्थ उपलब्ध है। जो भी विवरण हमें प्राप्त होता है वह उनकी मृत्यु के डेढ़ सौ वर्ष बाद लिखे गए। आधुनिक शोधों से पता चलता है कि मुईनुद्दीन चिश्ती का भारत

आगमन पृथ्वीराज चौहान पर गौरी की विजय के पश्चात हुआ था, न की उससे पहले । 1206 के लगभग ही उनका अजमेर जाना हुआ, और उस समय तक वहां तुर्की शासन मजबूती से स्थापित हो चुका था। इन्होने अजमेर में बसना इसलिए पसंद किया क्योंकि यह दिल्ली की राजनैतिक गतिविधियों से दूर एवं आध्यात्म के लिए बेहतर स्थान था। ख्वाजा मुईनुद्दीन विवाहित थे और ईश्वर में उन्हें सच्ची श्रद्धा थी। सदा एवं सन्यासी जीवन जीते थे। उनका मुख्य उद्देश्य ईश्वर के प्रति भक्ति का जीवन जीने में लोगों की सहायता करना था । वे धर्मान्तरण को उचित नहीं मानते थे, क्योकि उनका मानना था की प्रत्येक व्यक्ति को अपना धर्म चुनने का अधिकार होना चाहिए। एक संत के रूप में मुईनुद्दीन की ख्याति उनकी मृत्यु के बाद धीरे–धीरे फैली। बाद में अनेक सुल्तान उनकी मजार पर ज़ियरत के लिए पहुंचे।

दिल्ली में चिश्ती सिलसिले को ख्याति कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी की देन है। 1221 ई० में मावरा–उन–नहर से दिल्ली को आये और मुईनुद्दीन के आदेश पर यहीं बस गए। बख्तियार काकी ने उलेमा और सुह्रावार्दियों की चुनौती का सामना करते हुए दिल्ली में चिश्ती सिलसिले को मुख्य सूफी सिलसिले के रूप में स्थापित किया। इनके उत्तराधिकारी और शिष्य बाबा फरीदुद्दीन गंज–ए–शकर हुए, जिन्होंने अजोधन चले गए। वहां उन्होंने लोगो को गरीबी, सांसारिक सुखों का त्याग, मोह का त्याग, उपवास एवं अन्य कठोर आचरणों के ज़रिये इन्द्रियों पर नियंत्रण तथा विनम्रता पूर्वक वयवहार पर जोर दिया।

बाबा फरीद के उत्तराधिकारी निजामुद्दीन औलिया बनाये गए। ये दिल्ली के प्रसिद्द सूफी संतो में से हैं, जिनके नेतृत्व में चिश्ती सिलसिले ने काफी उन्नति की। ये लगभग पचास वर्षों तक दिल्ली में रहे, यह काल काफी उथल पुथल का रहा । बलबन के राजवंश के बाद दिल्ली पर खल्जियों ने अपनी सत्ता क़ायम करी। चिश्ती दर्शन आरम्भ से ही राजनीती से अलग रहने व शासकों और अमीरों की संगती से दूर रहने की सलाह देता रहा है। जिसका पालन निजामुद्दीन औलिया और आरंभिक चिश्ती सूफियों ने बखूबी किया है। नसीरुद्दीन चीराग देहली को दिल्ली का अंतिम महान सूफी कहा जाता है। जो निजामुद्दीन के शिष्य एवं उनके उत्तराधिकारी रहे। 1326 ई० में उनकी मृत्यु हो गयी थी। नसीरुद्दीन के पश्चात दिल्ली में चिश्तिया सिलसिले का कोई प्रभावशाली पीर नहीं रहा। अतः अब ये भारत के पूर्वी और दक्षिणी भागों में भी अपना सन्देश देने लगे।

1-6-4 सुहरावर्दी सिलसिला

यह सिलसिला भी लगभग चिश्तियों के आस–पास ही आया, पर उसका क्षेत्र पंजाब और मुल्तान तक ही सीमित रहा। शेख शहाबुद्दीन सुहरावर्दी तथा हमीदुद्दीन नागौरी इस सिलसिले के महत्वपूर्ण सूफी संतो में शामिल हैं। इनके क्रिया कलाप मुख्यतः चिश्तियों से अलग थे। ये गरीबी में जीवन व्यतीत करने में विश्वास नहीं रखते थे। उन्होंने राज्य की सेवा स्वीकार की तथा कुछ ने तो धर्म से सम्बंधित पदों को भी स्वीकार किया शेख बहाउद्दीन ज़कारिया ने इल्तुतमिश का खुलकर समर्थन किया।

1-6-5 भक्ति आन्दोलन

इस्लाम में सूफीवाद के विकास एवं भारत में इसके आगमन से बहुत पहले से ही भारत में भक्ति आन्दोलन चला आ रहा है। लेकिन भक्ति का वास्तविक विकास सातवीं और बारहवीं सदी के मध्य में हुआ था। इसके पूर्व बौद्ध एवं जैन का उदय भी स्वयं में भक्ति आन्दोलन का ही स्वरुप है। नयनारों एवं अल्वारों ने जैन और बौद्ध के प्रचारित कठोर जीवन को नहीं माना तथा मुक्ति के लिए वैक्तिक

भक्ति पर जोर दिया। उन्होंने जातिप्रथा का विरोध किया तथा स्थानीय भाषाओँ के प्रयोग से ईश्वर से प्रेम का सन्देश दिया। परन्तु दक्षिण से उत्तर भारत की ओर उन संतों के विच्छ्रों को आने में काफी समय लग गया। इन विचारों को उत्तर भारत की ओर लेन का कार्य विद्वानों एवं संतों ने किया जिसमे नामदेव एवं रामानन्द का नाम प्रमुख है।रामानंद ने विष्णु के स्थान पर राम की आराधना पर बल दिया। यह भी महत्वपूर्ण है की उन्होंने चरों वर्गों के लोगों को भक्ति के मार्ग का उपदेश दिया। इन्होने सभी जातियों के लोगों को अपना शिष्य बनाया। इनके शिष्यों में रविदास, कबीर, सेन, और साधना का नाम प्रमुख है। ये लोग धार्मिक कर्मकांडों तीर्थयात्रा वाले पुराने धर्म से संतुष्ट नहीं थे, वे ऐसा धर्म चाहते थे जो उनकी बुद्धि और भावना दोनों को संतुष्ट कर सके। 15वीं–16वीं सदी में उत्तर भारत में भक्ति आन्दोलन इन्ही कारणों से लोकप्रिय हुआ।

1-7- विशेष शब्दावली

अरबेस्क	कुरान की सुलेखन कला
गचकारी	दीवारों पर नक्काशी
कूफी	सुकेखन की एक लिपि
भित्तिचित्र	दीवारों पर की गयी चित्रकला
कसीदा	उर्दू कविता का एक रूप जो प्रंशसा में लिखा जाता है।
समां	सूफी संगीत

1-8- प्रस्तावित अध्ययन सामग्री

पर्सी ब्राउन, इंडियन आर्किटेक्चर इस्लामिक पीरियड, बम्बई, 1968-

के० एम० अशरफ, सम आस्पेक्ट ऑफ़ द पीपल ऑफ़ हिंदुस्तान, पुनः प्रकाशन, जीवन प्रकाशन.

ए० एल० बाशम, ए कल्चरल हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

सतीश चन्द्र, मध्यकालीन भारत राजनीति, समाज और संस्कृति, ओरिएंट ब्लैकस्वान.

एन० आर० फारुकी, सूफीवाद, ओरिएंट ब्लैकस्वान.

सय्यद अतहर अब्बास रिज़वी, ए हिस्ट्री ऑफ़ सुफिस्म इन इंडिया

इक्तिदार हुसैन सिद्दीक़ी, कंपोजिट कल्चर ऑफ़ सल्तनत ऑफ़ डेल्ही, प्राइम्स बुक्स.

1-9- निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न1- सल्तनत कालीन वास्तुकला की विशेषताओं का वर्णन करें? खल्जी काल में हुए विकास को भी रेखांकित करने का प्रयास करें?

प्रश्न2- ललित कलाओं से क्या तात्पर्य है? सल्तनत कालीन ललितकला और उसकी विशेषताओं को उल्लेखित करें?

प्रश्न3- सूफीवाद किसे कहते हैं? भारत में चिश्तिया सिलसिले के सूफी संतों की प्रमुख शिक्षाओं का वर्णन करें?

प्रश्न4- आरंभिक चिश्ती एवं सुहरावर्दी सिलसिले की विशेषताओं का आलिच्नात्मक मूल्यांकन करें?

ब्लॉक एक

इकाई दो : विजयनगर साम्राज्य की संस्कृति

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 सामाजिक दशा

- 2.3.1 वर्णाश्रम व्यवस्था
- 2.3.2 स्त्रियों की स्थिति
- 2.3.3 परिवार एवं विवाह
- 2.3.3 सती प्रथा
- 2.3.4 दास प्रथा
- 2.3.5 वस्त्राभूषण
- 2.3.6 क्रीड़ा एवं मनोरंजन
- 2.3.7 शिक्षा

2.4 साहित्य

2.5 धार्मिक दशा

2.6 आर्थिक दशा

- 2.6.1 कृषि एवं सिंचाई
- 2.6.2 व्यवसाय
- 2.6.3 व्यापार
- 2.6.4 मुद्रा व्यवस्था

2.7 कला

- 2.7.1 स्थापत्य कला
- 2.7.2 चित्रकला एवं संगीतकला

2.8 सारांश

2.9 तकनीकी शब्दावली

2.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

2.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

2.13 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

विजयनगर साम्राज्य की स्थापना 1336 ई0 में हरिहर एवं बुक्का नामक दो भाईयों ने की थी। विजयनगर साम्राज्य का प्रथम शासक हरिहर (1336–1356 ई0) था। हरिहर ने 1336 ई0 में ''हम्पी हस्तिनावती'' नामक राज्य की नींव डाली। उसकी प्रारंभिक राजधानी अनेगोण्डी थी। 1336 ई0 में ही हरिहर ने तुंगभद्रा नदी के तट पर अनेगोण्डी के सामने 'विजयनगर' (विद्यानगर) नामक नवीन नगर की नींव रखी। जो सात वर्षो बाद नवीन राजधानी बनी और इसी राजधानी के नाम पर कालान्तर में ''हम्पी हस्तिनावती'' नामक राज्य 'विजयनगर साम्राज्य' कहलाया। वस्तुतः विजयनगर की स्थापना से पूर्व हरिहर एवं बुक्का कंपिली राज्य में मंत्री थे। जब मोहम्मद तुगलक ने कंपिली को जीता तब हरिहर और बुक्का को दिल्ली लाकर मुसलमान बना दिया। इसी बीच कुछ समय बाद दक्षिण में विद्रोह हो गया और हरिहर और बुक्का को विद्रोह दबाने के लिए भेजा गया। तभी हरिहर एवं बुक्का हिन्दू संत विद्यारण्य के प्रभाव में आए और विद्यारण्य ने उन्हें पुनः हिन्दू धर्म में दीक्षित कर दिया। इतिहासविदों का मत है कि, दक्षिण भारत में विजयनगर साम्राज्य हिन्दू धर्म एवं संस्कृति के पुनरूत्थान का साकार रूप था। हेवेल महोद्य ने सत्य ही कहा है कि, मुसलमानों ने हिन्दुओं के धर्म एवं संस्कृति को कुलच दिया था। हिन्दुओं ने अपनी आत्म रक्षा, धर्म और संस्कृति की रक्षार्थ सशस्त्र संगठित प्रयास से दक्षिण में मुसलमानों के अत्याचारों से मुक्ति पायी।

वस्तुतः विजयनगर साम्राज्य की स्थापना हिन्दू चेतना के राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक आन्दोलन का परिणाम था। विजयनगर साम्राज्य की स्थापना के मूल में हिन्दू धर्म और संस्कृति की रक्षा करना था। विजयनगर साम्राज्य में चार राजवंशों संगम, सालुव, तुलुव एवं अरविंदु वंश ने 1336 ई0 से 1652 ई0 तक शासन किया। विजयनगर साम्राज्य का प्रथम शासक हरिहर प्रथम (1336–1356 ई0) तथा अंतिम शासक श्रीरंग तृतीय (1642–52 ई0) था। 23 जनवरी, 1565 ई0 के 'तालीकोटा युद्ध' में विजयनगर साम्राज्य की हार के साथ ही इसका वैभव नष्ट हो गया और इसके बाद के शासकों ने एक छोटे भौगोलिक क्षेत्र पर अपना शासन 1652 ई0 तक कायम रखा था। इस प्रकार 1336 से 1652 ई0 तक के लगभग 316 वर्षों के सुदीर्घ शासनकाल में विजयनगर हिन्दू धर्म, संस्कृति, साहित्य एवं कला का बड़ा केन्द्र बन गया था। विजयनगर साम्राज्य के लगभग तीन शताब्दियों के शासनकाल ने सांस्कृतिक क्षेत्र में अभूतपूर्व उन्नति की थी।

2.2 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित है –

1. विद्यार्थी विजयनगर साम्राज्य की संस्कृति को समझ सकेगें।
2. विद्यार्थी विजयनगर साम्राज्य की सामाजिक स्थिति को जान सकेंगे।
3. विद्यार्थी विजयनगर साम्राज्य की आर्थिक स्थिति को समझेंगें।
4. विद्यार्थी विजयनगर साम्राज्य की धार्मिक स्थिति को समझ सकेगें।
5. विद्यार्थी विजयनगर साम्राज्य की स्थापत्य कला को समझ सकेगें।
6. विद्यार्थी विजयनगर साम्राज्य की शिक्षा एवं साहित्य को जान सकेंगे

2.3 सामाजिक दशा :

विजयनगर कालीन समाज में परंपरागत चातुर्यवर्णिय व्यवस्था के साथ ही, सुदृढ़ वर्ग व्यवस्था के प्रमाण भी मिलते हैं। समाज में कामगारों, व्यवसायियों एवं शिल्पियों का महत्वपूर्ण स्थान था। समाज में ऊँच–नीच और विभेदीकरण जैसे तत्व अधिक सुदृढ़ नहीं थे। मुस्लिम, जैन, बौद्ध, ईसाई आदि धर्मो की सामाजिक व्यवस्था एक साथ विद्यमान थी। राज्य सभी धर्मो के मध्य सामाजिक समरसता बनाये रखने का पूर्ण प्रयास करता था।

2.3.1 वर्णाश्रम व्यवस्था :

विजयनगर साम्राज्य मध्यकालीन भारत में हिन्दू धर्म और समाज की रक्षा के लिए संगठित हुआ था। अतः स्वाभाविक था कि, विजयनगर साम्राज्य कालीन समाज हिन्दू धर्म द्वारा विहित सामाजिक पृष्ठभूमि पर आधारित था। विजयनगर साम्राज्य के शासकों के कर्तव्यों में यह कहा गया था कि, वे समाज के सभी वर्णो की समानता के साथ विकास एवं रक्षा करेगें। अर्थात् वर्णों के मध्य कोई भेदभाव नहीं करेगें। ऐसा प्रतीत होता है कि, वर्णों की समानता के साथ रक्षा और प्रगति की धारणा के पीछे तत्कलीन भक्ति आन्दोलन का निश्चित रूप से प्रभाव रहा होगा। विजयनगर साम्राज्य की वर्ण व्यवस्था में ब्राह्मणों का सर्वोच्च स्थान था। ब्राह्मण विजयनगर के प्रशासन एवं सैन्य व्यवस्था में उच्च पदों पर पदासीन थे। विजयनगर कालीन अनेक ऐसे साक्ष्यों में वीर और सफल ब्राह्मण सेनापतियों का विवरण मिलता है। विजयनगर साम्राज्य के महान शासक कृष्णदेव राय (1509–1529 ई0) को ब्राह्मणों की राजभक्ति पर बड़ा विश्वास था। कृष्णदेव राय का मानना था कि, समस्त सामरिक महत्व के स्थानों एवं प्रमुख किलों का दायित्व ब्राह्मणों के हाथों में रहना चाहिए। ब्राह्मणों के बारे में सर चार्ल्स इलियट ने लिखा है कि, 'एक वर्ण के रूप में ब्राह्मणों की बौद्धिक श्रेष्ठता उनको मान्यता दिलाने के लिए सचमुच पर्याप्त थी और उनमें इतना विवेक था कि, वे राजाओं के रूप में नहीं, बल्कि मंत्रियों के रूप में नियुक्त होकर शासन करते थे।' लेकिन यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि, निश्चित रूप से ब्राह्मणों का एक छोटा रूप वर्ग सेना एवं प्रशासन के उच्च पदों पर आसीन था किन्तु सामान्यतः ब्राह्मणों का बहुत बड़ा वर्ग धार्मिक और साहित्यिक कार्यो में संलग्न था और अपने भरण–पोषण के लिए राजा से लेकर निम्न श्रेणी तक के सभी वर्गों के लोगों से प्राप्त दान पर निर्भर था।

विजयनगर कालीन समाज में दूसरा स्थान क्षत्रियों का था। इन्हें 'राजुलु' कहा जाता था, जिनका संबंध अधिकतर राजकुलों से था तत्कालीन अभिलेखों एवं साहित्यिक साक्ष्यों में आश्चर्यजनक रूप में क्षत्रियों के बारें में उल्लेख नहीं मिलता है। किन्तु यह निश्चित था कि, क्षत्रिय वर्ण समाज में विद्यमान था और सैन्य एवं राजकीय कार्यों में संलग्न रहता था। कृष्णदेव राय के शासनकाल में आये पुर्तगाली यात्री बारबोसा लिखता है कि, क्षत्रियों का प्रशासन में प्रमुख स्थान था। क्षत्रिय उच्च सरकारी पदों एवं विभागों के प्रमुखों के पदों पर नियुक्त होते थे। क्षत्रिय बहुत धनाढ्य और युद्धप्रिय होते थे। स्वयं राजा क्षत्रिय परिवार का होता था। इस प्रकार परम्परागत वैदिक सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप राजा के क्षत्रिय होने की परम्परा विजयनगर में भी विद्यमान थी। विजयनगर समाज का तीसरा वर्ण वैश्यों का था। इन्हें 'मोतिकिरतलु' कहा जाता था। वैश्यों का विजयनगर कालीन समाज में बहुत सम्मान था। वैश्यों की अनेक शाखाऐं एवं उपशाखाऐं थी। वैश्य विविध प्रकार के व्यापार में लगे हुए थे और व्यापार के प्रकार के आधार पर भी उनमें विभाजन था। विजयनगर साम्राज्य का व्यापार एवं वाणिज्य प्रमुखतः वैश्यों के हाथों में ही केन्द्रित था। विजयनगर कालीन वैश्यों के समूहों में चेट्टियों का बहुत प्रभाव था। साथ ही, दस्तकारी करने वाले 'वीर पांचाल' वर्ग का भी समाज में बहुत

सम्मान था। वैश्यों के बारे में विदेशी यात्रियों ने लिखा है कि, उनका जीवनस्तर बहुत ऊँचा था, वे बहुत धनी होते थे तथा बहुत ही संभ्रात तरीके से रहते थे। विजयनगर कालीन समाज का चतुर्थ वर्ग 'शूद्र' था। विजयनगर कालीन समाज में शूद्रों की स्थिति अच्छी थी। उत्तर भारत की तरह यहाँ शूद्रों के साथ विभेदीकरण के तत्व अधिक विद्यमान नहीं थे। विजयनगर कालीन समाज में जाति बंधनों को तोड़कर निम्न जातियों के लोगों के उच्च जाति के अधिकारों को प्राप्त करने के प्रमाण मिलते हैं। जिन निचली जातियों ने उच्च जातियों के विशेषाधिकार प्राप्त कराने में सफलता पायी, उन्हें शत् 'शूद्र' कहा गया। उन्हें बिना प्रस्तावित संस्कार कर्म के यज्ञोपवीत धारण करने की अनुमति प्रदान की गई थी। इस प्रकार यह तो तय है कि, विजयनगर काल में समाज के सभी वर्गो के मध्य समानता का भाव विद्यमान था।

2.3.2 स्त्रियों की स्थिति

विजयनगर काल में स्त्रियों की स्थिति संतोषजनक थी। राजपरिवार, नायकों एवं उच्च वर्ग की स्त्रियों का जीवन बहुत ही ऐश्वर्यमय होता था। विदेशी यात्रियों के वृतांतों से विदित है कि, विजयनगर साम्राज्य की रानियों का जीवन अत्यन्त ऐश्वर्यमय एवं खर्चीला होता था, उनकी सेवा सुश्रुसा के लिए अनेक परिचारिकाएँ होती थी। वे बहुत ही मूल्यवान वस्त्राभूषणों से सुसज्जित रहती थी। राजसत्ता से जुड़े परिवारों एवं उच्च वर्गीय धनाढ्य वर्ग की स्त्रियाँ विविध प्रकार की शिक्षा से पारंगत होती थीं। उच्च समाज की स्त्रियाँ विविध भाषाओं की ज्ञाता एवं अनेक साँस्कृतिक–धार्मिक ग्रंथों की ज्ञाता होती थी। अनेक विदुषी कवियत्री एवं साहित्य रचना की धनी स्त्रियों का उल्लेख विजयनगर कालीन ऐतिहासिक स्त्रोतों से मिलता है। विजयनगर कालीन स्त्रियाँ उच्च शिक्षित, संगीत एवं नृत्य में पारंगत, मल्लयोद्धा, अंगरक्षिकाएँ, सुरक्षाकर्मी, ज्योतिष विशेषज्ञ, लेखाधिकारी, लिपिक एवं युद्ध सैनिक आदि भूमिकाओं का निर्वहन करती थीं। यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि, सम्पूर्ण भारतीय इतिहास में विजयनगर राज्य एकमात्र साम्राज्य था, जिसने बड़ी संख्या में स्त्रियों को विभिन्न राजकीय पदों पर नियुक्त किया था। अंगरक्षिकाओं के रूप में स्त्रियों पर बहुत विश्वास किया जाता था। महान शासक कृष्णदेवराय के दरबार में स्त्रियाँ अंगरक्षिकाओं के रूप में तैनात थी। दूसरी तरफ सामान्य जन–जीवन और निम्न वर्गीय समाज की स्त्रियों पर शिक्षा और विविध कलाओं की प्राप्ति पर किसी प्रकार के प्रतिबंध का उल्लेख हमें नहीं मिलता है। यह तो निश्चित है कि, राजकीय– उच्च वर्गीय स्त्रियों के अतिरिक्त समाज की अन्य स्त्रियाँ भी उच्च शिक्षित एवं विविध कलाओं को पारंगत रही होगी। समाज के अन्य वर्गो की स्त्रियाँ विविध व्यवसायों एवं हस्तकलाओं में दक्ष होती थीं।

विजयनगर कालीन समाज में देवदासी प्रथा विद्यमान थी। मंदिरों में देवदासियों का वृतांत हमें प्राचीनकाल से ही मिलने लगता है। देवदासियाँ समाज के सभी वर्णो और वर्गों से होती थीं और माता–पिता अपनी कन्या को स्वेच्छा से देवदासी बनाने के लिए प्रस्तुत कर देते थे। ये देवदासियाँ उच्च शिक्षित एवं विविध कलाओं में पारंगत होती थी। समाज में देवदासियों को बड़े ही सम्मान के साथ देखा जाता था। गायन, नृत्य–संगीत कला में तो ये सिद्धहस्त होती थीं। इनका सामाजिक जीवन बड़ा ही वैभवपूर्ण होता था, ये बहुत धनाढ्य होती थी और अपनी सेवा के लिए अनेक परिचारिकाओं को रखती थी। इन देवदासियों को धनार्जन भूमिदानों से या नियमित वेतन से होता था। वस्तुतः देवदासियाँ मंदिरों में देवताओं की सेवा के लिए नियुक्त होती थी। ये मंदिर में भगवान की सेवा–सुरक्षा करती थी।

विजयनगर कालीन समाज में गणिकाएँ विद्यमान थी। गणिकाओं को समाज एवं शासन से मान्यता प्राप्त थी। समाज का हर वर्ग राजा से लेकर रंक तक गणिकाओं से निशंकोच रूप से संपर्क में रहता

था। समाज में गणिकाओं को भी सम्मान से देखा जाता था। किसी भी समुदाय की स्त्रियाँ गणिकाएँ बन सकती थी। विजयनगर कालीन गणिकाएँ सुशिक्षित एवं विविध कलाओं में प्रवीण होती थी। नगर जीवन के आमोद–प्रमोद एवं उल्लास में इस वर्ग की उल्लेखनीय भूमिका थी। गणिकाएँ सार्वजनिक उत्सवों में भाग लेती थी। पिट्राडेल्ला वेली ने लिखा है कि, 'विशिष्ट वस्त्राभूषणों से सुसज्जित नवयुवतियाँ ढोल एवं अन्य वाद्य यंत्रों की सुरताल पर नृत्य–गायन करती हुई उत्सवों में भाग लेती थीं।'

समाज में बाल–विवाह, बहुविवाह प्रचलित था। पर्दाप्रथा नहीं थी। राजपरिवार एवं सामन्तों वर्ग में बहुविवाह कुप्रथा विकराल रूप ले चुकी थी, उनकी अनेक पत्नियों के साथ ही अनेक रखैले भी होती थीं।

2.3.3 सती प्रथा

विजयनगर कालीन समाज में 'सती प्रथा' का प्रचलन था। समाज एवं राज्य 'सती प्रथा' को प्रश्रय नहीं देता था। यह स्वैच्छिक थी, अर्थात् स्वयं स्त्री अपनी इच्छा से सती होती थी। सती या सहगमन को सम्मान देते हुए स्त्रियों की स्मृति में 'सती स्मारक' या 'सती स्तंभ' स्थापित किये जाते थे, जिन्हें सतीकल, महासतीकल, महासतीगल्लु आदि नामों से जाना जाता था। सती प्रथा के साक्ष्य विजयनगर कालीन अनेक अभिलेखों और विदेशी यात्रियों के विवरणों से बड़ी संख्या में प्राप्त होते है। विदेशी यात्री डुआर्त बार्बोसा का कथन है कि, सती प्रथा ब्राह्मणों, लिंगायतों एवं चेट्टियों में प्रचलित नहीं थी। सती प्रथा राजपरिवार, सामंतों, नायकों में ही प्रचलित थी। समाज की सामान्य प्रजा इस प्रथा से दूर थी। राज्य विधवा विवाहों को प्रोत्साहन देता था। विधवा–विवाह को राज्य ने 'विवाह कर' से छूट प्रदान कर रखी थी। इससे यह तो स्पष्ट है कि, राज्य एवं समाज दोनों विधवा–विवाह को वैधानिकता प्रदान करते थे।

2.3.4 दास प्रथा

विजयनगर कालीन समाज में दास प्रथा विद्यमान थी। स्त्री और पुरूष दोनों प्रकार के दासों का उल्लेख मिलता है। समाज में मनुष्य का क्रय–विक्रय भी होता था, जिसे 'वेस–वग' कहा जाता था। अधिकांश दास–दासियाँ युद्ध में जीते गये स्त्री–पुरूष होते थे। विदेशों से सुन्दर स्त्रियों के आयात के भी प्रमाण मिलते थे। राजमहलों में बड़ी संख्या में दासियाँ परिचारक का कार्य करती थी। साथ ही सुन्दर स्त्रियाँ राजाओं, सामन्तों, नायकों की रखैलों के रूप में रहती थी। यदि कोई स्त्री या पुरूष अपना ऋण नहीं चुका पाता था, तो उसे ऋणदाता का दास बनना पड़ता था।

2.3.5 वस्त्राभूषण

विजयनगर कालीन समाज के लोग वस्त्र–आभूषण एवं श्रृंगार के प्रसाधनों के शौकीन थे। विदेशी यात्री वार्थेमा ने अपने उद्धरण में लिखा है कि, ''सम्पन्न व्यक्ति एक छोटी कमीज और सिर पर सुनहले या रूपहले रंग का कपड़ा पहनते थे, किन्तु पैरों में कुछ नहीं पहनते थे। आम जनता कमर में में एक कपड़ा पहनती थी और समस्त बदन नंगा रहता था। राजा सुनहली जड़ीदार टोपी पहनता था, उसकी पोषाक में हीरे–मोती जड़े होते थे।'' विजयनगर कालीन समाज में पैरों में जूते सामान्य प्रजा और सम्पन्न वर्ग के लोग भी नहीं पहनते थे। पैरों में जूते राजपरिवार और राजसत्ता से जुड़े अभिजात वर्गीय परिवारों के लोग ही पहनते थे। आम प्रजा से संबंधित स्त्रियाँ साड़ी एवं चोली

पहनती थी। राजपरिवार और राजसत्ता से जुड़े परिवारों के स्त्री एवं पुरूष दोनों कीमती रत्नाभूषणों से जड़ित वस्त्र पहनते थे। स्त्रियाँ विशेष प्रकार पेटीकोट, दुपट्टा और चोली पहनती थीं। विजयनगर कालीन समाज में स्त्री एवं पुरूष दोनों ही आभूषणों के शौकीन थे। स्त्री एवं पुरूष दोनों ही गले में हार, पैरों में कड़े और बाजुओं में भुजबंध एवं कानों में कुण्डल पहनते थे। विजयनगर कालीन समाज में पुरूष दाँये पैर में चाँदी का एक विशेष कड़ा पहनते थे, जिसे 'गंडपेंद्र' कहा जाता था। यह बड़ा ही सम्मान सूचक माना जाता था। वस्तुतः राज्य युद्ध में विशेष वीरता दिखाने वाले योद्धाओं और विशेष व्यक्तियों को 'गंडपेन्द्र' देकर पुरस्कृत करता था। कालान्तर में आम जनता द्वारा ऐसा ही कड़ा पहनना सम्मान का प्रतीक माना जाने लगा था।

2.3.6 क्रीड़ा एवं मनोरंजन

विजयनगर कालीन समाज में क्रीड़ा एवं मनोरंजन के विविध साधन प्रचलित थे। मनोरंजन के लिए संगीत–गीत–नृत्य, नाटक, जुआ, घुड़दौड़, जानवरों की आपस में लड़ाई, कुश्ती, लोकनृत्य, शतरंज एवं पासा, सामाजिक एवं राजकीय उत्सव, मेलों आदि में मनोरंजन एवं क्रीड़ा के विविध रूप प्रस्तुत होते थे। सपेरे एवं नटों की मण्डलियाँ भी घूम–घूमकर मनोरंजन करती थी। पायस ने लिखा है कि, कृष्णदेव राय प्रतिदिन पहलवानों के साथ कुश्ती लड़ता था तथा घुड़सवारी करता था। विजयनगर के राजमहल के अंदर अखाड़े होते थे, जिसमें मनोरंजन के लए कुश्तियाँ होती थी। महिलाओं के मध्य कुश्ती और मल्लयुद्ध के भी प्रमाण मिलते हैं। पिट्रा डेल्ला वेली किसी सामाजिक साँस्कृतिक उत्सव का उल्लेख करते हुए लिखता है कि, सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित नवयुवतियाँ ढोल, नगाड़ों आदि वाद्य यंत्रों पर नृत्य–संगीत–गान करती हुई मण्डलियों में गलियों से गुजरती थीं। विजयनगर कालीन समाज में नाटकों एवं यक्षगान की बहुत लोकप्रियता थी। विजय नगर काल में ही सर्वप्रथम 'यक्षज्ञान' नृत्य परम्परा का विकास दक्षिण भारत में हुआ था। 'बोमलाट' नामक छाया नाटक की भी लोकप्रियता समाज में बहुत थी। विजयनगर काल में अनेक सामाजिक एवं राजकीय उत्सवों का आयोजन किया जाता था। जिसमें 'महानवमी' राज्य का राजकीय त्यौहार था। महानवमी का त्यौहार बड़ी ही धूमधाम से आयोजित किया जाता था, जिसमें विजयनगर का सम्राट स्वयं उपस्थित रहता था।

2.3.7 शिक्षा

विजयनगर साम्राज्य में शिक्षा उन्नत अवस्था थी। हालाँकि, राज्य का आधिकारिक कोई शिक्षा विभाग नहीं था, तथापि राज्य शिक्षा और शिक्षकों को पर्याप्त प्रश्रय प्रदान करता था राज्य में शिक्षा मंदिर, मठों और अग्रहारों में दी जाती थी। विजयनगर कालीन शासक एवं नायक शिक्षा की वृद्धि के लिए मंदिर, मठों एवं अग्रहारों को मुक्तहस्त धनदान करते थे। अग्रहार ब्राह्मण शिक्षा के विशेष केन्द्र होते थे, जहाँ ब्राह्मण वैदिक एवं धार्मिक शिक्षा प्रदान करते थे। विजयनगर कालीन शिक्षा के पाठ्यक्रम में धार्मिक शिक्षा, वैदिक एवं पुराणों, आयुर्वेद एवं व्यवहारिक शिक्षा दी जाती थी। संगीत एवं नृत्य की शिक्षा के प्रमाण भी मिलते हैं। डॉ0 नीलकंठ शास्त्री लिखते है कि, प्राविधिक या व्यावसायिक शिक्षा वंशानुगत रूप से बच्चा अपने परिवार से सीखता था। उत्तम श्रेणी के प्रशिक्षित कारीगरों एवं कलाकारों की कोई कमी नहीं थी। अभिलेखों की सुन्दरता तथा परिशुद्धता खुदाई करने वालों की उच्चकोटि की साक्षरता और कुशलता को प्रगट करती हैं। विजयनगर काल में जैन पल्लियों और बौद्ध विहारों में भी शिक्षा प्रदान की जाती थी।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(i) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिएः

1. अग्रहार केन्द्र थे ?

(क) संगीत के (ख) नृत्य के

(ग) शिक्षा के (घ) इनमें से कोई नहीं

2. चेट्टि कौन थे?

(क) ब्राह्मण (ख) वैश्य

(ग) क्षत्रिय़ (घ) शूद्र

3. किसके दरबार में स्त्रियाँ अंगरक्षिकाओं के रूप में तैनात थी ?

(क) हरिहर (ख) बुक्का

(ग) कृष्णदेव राय (घ) इनमें से कोई नहीं

4. विजयनगर का कौनसा शासक प्रतिदिन पहलवानों के साथ कुश्ती लड़ता था?

(क) हरिहर (ख) बुक्का

(ग) कृष्णदेव राय (घ) इनमें से कोई नहीं

5. विजयनगर में कौनसा का त्यौहार बड़ी ही धूमधाम से आयोजित किया जाता था?

(क) दशहरा (ख) होली

(ग) महानवमी (घ) इनमें से कोई नहीं

(ii) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) सती प्रथा ।

(ख) स्त्रियों की स्थिति।

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

(अ) विजयनगर कालीन वर्ण व्यवस्था का विवरण दीजिए

2.4 साहित्य

विजयनगर साम्राज्य के शासक साहित्य एवं ज्ञान के महान संरक्षक थे। वे न केवल साहित्य एवं साहित्यकारों के संरक्षक थे, अपितु स्वयं भी ज्ञानवान विद्वान साहित्यकार थे। उनके शासन काल में वैदिक साहित्य तथा दक्षिण भारतीय भाषाओं के साहित्य का भरपूर विकास हुआ। तमिल, तेलगू, कन्नड़ और मलयालम भाषाओं के विकास में विजयनगर काल में अभूतपूर्व प्रगति हुई। विजयनगर के शासकों ने किसी भी भाषा और साहित्यकार को उपेक्षित नहीं किया था। विजयनगर साम्राज्य में 'नन्दिनागढ़ी लिपि' का प्रयोग होता था। विजयनगर साम्राज्य की स्थापना में प्रसिद्ध विद्वान माधव एवं सायण की प्रमुख भूमिका थी। ये दोनों वैदिक ग्रंथों और संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे, जिनके कारण विजयनगर में संस्कृत भाषा और साहित्य का तेजी से विकास हुआ। सायण के नेतृत्व में संस्कृत में चारों वेदों, अनेक ब्राह्मण ग्रंथों तथा आरण्यकों पर भाष्य लिखे गये। सायण के भाई माधव ने पाराशर स्मृति पर 'पाराशर माधवीय' नामक टीका लिखी। विजयनगर सम्राट देवराज द्वितीय ने 'सुधानिधि' तथा 'बादरायण' के ब्रह्मसूत्र पर संस्कृत में टीका लिखी। कृष्णदेव राय ने संस्कृत भाषा में 'जाम्बती कल्याणम्' तथा 'ऊषा परिणय' नामक ग्रंथों की रचना की।

विजयनगर कालीन साहित्य में सर्वाधिक विकास तेलगू भाषा के साहित्य का हुआ। कृष्णदेव राय ने 'आमुक्तमाल्यद' की तेलगू भाषा में रचना की। जिसे तेलगू भाषा के पाँच महाकाव्यों में स्थान प्राप्त है। कृष्णदेव राय के दरबार में तेलगू भाषा के महान् साहित्यकार, विद्वान एवं कवि रहते थे, जिन्हें 'अष्टदिग्गज' के नाम से जाना जाता था। अष्टदिग्गज मण्डली का सर्व प्रमुख एवं प्रथम विद्वान 'अल्लसनिपेद्दन' था, जिसे तेलगू कविता का पितामह एवं आन्ध्र कविता का पितामह की उपाधि प्राप्त थी। उसकी प्रमुख रचना 'स्वरोचितसम्भव' या मनुचरित है अष्टदिग्गज समूह का दूसरा कवि 'नंदी तिम्मन' था, जिसने 'पारिजातहरण' नामक ग्रंथ लिखा। तीसरा विद्वान भट्टमूर्ति (रामराज भूषण) था, जिसने 'नरसभूपालीयम' एवं 'हरिश्चन्द्र नलोपारण्यानम्' की रचना की। चौथे विद्वान धूर्जटि ने 'कलहस्तिमहात्म्य', पाँचवे विद्वान मल्लन ने 'राजशेखरचरित', छठवें विद्वान अच्चतुराज रामचन्द्र ने 'सकलकथासार संग्रह' और 'रामाभ्युदयम', सातवें विद्वान पिंगली सूत्र ने 'राघवपाण्डीय' तथा आठवे विद्वान तेनाली रामकृष्ण ने 'पाण्डुरंग महात्म्य' की रचना की। इनके अतिरिक्त भी अनेक विद्वानों ने तेलगू भाषा में साहित्य रचना की थी। कन्नड़ भाषा के विकास विजयनगर काल में जैनों और वीर शैवों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। कन्नड़ रचनाओं में भीमक की 'वासवपुराण', चामरस की प्रभुलिंग–लील, लक्कन्न दण्डदेश की 'शिवतत्व चिंतामणि' एवं जक्कनार्य नुरोन्दुस्थल, राजनाथ की सालूवाभियुद्य एवं भागवत चंपू प्रमुख रचनाएँ हैं। बुक्का प्रथम की पौत्रवधु गंगादेवी की 'मदुरा विजयम', तथा तिरूवलाम्बा देवी की वरदाम्बिका परिणय भी प्रमुख कन्नड़ साहित्य की रचनाएँ है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न :

(i) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. अष्टदिग्गज संबंधित थे ?

(क) हरिहर (ख) बुक्का

(ग) कृष्णदेव राय (घ) इनमें से कोई नहीं

2. अष्टदिग्गज किस भाषा से संबंधित थे?

(क) तमिल (ख) तेलगू

(ग) कन्नड़ (घ) इनमें से कोई नहीं

3. आमुक्तमाल्यद किसकी रचना है?

(क) हरिहर (ख) बुक्का

(ग) कृष्णदेव राय (घ) इनमें से कोई नहीं

4. तेलगू कविता का पितामह कहा जाता है ?

(क) अल्लसनिपेद्दन (ख) भट्टमूर्ति

(ग) नंदी तिम्मन (घ) इनमें से कोई नहीं

5. पारिजातहरण किसकी रचना है ?

(क) अल्लसनिपेद्दन (ख) भट्टमूर्ति

(ग) नंदी तिम्मन (घ) इनमें से कोई नहीं

(ii) नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) विजयनगर कालीन साहित्य का विवरण दीजिये ?

2.5 धार्मिक दशा :

मध्यकालीन इस्लामिक धर्मान्ध के मध्य विजयनगर धार्मिक सहिष्णुता का जीता–जागता उद्धरण था। विजयनगर साम्राज्य के शासक धर्मान्ध मध्यकाल के इस्लामिक शासकों से घिरे होने बावजूद महान् सहिष्णुता के पालक थे। उन्होंने सभी धर्मों को अपने राज्य में फलने–फूलने की पूर्ण छूट दे रखी थी। विजयनगर के शासकों ने किसी भी धर्म के अनुयायियों को प्रताड़ित नहीं किया था। विदेशी यात्री बारबोसा कृष्णदेव राय की प्रशंसा करते हुए लिखता है कि, ''राजा धार्मिक दृष्टि से बहुत उदार है, उसके राज्य में ईसाई, यहूदी, मुसलमान आदि बिना किसी रोक–टोक के आ जा सकते है, निवास कर सकते हैं और स्वेच्छा से अपने धर्म का पालन कर सकते हैं।'' विजयनगर साम्राज्य हिन्दू धर्म का पुनरूत्थान काल था। विजयनगर शासक प्रारंभ में हिन्दू धर्म के शैवमत के अनुयायी थे, किन्तु कालान्तर में वे शनैः–शनैः वैष्णवमत के अनुयायी हो गये। फिर भी संपूर्ण विजयनगर शासनकाल में शैव एवं वैष्णव दोनों मतों का आदर एवं अनुसरण विजयनगर के शासकों ने किया। विजयनगर शासक प्रारम्भ में शिव के 'विरूपाक्ष' रूप के उपासक थे। शिव के विरूपाक्ष रूप में उनकी अगाध श्रद्धा थी और इसी श्रद्धा और भक्ति के परिणामस्वरूप विजयनगर शासक अपने को विरूपाक्ष का प्रतिनिधि मानकर शासन करते थे, उन्होंने विरूपाक्ष को नगर देवता एवं राज्य देवता के रूप में मान्यता प्रदान की थी। शैव सम्प्रदाय में इस काल में लिंगायत सम्प्रदाय का भी विकास हुआ। अधिकांश प्रजा लिंगायत सम्प्रदाय की अनुयायी थी।

कृष्णदेवराय के शासनकाल में वैष्णव धर्म का प्रभाव अधिक बढ़ने लगा। इसमें भक्ति आंदोलन ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। वैष्णवों में रामानुज के द्वैतवादी अनुयायियों की संख्या अधिक थी। कृष्णदेव राय विष्णु के विठोवा (विट्ठल) रूप के उपासक हो गये थे। वैंकट द्वितीय के शासनकाल में विरूपाक्ष का स्थान भगवान वैंकटेश्वर ने लिया था। 1556 ई0 में रामराय के आदेश पर सदाशिव ने श्री पेरम्बदूर में रामानुज मंदिर को इक्तीस ग्राम दान दिये थे। विजयनगर के शासकों ने वैष्णव होते हुए भी शैव धर्म का सदा सम्मान किया। कृष्णदेव राय के शासनकाल में वैष्णव एवं शैव मंदिरों के निर्माण तथा भूमिदान का उल्लेख मिलता है। विजयनगर शासकों के समय वैष्णव एवं शैव मतों के मध्य विवाद के उल्लेख भी मिले हैं, किन्तु शासकों ने दोनों मतों के मध्य आपसी वाद–विवाद को समाप्त कर दिया था। विजयनगर साम्राज्य का सबसे बड़ा धार्मिक राज्योत्सव महानवमी था। यह देवी–दुर्गा को समर्पित त्यौहार था, यह त्यौहार बड़ी ही धूमधाम और भव्य तरीके से मनाया जाता था, जिसे देखने देश–विदेश के लोग आते थे। विदेशी यात्रियों ने महानवमी का उल्लेख एक बड़े राज्य उत्सव के रूप में किया है। इस उत्सव में विजयनगर सम्राट स्वयं उपस्थित रहता था।

विजयनगर साम्राज्य में बौद्ध एवं जैन धर्म के अनुयायी भी थे। जिन्हें अपने धर्म के प्रसार–प्रचार की पूरी स्वतंत्रता प्राप्त थी। विजयनगर काल में वैष्णव एवं जैन धर्म के मध्य–विवाद का उल्लेख श्रवणवेलगोला के अभिलेखों में मिलता है। शासकों ने निष्पक्ष निर्णय लेते हुए जैन धर्म के हितों की रक्षा की और उनके पक्ष में निर्णय दिया। इससे स्पष्ट है कि, शासक जैन धर्म के प्रति सहिष्णु थे तथा जैन धर्म का आदर करते थे। विजयनगर शासनकाल में इस्लाम धर्म के अनुयायी भी निवास करते थे। इस्लाम धर्म के अनुयायियों को मुसलमान कहा जाता था। विजयनगर के शासकों ने मुसलमानों को अपने धर्म के पालन की पूरी छूट दे रखी थी। विजयनगर की सेना में भी मुसलमानों को नियुक्ति दी गयी थी और उन्हें जागीरें भी प्रदान की गयी थी। देवराय द्वितीय ने तुर्की धनुर्धरों को अपनी सेना में नियुक्त किया और उनके लिए राज्यकोष के धन से मस्जिदों का निर्माण करवाया। उसके सिंहासन में एक तरफ 'वेद' और दूसरी तरफ 'कुरान' रखी रहती थी। संपूर्ण विजयनगर

साम्राज्य में मुसलमानों को मस्जिदें बनवाने की स्वतंत्रता थी। वे पूर्ण स्वतंत्रता के साथ अपना धर्म कार्य करते थे तथा उन्हें हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन कराने की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी। ईसाई धर्म के मानने वालों को भी विजयनगर साम्राज्य में स्वतंत्रता प्राप्त थी। अनेक ईसाई धर्म प्रचारक अपने धर्म के प्रचार–प्रसार का कार्य साम्राज्य में स्वतंत्र रूप से करते रहे।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न :

(i) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिएः

1. विजयनगर काल में किस धर्म को राजकीय संरक्षण प्राप्त था ?

(क) वैष्णव धर्म (ख) बौद्ध धर्म

(ग) जैन धर्म (घ) इनमें से कोई नहीं

2. श्रवणवेलगोला संबंधित है ?

(क) वैष्णव धर्म (ख) बौद्ध धर्म

(ग) जैन धर्म (घ) इनमें से कोई नहीं

3. विठोवा (विट्ठल) स्वरूप किसका है ?

(क) विष्णु (ख) शिव

(ग) कृष्ण (घ) इनमें से कोई नहीं

4. विरूपाक्ष स्वरूप किसका है ?

(क) कृष्ण (ख) विष्णु

(ग) शिव (घ) इनमें से कोई नहीं

5. विजयनगर काल में कौनसा विदेशी यात्री आया था ?

(क) बारबोसा (ख) पेरीप्लस

(ग) इत्सिंग (घ) इनमें से कोई नहीं

(ii) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) इस्लाम धर्म की स्थिति।

(ख) शैवमत की स्थिति।

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

(अ) विजयनगर कालीन वैष्णव धर्म का विवरण दीजिये ?

2.6 आर्थिक दशा :

विजयनगर साम्राज्य कुशल सम्राटों के नेतृत्व में आर्थिक रूप से सुसंमृद्ध था। विजयनगर राज्य की संमृद्धि और वैभव का वृतान्त विदेशी यात्रियों निकोलोकोन्टी, पायस, बारबोसा, नूनिज, अब्दुर्रज्जाक आदि ने दिया है। विजयनगर साम्राज्य की आर्थिक अवस्था बहुत अच्छी थी। लोगों का जीवन स्तर बहुत ऊँचा था। साधारण प्रजा भी सुखी जीवन निर्वहन कर रही थी। कृषि उद्योग धंधे, व्यापार एवं वाणिज्य उन्नत अवस्था में था। प्रजा के जीवन निर्वहन की आवश्यक वस्तुओं की कोई कमी नहीं थी। अधिकांश जनता अपना जीवन–यापन सुखी, सम्पन्न, संतुष्ट एवं शान्तचित होकर व्यतीत कर रही थी। विजयनगर की समृद्धि और ऐश्वर्य का वृतान्त करते हुए विदेशी यात्रियों ने लिखा है कि, विजयनगर विश्व के संमृद्ध साम्राज्यों में से एक है।

2.6.1 कृषि एवं सिंचाई :

विजयनगर साम्राज्य की अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से कृषि व्यवस्था पर आधारित थी। प्रजा का मुख्य व्यवसाय कृषि था। अधिकांश जनता को रोजगार कृषि एवं कृषि आधारित कार्यों से मिला हुआ था। शासन एवं व्यक्तिगत प्रयासों से कृषि भूमि के विस्तार के अनेक उल्लेख विजयनगर कालीन साक्ष्यों से मिलते थे। बंजर एवं जंगली भूमि को कृषि योग्य बनाने को राज्य प्रदाय देता था। राज्य कृषि की पैंदावार बढ़ाने के लिए कृषि सिंचाई हेतु तालाबों, बाँधों एवं नहरों का प्रबंध करता था। हालाँकि विजयनगर प्रशासन में सिंचाई का कोई विभाग नहीं था, फिर भी राज्य सिंचाई व्यवस्था करने के प्रति उदासीन नहीं था। विजयनगर साम्राज्य में नदियों पर बाँध बनाकर नहरों के निर्माण के अनेक प्रमाण मिले हैं। जिसका सबसे उत्तम प्रमाण राजधानी विजयनगर में तुंगभद्रा नदी पर बाँध बनाकर नहरों के निर्माण में पाते हैं। विजयनगर शासक, उनके प्रांतीय प्रशासक, नायक एवं अनेक सार्वजनिक संस्थान जैसे मंदिर, मठ, अग्रहार तथा सर्वजन के द्वारा तालाबों के निर्माण के साक्ष्य मिले हैं। प्रशासन ने अनेक बड़े–बड़े तालाबों का निर्माण कराया एवं पुराने तालाबों का विस्तार किया था। विजयनगर कालीन अभिलेखों में पुराने तालाबों के विस्तार, उनकी मरम्मत एवं नवीन तालाबों के निर्माण के अनेक साक्ष्य मिले हैं। वस्तुतः विजयनगर काल में सिंचाई –प्रबंध की उत्तम व्यवस्था थी, राज्य सिंचाई साधनों के प्रबंध, उनकी सुरक्षा एवं विस्तार पर पूरा ध्यान देता था। सिंचाई के साधनों की सुरक्षा में समुदाय का भी सहयोग लिया जाता था। ऐसे लोगों को कर मुक्त भूमि दी जाती थी, जो सिंचाई के साधनों की देखभाल एवं सुरक्षा करते थे। विजयनगर काल में भूमि प्रबंधन एवं सर्वेक्षण की सुव्यवस्था थी। कृषि भूमि का नियमित सर्वेक्षण किया जाता था एवं उसके सीमांकन के लिए पत्थर लगाए जाते थे। भूमि को कर प्रणाली हेतु सिंचित और असिंचित दो भागों में बांटा गया था।

विजयनगर साम्राज्य की प्रमुख फसल 'चावल' (धान) थी। धान, दाले, चना, जौ, तिलहन, नील, कपास, मसाले, काली मिर्च, अदरक, इलायची, नारियल आदि की होती थी। अब्दुर्रज्जाक ने विजयनगर में बड़ी संख्या में गुलाब की खेती देखी थी। अतः बागवनी का व्यवसाय भी उन्नत अवस्था में था। विजयनगर साम्राज्य में 'अट्ठावन' नामक विभाग कृषि कर को एकत्रित करता था। विजयनगर साम्राज्य का भूमि कर 'शिष्ट' नाम से जाना जाता था। विजयनगर साम्राज्य में विभेदकारी 'कर' पद्धति लागू थी। कृषि कर निर्धारण के लिए भूमि को चार भागों सिंचित, शुष्क, उद्यान एवं वन भूमि में विभाजित किया गया था। विजयनगर शासक कृषि भूमि पर उपज का 1/3 से लेकर 1/6 भाग लेते थे। भूमि कर का निर्धारण भूमि की श्रेणी एवं फसल की उपज के आधार पर किया जाता था। ब्राह्मणों की भूमि अग्रहारों पर उपज का 1/20 भाग तथा देवालयों की भूमि पर 1/30 भाग कृषि कर लिया जाता था। कृषि कर नगद एवं अन्न दोनों रूपों में कृषकों को देने की छूट थी। कृषि के साथ पशुपालन भी ग्रामीणों एवं कृषकों की आय का प्रमुख व्यवसाय था। कृषि में पशुओं की आवश्यकता अनिवार्यतः होती थी, अतः पशुपालन प्रत्येक कृषक परिवार द्वारा निश्चित रूप से किया जाता था। प्रसिद्ध इतिहासविद् नीलकण्ठ शास्त्री का मत है कि, पशुपालन एवं दुग्धपालक उद्योग कृषि से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ था। प्रत्येक ग्राम में चारागाह के लिए भूमि अलग से छोड़ी जाती थी। इस उद्योग का सर्वदा बड़ा प्रचार–प्रसार रहा होगा। तत्कालीन साक्ष्यों में मंदिरों, भोजनालयों के पशुओं, चारवाहों तथा मंदिर एवं उनके स्वामियों के उत्तरदायित्वों का उल्लेख पाते हैं। मवेशियों से प्राप्त घी का प्रयोग मंदिरों में दीपक जलाने के साथ ही, सर्वसाधारण द्वारा भोजन में भी किया जाता था मवेशियों से दूध, दही, मक्खन एवं घी प्राप्त होता था।

2.6.2 व्यवसाय :

विजयनगर काल में प्रशासनिक सुव्यवस्था एवं राजकीय इच्छा शक्ति के कारण व्यवसायों की प्रतिष्ठा, सुरक्षा एवं उन्नति पर समुचित ध्यान दिया जता था। विजयनगर काल में वस्त्र उद्योग उन्नत अवस्था थी। कटाई एवं बुनाई एक प्रमुख उद्योग था। बुनकरों की मण्डलियाँ संगठित होकर व्यवसाय करती थी। विजयनगर प्रशासन बुनकरों, दस्तकारों, शिल्पियों आदि को संरक्षण प्रदान करता था। श्री रंग के शासनकाल के 1632 ई0 के एक अभिलेख से बढ़ई, लोहार, स्वर्णकार के साथ दुर्व्यवहार एवं उनके विशेषाधिकार के हनन पर 12 पण अर्थदण्ड का उल्लेख है। इस प्रकार स्पष्ट है कि, राज्य शिल्पियों और कामगारों को अपना सक्रिय सहयोग देता था। विजयनगर काल में धातु उद्योग एवं जौहरियों की कला की परिपक्वता उत्कृष्ट स्तर की थी। खान–खनन एवं धातु शोधन विजयनगर साम्राज्य का प्रमुख व्यवसाय बन गया था। इत्र का व्यवसाय भी विजयनगर साम्राज्य में उन्नत अवस्था में था। समुद्र किनारे मोती–सीप पकड़ने एवं मछली पकड़ने का व्यवसाय भी किया जाता था। वास्तुकला विशेषज्ञों, शिल्पकारों एवं चित्रकारों का भी व्यवसाय था। विजयनगर कालीन व्यवसायी एवं व्यापारी व्यापारिक संघों, श्रेणियों और समूहों में संगठित होकर कार्य करते थे। व्यापारी वर्ग में चेट्टी समुदाय विशेष प्रभावशाली था और राजदरबार में भी इसका सम्मान एवं प्रभाव था।

2.6.3 व्यापार :

विजयनगर कालीन अर्थव्यवस्था में व्यापार की महत्वपूर्ण भूमिका थी। विजयनगर साम्राज्य के आंतरिक एवं बाह्म व्यापार ने अभूतपूर्व प्रगति की। विजयनगर काल में व्यापार जल – थल दोनों ही मार्गों से होता था। विदेशी व्यापार अधिकांशतः विदेशियों के हाथों में था। विजयनगर साम्राज्य में विदेशी व्यापार के लिए अनेक बंदरगाह थे, विदेशी यात्री अब्दुर्रज्जाक विजयनगर साम्राज्य में 300 बंदरगाहों का उल्लेख करता है। अब्दुर्रज्जाक विजयनगर साम्राज्य के हिन्द महासागर के द्वीपों से व्यापारिक सम्बन्धों का भी उल्लेख करता है। विजयनगर साम्राज्य का आंतरिक व्यापार विकसित अवस्था में था। राज्य व्यापार एवं व्यापारियों की सुरक्षा की पूरा व्यवस्था करता था। राज्य के आंतरिक व्यापार में व्यापारियों की मार्ग में सुरक्षा का प्रबंध भी राज्य करता था। विजयनगर शासक व्यापार एवं व्यापारियों के स्थानीय व्यापार को प्रोत्साहन देने के लिए नगरों में नियमित रूप से मेलों का आयोजन करवाता था। मेलों का आयोजन समीप के कस्बों के व्यापार संघों द्वारा किया जाता था। इसकी देखभाल और व्यवस्था भी व्यापार संघ के अध्यक्ष द्वारा की जाती थी जिसे 'पट्टनस्वामी' कहते थे। वस्त्रों की बुनाई, खान–खनन एवं धातु शोधन विजयनगर साम्राज्य के प्रमुख व्यवसाय थे। धातु कर्म व्यवसाय सर्वाधिक विकसित अवस्था में था। छोटे व्यवसायों में सबसे महत्वपूर्ण व्यवसाय 'गन्धी' (इत्र) का था। व्यापारी अपने व्यापार की उन्नति और सुरक्षा के लिए संघों और श्रेणियों में संगठित थे।विदेशी यात्रियों के वृतांतों से ज्ञात है कि, विजयनगर साम्राज्य का विदेशी व्यापार बहुत विकसित स्थिति में था। विजयनगर साम्राज्य का विदेशी व्यापार श्रीलंका, पेगू, मलाया, चीन, अफ्रीकी देशों, अरब देशों, फारस, इटली, पुर्तगाल आदि देशों से था। विजयनगर साम्राज्य विदेशों से हाथी, घोड़े, रेशमी, जरीदार एवं बूटेदार वस्त्र, मखमल, मूल्यवान पत्थर, पारा, तांबा, कोयला आदि वस्तुओं का आयात करता था। विजयनगर साम्राज्य में सबसे महत्वपूर्ण आयातित वस्तु घोड़े थे। जबकि, विजयनगर साम्राज्य से विदेशों को हीरे, कपड़ा, शोरा, चीनी, चावल, मसाले, काली मिर्च, अदरक, इत्र आदि वस्तुओं का निर्यात होता था।

2.6.4 मुद्रा व्यवस्था :

विजयनगर कालीन अर्थव्यवस्था के विकास में ठोस मुद्रा प्रणाली की महत्वपूर्ण भूमिका थी। विजयनगर साम्राज्य की 'मुद्रा' देशी एवं विदेशी व्यापारियों के बीच बहुत ही विश्वसनीय थी। विजयनगर साम्राज्य के शासकों ने सोने, चाँदी आदि धातुओं के सिक्के जारी किये। विजयनगर कालीन 'मुद्रा' को हूण, परदौस (पगोड़ा), वाराह, प्रताप, फणम्, तार आदि कहा गया है। सोने के सिक्कों को वाराह, प्रताप तथा फणम् कहा जाता था। चाँदी के छोटे सिक्के को 'तार' कहा जाता था। विजयनगर का सर्वाधिक प्रसिद्ध सिक्का सोने का 'वाराह' था। सोने का सिक्का 'वाराह' सम्पूर्ण भारत तथा विश्व के प्रमुख व्यापारिक नगरों में स्वीकार किया जाता था। विजयनगर साम्राज्य के सिक्कों पर हनुमान, लक्ष्मी नारायण, उमामहेश्वर, वेंकटेश और बालकृष्ण बैल, गरूड़, वाराह, शंख, चक्र आदि आकृतियाँ अंकित मिलती है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न :

(i) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. विजयनगर साम्राज्य में 'शिष्ट' था। ?

(क) भूमि कर (ख) सिंचाई कर

(ग) व्यवसाय कर (घ) इनमें से कोई नहीं

2. देवालयों की भूमि पर कृषि कर लिया जाता था ?

(क) 1/10 भाग (ख) 1/20 भाग

(ग) 1/30 भाग (घ) इनमें से कोई नहीं

3. विजयनगर कालीन स्वर्ण मुद्रा थी ?

(क) दीनार (ख) कार्षापण

(ग) वाराह (घ) इनमें से कोई नहीं

4. 'गन्धी' का व्यवसाय संबंधित था?

(क) वस्त्रों का (ख) इत्र का

(ग) हाथीदाँत का (घ) इनमें से कोई नहीं

5. विजयनगर साम्राज्य में सबसे महत्वपूर्ण आयातित वस्तु थी ?

(क) हाथी (ख) खच्चर

(ग) घोड़े (घ) इनमें से कोई नहीं

(ii) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) व्यवसाय ।

(ख) मुद्रा ।

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) विजयनगर कालीन कृषि एवं सिंचाई का विवरण दीजिये ?

2.7 कला :

विजयनगर साम्राज्य के शासक कला के महान संरक्षक थे। वे न केवल कला एवं कलाकारों के संरक्षक थे, अपितु स्वयं भी कला के अच्छे पारिखी भी थे। विजयनगर साम्राज्य के शासकों ने स्थापत्य, चित्रकला, संगीतकला आदि के विकास में सक्रिय भूमिका निभायी। उन्होंने चित्रकला एवं

संगीतकला के कलाकारों को संरक्षण दिया तथा स्थापत्य कला के साक्षात स्वरूप अनेक भवनों एवं मंदिरों का निर्माण करवाया।

2.7.1 स्थापत्य कला :

विजयनगर साम्राज्य के शासनकाल में स्थापत्य कला के अंग अनेक भव्य मंदिरों का निर्माण हुआ। पुरातत्वविद् के० आर० श्रीनिवासन ने लिखा है कि, मंदिरों के निर्माण में कठोर पाषाण का प्रयोग विजयनगर कालीन मंदिर स्थापत्य कला की प्रमुख विशेषता है। प्रसिद्ध इतिहासविद् नीलकण्ठ शास्त्री ने विजयनगर कालीन मंदिर स्थापत्य कला की प्रमुख विशेषताओं के विषय में लिखा है कि, गर्भगृह, अर्धमंडप, मंडप, महामंडप, कल्याण मंडप, गरूड़ मंडप, अन्य मंडप, समूह प्रकार, गोपुरम्, सहस्त्र स्तम्भ मंडप आदि प्रमुख विशेषताएँ थी। विजयनगर कालीन मंदिर स्थापत्य कला में गोपुरम् का निर्माण और स्तम्भों के अलंकरण पर विशेष ध्यान दिया गया है। स्तम्भ की विविध एवं जटिल सजावट विजयनगर शैली की सबसे बड़ी विशेषता है। स्तम्भ के चारों ओर बड़े–बड़े तथा गोलाकार मूर्तियों के काफी समूह हैं, जिसमें सर्वाधिक सगोचर तत्व है। पिछले पैर के बल पर खड़े कुछ घोड़े या कोई अलौकिक जानवर। सभी स्तम्भ व मूर्तियाँ एक ही ठोस पत्थर को काट कर निर्मित होती थी। विजयनगर वास्तुकला की अन्तिम शैली को मदुरा शैली कहा जाता है। विजयनगर के महान शासक कृष्णदेव राय ने हजारा राम एवं विट्ठलस्वामी मंदिर का निर्माण कराया। कृष्णदेव राय ने चिदम्बरम् मंदिर, अम्बारम में तदाप्ति और पार्वती का मंदिर, कांचीपुरम में बरदराज और एकम्बरनाथ मंदिर का निर्माण करवाया था। अच्युत राय (1530–1542 ई०) ने हम्पी में पट्टाभिराम मंदिर का निर्माण करवाया ।

2.7.2 चित्रकला एवं संगीतकला :

विजयनगर साम्राज्य के शासनकाल में चित्रकला एवं संगीतकला का भी विकास हुआ। के अंग अनेक भव्य मंदिरों का निर्माण हुआ। विजयनगर साम्राज्य के शासकों ने चित्रकला एवं संगीतकला के कलाकारों को संरक्षण दिया। विजयनगर काल में चित्रकला की स्वतंत्र शैली का विकास हुआ। यह चित्रकला शैली 'लिपाक्षी कला' के नाम से जानी जाती है। लिपाक्षी चित्रकला शैली के विषय रामायण एवं महाभारत के पात्रों, दृष्टांतों एवं घटनाओं पर आधारित होते थे। विजयनगर साम्राज्य के शासनकाल में संगीतकला का भी पर्याप्त विकास हुआ। विजयनगर काल में संगीतकला की स्वतंत्र शैली, 'यक्षणी शैली' का विकास हुआ। यक्षणी शैली का विकास नृत्य और संगीत के सम्मिलियन से हुआ था। वीणा विजयनगर साम्राज्य का सर्वाधिक प्रसिद्ध और लोकप्रिय संगीत वाद्य था। विजयनगर साम्राज्य के शासकों ने संगीतकला के विकास एवं संगीतकला के कलाकारों के संरक्षण में अपना पूर्ण योगदान प्रदान किया। विजयनगर साम्राज्य के शासक कृष्णदेव राय एवं रामराय स्वयं भी अच्छे संगीतज्ञ थे। अतः उन्हें संगीतकला की अच्छी परख भी थी। कृष्णदेव राय का दरबारी संगीतकार लक्ष्मी नारायण था, उसने 'संगीत सूर्योदय' नामक संगीत ग्रन्थ की रचना की थी। संत विधारणय ने संगीत ग्रन्थ 'संगीतसार' की रचना की। संगीत ग्रन्थों के लेखक कल्लिनाथ को मल्लिकार्जुन का संरक्षण प्राप्त था। मल्लिनाथ के पौत्र राम अमात्य को रामराय ने संरक्षण दिया था। राम अमात्य ने 'स्वरमेलकलानिधि' नामक संगीत ग्रन्थ की रचना की थी।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न :

(i) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) चित्रकला ।

(ख) संगीतकला ।

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

(अ) विजयनगर कालीन कला का विवरण दीजिये ?

2.8 सारांश :

विजयनगर साम्राज्य के शासकों ने अपने लगभग तीन शताब्दियों के शासनकाल ने सांस्कृतिक क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति की। मध्यकालीन इस्लामिक धर्मान्धता के काल में विजयनगर साम्राज्य के शासकों ने महान् धार्मिक सहिष्णुता का परिचय दिया। विजयनगर साम्राज्य कुशल सम्राटों ने आर्थिक तत्वों का महत्व समझते हुए, कृषि उद्योग धंधे, व्यापार एवं वाणिज्य आदि क्षेत्रों में अभूतपूर्व प्रगति की। विजयनगर साम्राज्य के शासकों के शासनकाल में राज्य की संमृद्धि और वैभव का जीवंत उदाहरण बन गया था। प्रजा जीवन सुखी, सम्पन्न, संतुष्ट एवं संपन्न था। विजयनगर साम्राज्य के शासकों ने विजयनगर को हिन्दू धर्म, संस्कृति, साहित्य एवं कला का बड़ा केन्द्र बना दिया था।

2.9 तकनीकी शब्दावली :

अग्रहार : ब्राह्मण शिक्षा के केन्द्र, कर मुक्त ग्राम

बौद्ध विहार : बौद्ध भिक्षुओं के रहने का भवन

क्रीड़ा : खेलकूद

यज्ञोपवीत : पवित्र जनेऊ

पुनरूत्थान : फिर से उत्थान होना

स्थापत्य कला : भवन निर्माण कला

वाराह : सुअर

2.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर :

इकाई 2.3 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(i) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिएः

1. देखिए **2.3.**7 शिक्षा
2. देखिए 2.3.1 वर्णाश्रम व्यवस्था
3. देखिए 2.3.2 स्त्रियों की स्थिति
4. देखिए 2.3.6 क्रीड़ा एवं मनोरंजन
5. देखिए 2.3.6 क्रीड़ा एवं मनोरंजन

(ii) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) देखिए 2.3.3 सती प्रथा

(ख) देखिए 2.3.2 स्त्रियों की स्थिति

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

(अ) देखिए 2.3.1 वर्णाश्रम व्यवस्था

इकाई 2.4 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(i) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिएः

1. देखिए 2.4 साहित्य
2. देखिए 2.4 साहित्य
3. देखिए 2.4 साहित्य
4. देखिए 2.4 साहित्य
5 देखिए 2.4 साहित्य

(ii) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

(अ) देखिए 2.4 साहित्य

इकाई 2.5 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(i) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिएः

1. देखिए 2.5 धार्मिक दशा
2. देखिए 2.5 धार्मिक दशा
3. देखिए 2.5 धार्मिक दशा
4. देखिए 2.5 धार्मिक दशा
5 देखिए 2.5 धार्मिक दशा

(ii) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) देखिए 2.5 धार्मिक दशा

(ख) देखिए 2.5 धार्मिक दशा

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

(अ) देखिए 2.5 धार्मिक दशा

इकाई 2.6 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(i) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिएः

1. देखिए 2.6.1 कृषि एवं सिंचाई
2. देखिए 2.6.1 कृषि एवं सिंचाई
3. देखिए 2.6.4 मुद्रा व्यवस्था
4. देखिए 2.6.2 व्यवसाय
5 देखिए 2.6.3 व्यापार

(ii) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) देखिए 2.6.2 व्यवसाय

(ख) देखिए 2.6.4 मुद्रा व्यवस्था

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

(अ) देखिए 2.6.1 कृषि एवं सिंचाई

इकाई 2.7 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(i) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) देखिए 2.7.2 चित्रकला एवं संगीतकला

(ख) देखिए 2.7.2 चित्रकला एवं संगीतकला

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

(अ) देखिए 2.7 कला

2.11 संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. भण्डारकर, आर० जी० – *वैष्णानाविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रिलीजियस सिस्टम्स्,* स्टॉसबर्ग, 1913 (हिन्दी संस्करण, डॉ० महेश्वरी प्रसाद, बनारस, 1967)
2. महालिंगन, टी.वी.– *एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड सोशल लाइफ अण्डर विजयनगर,*मद्रास, 1940
   – *इकोनोमिक लाइफ अण्डर विजयनगर,* मद्रास, 1951
   – *साउथ इण्डिया पोलिटी,* मद्रास, 1955
3. रमनैय्या, एन० वेंकट – *स्ट्डीज इन द हिस्ट्री ऑफ द थर्ड डायनेस्टी विजयनगर,* मद्रास, 1935
4. शास्त्री, के० ए० नीलकंठ –*द न्यू हिस्ट्री ऑफ द इण्डियन पिपुल, बनारस,* 1954
   – *फॉरेन नोटिसेज ऑफ साउथ इण्डिया,* मद्रास, 1939
   – *दक्षिण भारत का इतिहास,* पटना, 2006
5. श्रीनिवासन, के० आर० – *दक्षिण भारत के मंदिर,* नई दिल्ली, 2016
6. सेवेल, आर० – *ए फारगौटेन एम्पायर,* लंदन, 1924

2.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री :

1. शर्मा, एल० पी० – *मध्यकालीन भारत,* आगरा,1998
2. सिन्हा, वी० बी० – *दिल्ली सल्तनत,* नई दिल्ली, 1994
3. शर्मा, आनन्द कुमार – *दक्षिण भारत का इतिहास,* नई दिल्ली, 2011
4. वर्मा, एच० सी० – *मध्यकालीन भारत,* भाग 1, दिल्ली,1999

2.13 निबंधात्मक प्रश्न :

प्रश्न 1. विजयनगर कालीन संस्कृति का विस्तृत रूप से विवरण दीजिये ?

प्रश्न 2. विजयनगर कालीन सामाजिक स्थिति का विस्तृत रूप से विवरण दीजिये ?

प्रश्न 3. विजयनगर कालीन धार्मिक स्थिति पर प्रकाश डालिये ?

प्रश्न 4. विजयनगर कालीन आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डालिये ?

ब्लॉक एक

इकाई तीनः मुगलकालीन संस्कृति

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 मुगलकालीन समाज

- 3.3.1 मुस्लिम समाज
- 3.3.2 स्तर की दृष्टि से मुस्लिम समाज का वर्गीकरण
- 3.3.3 सम्राट तथा सामन्तों का वर्ग
- 3.3.4 उलेमा अथवा धर्मतत्वज्ञों का वर्ग
- 3.3.5 सर्वसाधारण वर्ग
- 3.3.6 मुसलमानों का शहरी जीवन
- 3.3.7 मुस्लिम समाज पर हिन्दु जाति व्यवस्था का प्रभाव

3.4 मुगलकालीन हिन्दू समाज

- 3.4.1 हिन्दू समाज का आधार वर्ग एवं जाति व्यवस्था
- 3.4.2 जाति व्यवस्था की जटिलताएँ

3.5 भारतीयों का सामाजिक जीवन स्तर

3.6 उच्च वर्ग

3.7 अमीर–उमरा तथा हिन्दू सामन्तों का रहन–सहन

3.8 मध्य वर्ग का जीवन स्तर

3.9 निम्नवर्ग का रहन–सहन

3.10 दास–प्रथा की लोकप्रियता

3.11 मुगलकाल में महिलाओं की स्थिति

- 3.11:1 हरम
- 3.11:2 शाही घराने की स्त्रियों की स्थिति
- 3.11:3 उच्च वर्ग की स्त्रियों की शिक्षा–दीक्षा
- 3.11:4 उच्चवर्ग की स्त्रियों की कलात्मक अभिरूचि

3.12 सामाजिक दोष

- 3.12:1 तिलक–दहेज की प्रथा
- 3.12:2 पर्दे की प्रथा
- 3.12:3 सती और जौहर की प्रथा

3.13 स्त्रियों का जीवन–स्तर

3.14 खान–पान

3.15 पोशाक तथा प्रसाधन

3.16 आभूषण

3.17 मनोरंजन के विभिन्न साधन

3.18 पर्व–त्यौहार

3.19 खेल–कूद

3.20 हिन्दु–मुस्लिम समन्वय

3.21 परस्पर सामंजस्य, सहयोग एवं सहिस्णुता की भावना का विकास

3.22 सारांश

3.23 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.24 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.1 प्रस्तावना

16वीं शताब्दी में भारत में मुगलों का आगमन एक महत्वपूर्ण एवं युगान्तकारी घटना थी। इसने भारत के राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को काफी प्रभावित किया। इस्लाम के आगमन के पश्चात् एक नये धर्म, एक नयी जाति, एक नयी राजनीति और एक नयी सभ्यता एक संस्कृति की शुभारम्भ हुई जो अनेक अर्थों में परम्परागत भारतीय सभ्यता–संस्कृति से भिन्न थी। वह वे शक्तिशाली होने के वाबजूद भारतीय संस्कृति के क्षेत्रों में मौलिक परिवर्तन लाने में असफल रहे। मुस्लिम और हिन्दू सभ्यताएँ उस नदी के दो तटों की तरह सदियों इस देश में प्रवाहित होती रहीं, जो कभी भी आपस में एक–दूसरे से नहीं मिलती है। परन्तु एक दूसरे से प्रभावित हुए बिना नहीं रह पायी। इतिहास साक्षी है कि जहां कहीं और जब कभी भी दो भिन्न सभ्यताओं का मिलन हुआ है, उन्होंने इच्छा या अनिच्छा से एक–दूसरे को प्रभावित किया ही है। अस्तु, भारतवर्ष में हिन्दू एवं इस्लाम के संगम से स्वाभाविक रूप से इस देश की सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन में परिवर्तन आये। तुर्क अफगान काल में धीरे–धीरे ये परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगे और मुगलकाल में इनमें परिपक्वता आ गई। आज भी हम उसी धारे के साथ प्रभावित हो रहे हैं।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप जान सकेंगें कि–

- मुगलकालीन भारत की सामाजिक स्थिति कैसी थी।
- हिन्दू एवं मुस्लिम समाज किस प्रकार एक दूसरे से भिन्न था।
- समाज में महिलाओं की स्थिति कैसी थी।
- दो भिन्न धर्म एवं संस्कृति के लोग किस प्रकार एक दूसरे के निकट आए और सांस्कृतिक समन्वय हुआ।
- भारतीय संस्कृति एवं इस्लाम ने किस प्रकार एवं कितनी मात्रा में एक दूसरे को प्रभावित किया।
- भारतीय संस्कृति ने किस प्रकार एक नई और विदेशी संस्कृति को भी अन्दर समाहित कर लिया।

3.3 मुगलकालीन समाज

मुगल शासक भारत में लगभग तीन शताब्दियों तक शासन करते रहे। इनमें से अधिकांश अपनी उदारता के कारण सामाजिक–सांस्कृतिक समन्वयवादी नीति के पोषक थे जिससे भारतीय जीवन शैली पर गहरा प्रभाव पड़ा और मुगल संस्कृति विकास की ओर उन्मुख हुई। दिल्ली–सल्तनत के समान मुगलकालीन समाज भी दो भागों में विभाजित था। 1–मुस्लिम समाज 2–हिन्दु समाज

3.3:1 मुस्लिम समाज

मुगलकालीन मुस्लिम समाज का आधार सामन्तवादी ढाँचा था जिसमें सर्वोच्च स्थान पर बादशाह स्वयं आसीन था। तत्पश्चात् शाही परिवार और अभिजात वर्ग स्थित थे जो राज्य के सभी वर्ग महत्वपूर्ण पदों पर एकाधिकार जमाए हुए थे। मुगलकाल में भी सल्तनत काल के समान विदेशी मुसलमानों को कई विशेषाधिकार प्राप्त थे। कुछ विदेशी मुसलमानों ने भारत में विदेशी व्यापार पर भी अपना एकाधिकार स्थापित कर लिया था। अतः अत्यधिक सम्पन्नता के कारण वे आरामदायक और विलासमय जीवन व्यतीत करते थे।

3.3:2 स्तर की दृष्टि से मुस्लिम समाज का वर्गीकरण

जीवन स्तर के दृष्टि से मुस्लिम समाज को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। 1–सम्राट तथा सामन्तों का वर्ग 2–उलेमा अथवा धर्मत्वज्ञों का वर्ग 3–सर्वसाधारण वर्ग

3.3:3 सम्राट तथा सामन्तों का वर्ग

मुगल सम्राट एवं उसके परिवार के सदस्यों का समाज में श्रेष्ठतम स्थान था। सम्राट के राजनीतिक एवं आर्थिक अधिकार असीम थे। सामन्तों का स्थान समाज में सम्राट के बाद ही आता था। इस वर्ग में विदेशी मुसलमानों को ही प्रधानता थी और मुगल राजनीति एवं प्रशासन में वे अत्यन्त प्रभावशाली थे, किन्तु उनका पद वंशानुगत नहीं होता था। एक सामन्त की मृत्यु के पश्चात् उसकी सम्पत्ति पर सरकार का अधिकार हो जाता था। इस वर्ग के सदस्यों के बीच समरूपता की नितांत कमी थी और

यह वर्ग सुव्यवस्थित भी नहीं था। इन कमजोरियों के कारण यह वर्ग अत्यन्त प्रभावशाली होते हुए भी देश के लिए लाभदायक प्रमाणित नहीं हो सका।

3.3:4 उलेमा अथवा धर्मतत्वज्ञों का वर्ग

उलेमा वर्ग के लोग धर्मतत्वज्ञ होते थे और भारतीय राजनीति एवं मुस्लिम समाज पर इनका काफी प्रभाव था। सामान्तवर्ग की तुलना में यहा वर्ग अपने अधिकारों एवं प्रभावों के प्रति सचेत और सुव्यवस्थित था। देश में न्याय–सम्बन्धी पदों तथा धार्मिक एवं शैक्षणिक नौकरियों पर उनका प्रायः एकाधिकार था। इनमें से अनेक इमाम, मुहतसिब, मुफ्ती तथा काज़ी के पदों पर नियुक्त थे और धर्मप्रचार में लगे हुए थे। मुगल प्रशासन पर तुर्क–अफगान की तरह ही उलेमा वर्ग का यथेष्ट प्रभाव था और उनसे समय–समय पर सलाह लिया करते थे, किन्तु देश, राजनीति, प्रशासन अथवा धर्म पर उलेमा के प्रभाव का हानिकारक प्रभाव पड़ा। निःसंदेह उलेमा विद्वान होते थे, पर यह आवश्यक नही कि वे सफल राजनीतिज्ञ भी हों। वस्तुतः वे प्रधानरूप से सैद्धान्तिक एवं आदर्शवादी होते थे। अतः राजनीतिक समस्याओं के प्रति उनका दृष्टिकोण संकीर्ण एवं सीमित होता था। ये सम्राट के धार्मिक नीति को रूढ़िवादी एवं अनुदार बनाते और अधिक उलझा देते थे। भारत में मुस्लिम शासन को लोकप्रिय बनाने में इस वर्ग का महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

3.3:5 सर्वसाधारण वर्ग

सर्वसाधारण वर्ग में उपर्युक्त मुसलमानों को छोड़कर भारत के अन्य सभी मुसलमान आ जाते थे। इनका प्रशासन में कोई दखल नहीं था, अतः ये शासक सामन्त तथा उलेमा लोगों की दया पर जीते थे, मुस्लिम समाज का यह निम्न स्तर वर्ग मुख्यतः शिल्पी, दुकानदार, लिपिक, छोटे–छोटे व्यापारी, नौकर–चाकर तथा मुस्लिम कृषकों द्वारा निर्मित था। इनके अति रिक्त नायित, धोबी, दर्जी, चुड़िहारे, नाव–चालक, कसाई, घसियारे, ढ़ोलकची, फकीर, भिखमंगे आदि भी इस वर्ग में आते थे। मुगलकाल तक धर्म परिवर्तित मुस्लिम जनसंख्या में काफी वृद्धि हो चुकी थी। इस वर्ग को मुगल प्रशासन में अथवा सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में कोई सुविधा प्राप्त नहीं थी। इनमें से कुछ ऐसे थे जो हिन्दु जाति की कुछ समानता अभी तक रखे हुए थे।

3.3:6 मुसलमानों का शहरी जीवन

मुसलमान ग्राम–जीवन से भय खाते थे और प्रायः शहरों में ही रहा करते थे। शहरों में वे सैनिक अथवा गैर सैनिक सरकारी नौकरियाँ करते थे। कुछ लोग वाणिज्य–व्यवसाय, दुकानदारी तथा अन्य पेशों में लगे हुए थे। ये मुख्यतः विदेशी मुसलमान थे। विदेशी मुसलमान शहरों में छोटे–मोटे व्यापार, चिकित्सक, हस्तशिल्प, शिल्पी, कसाई, हजाम, बढ़ई बुनकर, लकड़हारा, चित्रकार, लोहार, पनभरे तथा सुलेखन आदि का पेशा किया करते थे। वैसे कुछ मुसलमानों ने कृषि पेशा को भी अपना रखा था।

3.3:7 मुस्लिम समाज पर हिन्दु जाति व्यवस्था का प्रभाव

इस्लाम जो सैद्धान्तिक रूप से जाति व्यवस्था का विरोधी रहा है, हिन्दुओं की शक्तिशाली एवं व्यापक जाति व्यवस्था के सम्पर्क में आकर अछूता नहीं रह सका। विदेशी तथा भारतीय दोनों प्रकार के मुसलमानों पर हिन्दू जाति व्यवस्था का गहरा प्रभाव पड़ा। यही कारण है कि इसकाल में हम अरबी, ईरानी, शैख, मुगल, पठान और सैयद सभी को जाति व्यवस्था की विशेषताओं को कुछ अंशों में

अपनाते हुए तथा भारतीय मुसलमानों को अपनी पैतृक मान्यता बनाए रखते हुए पाते हैं। हिन्दुओं के समान मुसलमान भी दो सामाजिक श्रेणियों में विभक्त हो गये–उच्चवर्ग अथवा शरीफ और निम्नवर्ग अथवा अजलाफ। पहले वर्ग में सैयद, शैख, मुगल, और पठान आते थे जो विभिन्न सरकारी पदों पर नियुक्त थे अथवा सैनिक, शिक्षा एवं आर्थिक पेशों में लगे हुए थे। ये सुविधा प्राप्त वर्ग के लोग थे, दूसरे वर्ग में कृषक, शिल्पी, व्यापारी अथवा ऐसे लोग शामिल थे, जो उच्च वर्ग की सेवा किया करते थे। इस वर्ग के लोगों को शायद ही कोई सुविधा प्राप्त थी।

3.4 मुगलकालीन हिन्दू समाज

भारतीय समाज में संख्या की दृष्टि से सदा हिन्दुओं की प्रधानता रही है। मुगलकाल में उनमें से अनेक समृद्ध–प्रधान, व्यापारी–कृषक एवं नौकरी पेशे के लोग थे। इनमें कृषकों की संख्या सबसे अधिक थी। देश के अधिकांश भूक्षेत्र के वे स्वामी थे और कोई भी राजनीतिक शक्ति चाहे कितनी भी शक्तिशाली क्यों न हों, हिन्दुओं के भारत में भूक्षेत्र स्वामित्व को समाप्त करने में असफल रही।

राजस्व सम्बन्धी शासन संचालन में मुसलमान शासकों को अनिवार्य रूप से हिन्दू अधिकारियों का सहयोग लेना पड़ा क्योंकि इस क्षेत्र में उनको काफी अनुभव था और चौधरी, खूत तथा मुकद्दम के पदों पर सामान्य रूप से उन्हीं की नियुक्ति की जाती थी।

अकबर के शासनकाल से लेकर औरंगजेब के शासनकाल के प्रारम्भिक दशक तक जब हिन्दुओं को धार्मिक उदारता के वातावरण में सांस लेने का अवसर मिला था, हिन्दुओं को ऊँचे मनसब पद प्रदान किए गए और उन्हें शासन में वरिष्ठ पद भी प्राप्त हुए, किन्तु इसके पूर्व अथवा इसके पश्चात् उनकी स्थिति इस दृष्टिकोण से संतोषजनक नहीं कही जा सकती है। इस युग में भी तुर्क–अफगान काल की तुलना में हिन्दुओं की स्थिति अच्छी थी, सामान्य तौर पर यह कहा जा सकता है कि एक जाति अथवा एक राष्ट्र के रूप में राजनीतिक, सामाजिक, एवं आर्थिक दृष्टिकोण से उनका पतन ही हुआ। मुसलमानों ने सिर्फ देश की सार्वभौम सत्ता को उनके हाथों से छीन लिया था अपितु उन्हें ऊँचे प्रशासनिक एवं सैनिक पदों से हटा दिया तथा उनकी जातीय एवं धार्मिक स्वतंत्रता पर भी प्रहार किया था। इन सभी बातों से स्वाभिमानी हिन्दुओं की भावना को अवश्य ही गहरा धक्का लगा होगा, क्योंकि वे मुसलमानों को एवं उनकी सभ्यता को हीन समझते थे।

3.4:1 हिन्दू समाज का आधार वर्ग एवं जाति व्यवस्था

हिन्दू समाज परम्परागत वर्ण व्यवस्था, वर्णाश्रम, धर्म एवं जातीय व्यवस्था पर आधारित था। यह परम्परागता चार प्रधान वर्णों में विभक्त था और जातियां अनेक उपजातियों में बंटी हुई थी। चार प्रधान वर्ण थे– ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र। इन चारों में ब्राहमणों की प्रधानता थी और समाज में उनका श्रेष्ठ स्थान था। उनका मुख्य कार्य पूजा–पाठ, अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ, बली आदि के कार्यों को सम्पादित करना तथा दान प्राप्त करना था। मुगलकाल में उनकी प्रतिष्ठा एवं कार्यों में निश्चित रूप से परिवर्तन आया। इसकाल तक बली जैसे अनुष्ठान एवं यज्ञों में कमी आ गयी थी और वे अपने यजमानों के यहां शादी–ब्याह, जन्म अथवा धार्मिक अनुष्ठानों को सम्पन्न कर अपनी जीविका चलाते थे, किन्तु मात्र इससे जब उनका गुजारा नहीं होने लगा तो वे कृषि, व्यापार तथा नौकरी भी करने लगे। गुजरात के कुछ नागर ब्राहमण फारसी पढ़कर सरकारी अधिकारी भी बन गये थे।

क्षत्रियों का समाज में दूसरा स्थान था। उनके कंधों पर देश की सुरक्षा एवं सुव्यवस्था का भार था अतः वे अधिकांशतः शासक, सेनानायक एवं योद्धा के कार्यों को सम्पादित करते थे। क्षत्रियों के विषय

में विद्वानों में मतभेद रहा है और य निश्चितपूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि इसकाल में इस वर्ण के कौन–कौन सी जातियाँ थी। फिर भी राजपूत, जाट और मराठे स्वयं को क्षत्रिय मानते थे। क्षत्रियों के बाद सामाजिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से वैश्यों का स्थान था। वैश्य कृषि, व्यापार, उद्योग तथा रूपये की लेन–देन का काम करते थे। प्रारम्भ में इनकी गणना उच्च वर्ग में की जाती थी, किन्तु मध्यकाल में इनकी अवस्था में गिरावट आई और उन्हें निम्नवर्ग में स्थान मिला। इस वर्ग को किसी प्रकार का राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं था।

वर्ण व्यवस्था में शूद्र निम्नतम स्तर के थे और उनका कार्य अपने से उपर तीन वर्णों के लोगों की सेवा करना था। इस वर्ण में धोबी, शिल्पी, बुनकर, कुम्हार एवं कृषक आदि आते थे। जाति–बन्धन इन दिनों भी इतना कठोर था कि भक्तिकाल के अनेक उदार मस्तिष्क सन्तों के उपदेश भी इसकी जड़ को पूर्णरूप से उखाड़ फैंकने में असमर्थ रहे। स्वर्ण जातियों के अतिरिक्त हिन्दू समाज में अछूतों का भी एक वर्ग था, जिसमें डोम, चमार, चाण्डाल, कसाई तथा इसी तरह के अन्य जातियों के लोग आते थे। इनकी अवस्था अत्यन्त दयनीय एवं किसी भी रूप में दास वर्ग के लोगों से अच्छी नहीं थी। हिन्दू समाज स्पष्टतः उच्च तथा निम्न दो स्तरों में विभक्त था। उच्च वर्ग के लोगों को अनेक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक सुविधाएं थी। निम्नवर्ग के लोग यद्यपि संख्या में अधिक थे, वे अधिकांशतः आर्थिक कार्यों तथा सेवा के कार्यों में लगे रहते थे और उन्हें किसी प्रकार की सुविधा प्राप्त नहीं थी।

3.4:2 जाति व्यवस्था की जटिलताएँ

मुगलकाल तक हिन्दू जातीय व्यवस्था अत्यन्त जटिल हो गयी थी। जातियां अनेक उपजातियों में बंटी हुई थी। उपजातियां सजातीय वैवाहिक वर्ग थी और विवाह, खान–पान आदि सामाजिक अनुष्ठानों के दृष्टिकोण से ये महत्वपूर्ण समझी जाती थी। उपजातियों के अनेक गोत्र के लोग रहते थे और समान गोत्र के बीच विवाह निषिद्ध था। निम्नजातियों में जातीय पंचायत व्यवस्था थी किन्तु उच्च जातियों में इस तरह की व्यवस्था का हम अभाव पाते हैं। इस समय कुछ नयी उपजातियां भी पैदा हो गयी। मुगलकाल में कायस्थ जाति की स्थिति पहले से अच्छी हो गयीं। कायस्थ अध्ययन, अध्यापन के कार्यों में गहरी अभिरूचि रखते थे और वे अधिकतर लिपिक, सात्विक, तथा राजस्व अधिकारी के पदों पर बहाल किये जाते थे। धर्म परिवर्तन की प्रक्रिया इस काल में भी गतिमान थी और कुछ निम्नजातीय के हिन्दुओं विशेष रूप से बंगाल में इस्लाम को स्वीकार किया और पंजाब तथा कश्मीर के कुछ उच्च जातियों के हिन्दुओं ने इस धर्म को अपनाया। मुगल काल में हमें जाति–परिवर्तन के उदाहरण भी मिलते हैं अनेक जाति के लोगों का उच्च अथवा निम्न जाति में परिवर्तन हुए।

हिन्दुओं की जाति व्यवस्था इतनी व्यापक और शक्तिशाली रही हैं कि इसके सम्पर्क में जो कोई भी आया उसे प्रभावित किया है इस्लाम जो सैद्धान्तिक रूप से जाति व्यवस्था का विरोधी रहा है वह भी स्वयं को इस व्यवस्था के प्रभाव से अपने आपको पूर्णतः मुक्त रखने में असमर्थ रहा। हिन्दुओं के सम्पर्क में आने से मुसलमानों के बीच भी कुछ अशों में जाति–व्यवस्था ने अपना स्थान बना लिया।

3.5 भारतीयों का सामाजिक जीवन स्तर

सम्पूर्ण मध्यकाल में भारतीय समाज सामन्तवादी व्यवस्था पर आधारित था। समाज, जीवन–स्तर के दृष्टिकोण से तीन वर्गों में आधारित था। समाज उच्च वर्ग, मध्य वर्ग, और निम्नवर्ग।

3.6 उच्च वर्ग

उच्च वर्ग में सम्राट, उसके परिवार के सदस्य, अमीर, उमरा एवं उच्च पदाधिकारी आते थे। सम्राट का स्थान समस्त भारत में सर्वोच्च था। तुर्क–अफगान काल के सुल्तानों की तुलना में इसका जीवन स्तर और रहन–सहन वैभवशाली एवं आकर्षक था। दिल्ली के सम्राटों को नगरीय जीवन प्रिय था और उनके काल में लाहौर, दिल्ली और आगरा जैसे महानगर अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गये। मुगलों पर फारसी सभ्यता का गहरा प्रभाव था। अतः मुगल दरबार में फारसी दरबार का अनुकरण किया जाता था। विदेशी मदिरा, विदेशी फल अथवा बहुमूल्य वस्तुओं का मुगल दरबार में भरमार रहता था। राजदरबार में वैभव एवं ऐश्वर्य की प्रधानता थी। उनके खेमों में जीवन के सभी सुख सुविधाएं मुहैया कराई जाती थी। औरंगजेब को छोड़कर प्रायः समस्त मुगल सम्राट वस्त्रों तथा आभूषणों का साज श्रृंगार पसंद करते थे। शाहजहाँ के शासनकाल में मुगलदरबार में हम वैभव एवं ऐश्वर्य की पराकाष्ठा पाते हैं। वास्तव में सम्राटों ने न तो इस्लाम के आदेशों को माना न ही हिन्दुओं के कार्य पद्धति को स्वीकार किया।

3.7 अमीर–उमरा तथा हिन्दू सामन्तों का रहन–सहन

सम्राटों के ठीक नीचे अमीर–उमरा, हिन्दू सामन्त तथा उच्च सरकारी अधिकारी वर्ग के लोग आते थे। इस वर्ग के लोगों ने सम्राट के जीवन का अनुकरण किया। इस वर्ग के लोग विविध श्रेणी के मनसब पद या ओहदे प्राप्त कर राज्यशासन और समाज में प्रभावशाली हो गये थे। ये भी कम विलासी और आराम तलब नहीं थे। सम्राट का अनुकरण कर ये अपने हरम में बड़ी संख्या में स्त्रियों, नर्तकियों एवं दासियों को रखते थे। इनके पास धन की कमी नहीं थी, अतः सुरा एवं सुन्दरी के प्रति इनका आसक्त होना आश्चर्य का विषय नहीं रह जाता है। सम्राट की तरह ये भी ठाट–बात से रहते थे तथा अपने खान–पान, रहन–सहन तथा वेशभूषा और महलों पर धन का अपार व्यय करते थे। इनके विषय में तत्कालीन यूरोपीय पर्यटक अपना विचार व्यक्त करते हुए कहते हे कि ''अत्यधिक ठाट–बाट से भारत के कुछ अमीर यहाँ रहते हैं'' इस वर्ग के लोग अपने फिजुलखर्ची के लिए बदनाम थे। उनकी फिजुलखर्ची का एक प्रमुख कारण यह था कि उनकी सम्पत्ति उनकी मृत्यु के पश्चात् राज्य के द्वारा छीन ली जाती थी। मनसबदारी व्यवस्था वंशानुगत नहीं थी। अतः ये मनसबदार अपने जीवनकाल से है अपनी अर्जित सम्पत्ति फूँक डालते थे। धन ऐश्वर्य की प्रचुरता ने सामन्तों को अकर्मण्य बना दिया था।

3.8 मध्य वर्ग का जीवन स्तर

मध्यवर्ग में निम्न वर्ग के सरकारी कर्मचारी, व्यापारी और समृद्ध शिल्पी आते थे। इसी वर्ग में वकील, वैध, हकीम, शिक्षक, विद्वान, पंडित तथा उलेमा भी सम्मलित थे। किन्तु वास्तविक अर्थ में एक सशक्त मध्यम वर्ग का इस काल में विकास नहीं हो पाया। इतिहासकार मोरलैंड का मत है कि इस युग में मध्यम वर्ग, अथवा बुद्धिजीवी वर्ग प्रायः नगण्य था। बहुत अंशों में इसे ठीक ही कहा जा सकता है। वस्तुतः बुद्धिजीवी वर्ग के लोगों की संख्या देश में बहुत कम थी। उनमें अधिकांशतः शासक वर्ग पर आश्रित थे। अतः वे बहुधा उच्च वर्ग के अनुयायी ही थे और उन्हें खुश रखकर अपने स्वार्थ सिद्धि में लगे रहते थे। उनकी आर्थिक स्थिति संतोषजक नहीं, फिर भी ये उच्च वर्ग के लोगों की नकल करने में प्रसन्न रहते थे। विवाह, जन्म, पर्व–त्योहार आदि के अवसरों पर जहां तक सम्भव होता था ये खुलकर खर्च करते थे। उत्तर मुगलकाल में जब सामन्तों का पतन होने लगा, भारत में मध्यवर्ग की

संख्या एवं शक्ति में वृद्धि हुई। अठारहवीं सदी के पूर्वार्द्ध से प्रशासन में लिपिक अथवा अधिकारी इसी वर्ग के लोग थे, जिनकी संख्या काफी होती चली गई थी।

3.9 निम्नवर्ग का रहन–सहन

निम्नवर्ग में किसान, कर्मकार या गरीब शिल्पी, मजदूर, सेवक तथा सामान्य जनता आती थी। साधारणतः अनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी, किन्तु उन दिनों वस्तुओं का मूल्य कम होता था अतः कम पैसे से ही व्यक्तियों का जीवन निर्वाह संभव हो जाता था। प्रथम दो वर्गों की तुलना में खान–पान रहन–सहन, आवास अथवा पोशाक की इन्हें नितांत कमी रहती थी और कठिनाई से इनका समय व्यतीत होता था। हिन्दू अधिकांशतः गांवों में रहते थे और कृषि उनकी जीविका का मुख्य साधन था। मजदूरों के वेतन की दर काफी कम थी। वे किसी तरह से अपन जीवन निर्वाह किया करते थे।

मुसलमान शहरों में रहना पसंद करते थे और मजदूरी अथवा छोटी मोटी नौकरी के द्वारा अपना जीवन यापन किया करते थे। बुनकर, धोबी, बढ़ई, हजाम, कारीगर इत्यादि कार्य कर अपना जीवन निर्वाह किया करते थे। इस वर्ग में छोटे–छोटे व्यापारी और दुकानदार भी थे जिनकी अवस्था दूसरों से कुछ अच्छी थी। इस वर्ग के लोग सामान्यतः संतुष्ट और कष्टसहिष्णु होते थे।

3.10 दास–प्रथा की लोकप्रियता

मुगलकाल में दास प्रथा भी प्रचलित थी। यह प्रथा हिन्दू और मुसलमान दोनों के बीच समान रूप से लोकप्रिय थी। हिन्दुओं के बीच दास उपहार के रूप में सगे–सम्बन्धियों तथा मित्रों के बीच बांटे जाते थे। विजयनगर के हिन्दू साम्राज्य में इस प्रथा को मान्यता प्राप्त थी। हिन्दुओं की तुलना में मुसलमानों के बीच यह प्रथा और अधिक लोकप्रिय थी। मुस्लिम सामन्तों का जीवन युद्ध (रज्म) तथा आनन्द (बज्म़) दो भागों में विभक्त था, किन्तु वे अपना अधिकांश समय आनन्द में ही व्यतीत करते थे। सम्राट और सामन्त बड़ी संख्या में पुरूष एवं स्त्री दास रखते थे। सम्राट और सामन्त वर्ग के लोगों के द्वारा भी गृहकार्यों अथवा कारखानों आदि में काम करने के लिए रखे जाते थे, किन्तु दासों के साथ सदभावना तथा उदारता का व्यवहार किया जाता था। आसाम के दास अपने हृष्ट–पुष्ट शारीरिक गठन के कारण लोकप्रिय थे। भारत में स्त्री तथा पुरूष दास चीन, ईरान तथा टर्की से भी आयात किये जाते थे। भारत से भी दासों का विशेषतः स्त्री दासों का निर्यात चीन आदि देशों में किया जाता था और कभी–कभी मित्र देश को स्त्री–दास उपहार के रूप में भेंट की जाती थी। दास–प्रथा भारतीय समाज के लिए कोढ़ से कम नहीं थी।

3.11 मुगलकाल में महिलाओं की स्थिति

किसी भी देश, जाति अथवा काल में नारी की सामाजिक स्थिति समाज के स्तर का सूचक होता है। इस दृष्टि से प्राचीन भारत में नारी की स्थिति श्रेष्ठ कही जा सकती हैं क्योंकि वे जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में स्वतंत्रता पूर्वक हिस्सा लेती थी। उनके बीच पर्दा, बाल–विवाह, दहेज आदि जैसे कुप्रथाओं का प्रचलन नहीं हुआ था। वे स्वतंत्रता पूर्वक देश की राजनीति में हिस्सा ले सकती थीं। उन्हें शिक्षा प्राप्त करने की भी सुविधा थी। इस काल में इनके बीच अनेक उच्चकोटी की कवयित्रियाँ आदि उत्पन्न हुई। मध्य युग में भारतवर्ष में मुसलमानों के आगमन तथा उनके साथ सम्पर्क होने के पश्चात् भारतीय नारी की स्थिति में निःसंदेह गिरावट आई। इस काल में चाँद बीबी, असमत जहाँ, नूरजहाँ,

मुमताज महल, जहाँआरा, रौशनआरा और आलमआरा जैसी विद्वान और प्रभावशाली महिलाओं का प्रादुर्भाव हुआ। अतः सामान्य तौर पर महिलाओं की स्थिति बहुत अच्छी नहीं कही जा सकती है।

3.11:1 हरम

इस काल तक स्त्रियाँ भोग विलास का साधन मात्र समझी जाती थीं। शाही महल में पत्नियों एवं रखैलों की भीड़ लगी रहती थी। अकबर के शासनकाल में रनवास, को हरम अथवा जैसा कि अबुल फजल लिखती है, ''सविस्तान–ए–इकबाल'' या ''सविस्तान–ए–खास'' के नाम से सम्बोधित किया जात था। जहांगीर और शाहजहां के रनवास में भी बहुत बड़ी संख्या में स्त्रियाँ रहती थी। सम्भवतः औरंगजेब के शासनकाल में शाही रनवास में स्त्रियों की संख्या घटकर दो हजार हो गई थीं। रनवासों में उनके रहने की बहुत अच्छी व्यवस्था की जाती थी और वे भोग–विलास की जीवन व्यतीत करती थी। उनकी सुविधा के लिए अलग–अलग स्नानागार, बगीचे आदि निर्मित किये जाते थे। सामन्त भी सम्राट का अनुकरण कर अपने महल में अधिक से अधिक स्त्रियों को रखने की कोशिश करते थे। सामान्यतः एक सामन्त तीन या चार स्त्रियों से विवाह करता था। इन स्त्रियों में पहली विवाहिता पत्नी की प्रधानता रहती थी और उसके साथ आदर का व्यवहार किया जाता था। सामन्तों की स्त्रियाँ भी बहुमूल्य वस्त्र एवं आभूषण धारण करतीं, स्वादिष्ट भोजन खाती तथा ऐश्वर्य एवं विकास का जीवन व्यतीत करती थीं। इस काल में सामन्त खुलेआम रखैल भी रखते थे।

3.11:2 शाही घराने की स्त्रियों की स्थिति

शाही परिवार में रानियों तथा राजकुमारियों को विशेष सुविधा प्राप्त थी। मुगल अपने स्त्री वर्ग का सम्मान करते थे और उन्हें उचित अधिकार दिये थे। इसकाल में शाही घराने के जिन स्त्रियों ने राजनीतिक में यथेष्ट दिलचस्पी ली, उनमें एहसान दौलत बेगम, कुतलुग निगार खानम, माहिम बेगम, बीबी मवारिका, खानजादा बेगम, हरम बेगम, लाडमल्लिका, रानी कर्णवती, माहचुचक बेगम, महम अंगा, रानी दुर्गावती, मरियम मकानी, सलिमा सुलताना, नूरजहां, मुमताज महल, जहांआरा बेगम, रौशनआरा बेगम, आलमआरा बेगम, जैबुन निंसा बेगम, जीनत निंसा बेगम, साहिब जी, लाल कुंअर, इत्यादि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। औरंगजेब के पूर्व मुगल राजनीति में रानियाँ, राजकुमारियाँ या उच्च हिन्दू तथा मुस्लिम सामन्तों की स्त्रियों का महत्व था, किन्तु औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात निम्नस्तर की स्त्रियां, रखैल, नर्तकी अथवा वैश्या का प्रभाव तत्कालीन राजनीति में काफी बढ़ता गया।

शाही घराने से सम्बन्धित स्त्रियों को दरबार में उच्च स्थान प्राप्त था। उन्हें सम्राट के द्वारा भिन्न–भिन्न प्रकार की पदवियां प्रदान की जाती थी। विशेष अवसरों पर सम्राट उन्हें उपहार भी प्रदान करते थे। उन्हें भत्ते नगद अथवा जागीर के रूप में मिलता था। शाही रनवास में जो स्त्रियां सर्वाधिक प्रतिष्ठित थीं हमीदाबानो, मरियम–उज–जमानी, नूरजहां, जहांआरा आदि वे अपने नाम से हुकुम, सनद, निशान, तथा परवाना आदि भी निकाल सकती थी। मुगल शाही मुहर भी हरम में ही रखी जाती थी। मुगल हरम को कुछ स्त्रियां वाणिज्य–व्यापार में भी दिलचस्पी रखती थी और उनकी निजी व्यापारी जहाज विदेशों में व्यापार के उद्देश्य से भेजे जाते थे। व्यापार के उद्देश्य से नूरजहां तथा जहांआरा बेगम अपने अनेक निजी जहाज रखती थी। मुगल अपनी स्त्रियों का सम्मान करते थे और उनके साथ अदब से पेश आते थे। यह बात सिर्फ सम्राट के साथ ही नहीं, वरन, मुगल सामन्तों के साथ भी लागू थी।

3.11:3 उच्च वर्ग की स्त्रियों की शिक्षा–दीक्षा

उच्च वर्ग की स्त्रियाँ शिक्षा में अभिरूचि रखती थीं। बचपन से ही उनके माता–पिता के द्वारा उनकी शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता था। इसलिए इस वर्ग की स्त्रियों में इस काल में अनेक उच्च कोटि की लेखिका तथा कवयित्रियाँ उत्पन्न हुई। उदाहरणार्थ गुलबदन बेगम, नूरजहाँ, मुमताज महल, जहाँआरा बेगम, जैबुन निसां, गंगा, जमुना, कमलशी देवी, नवला देवी, दया बाई, शाहजोबाई, मीराबाई, सोन कुमारी, चन्द्रवती, रूपमती, तिन तरंग, चम्पा रानी, प्रियम्बदा आदि के नाम लिए जा सकते हैं। इसमें कुछ स्त्रियों ने शिक्षा–विस्तार तथा स्कूल–कालेजों की स्थापना में भी दिलचस्पी ली और शिक्षा के विकास के लिए आर्थिक अनुदान भी दिए। बेगा–बेगम ने, जो हुमांयु की पत्नी थी, अपने पति के मकबरे के पास एक कॉलेज की स्थापना करवाई थी। इसी प्रकार महमअंगा, जहांआरा बेगम तथा राजी (जौनपुर के मुहम्मद शाह की स्त्री) ने स्कूल एवं कालेजों की स्थापना की और शिक्षा के विस्तार में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

3.11:4 उच्चवर्ग की स्त्रियों की कलात्मक अभिरूचि

उच्चवर्ग की स्त्रियाँ भिन्न–भिन्न कलाओं में भी विशेष अभिरूचि रखती थीं तथा अवकाश काल में वे चित्रकला, संगीत, नृत्य एवं सजावट के कार्यों पर ध्यान देती थीं। नूरजहां को चित्रकला के प्रति विशेष आकर्षण था और अपने महल की साज–सज्जा में वह निरन्तर लगी रहती थीं। उसने कारपेट तथा पोशाकों के नये–नये नमूने का निर्माण भी किया था। माहीम बेगम भी आवासीय साज–सज्जा में प्रवीण थीं। इस वर्ग की स्त्रियां अनेक कलात्मक कार्यों में दक्ष होती थीं। भिन्न–भिन्न अवसरों पर ये सुपात्रों को पारितोषिक आदि भी प्रदान करती थीं। इन गुणों के इलावा शाही स्त्रियां अपने भत्ते का एक निश्चित रकम दान–भक्ति आदि में व्यय करती थीं। इस क्षेत्र में नूरजहां की उदारता असीम थीं। मुमताजमहल भी अत्यन्त उदार–प्रवृत्ति की स्त्री थी और खुलकर दान करती थीं।

3.12 सामाजिक दोष

मुगलकाल में देश के सामान्य सामाजिक जीवन में परिवर्तन के कारण स्त्रियों की अवस्था में भी यथेष्ट परिवर्तन आये। प्राचीन भारत में जो उनका सम्मानपूर्ण स्थान था, उसमें गिरावट आई और नारी समाज में बालिका–वध, बाल–विवाह, तीलक दहेज, पर्दाप्रथा, सती और जौहर जैसे दूषित प्रथाऐं घर कर गई। हिन्दु और मुसलमान दोनों जातियों में पुत्री का जन्म अपशकुन माना जाता था और पुत्र के जन्म पर आनन्द मनाये जाते थे। कुछ लोग नवजात पुत्रियों का गला भी घोंट देते थे। इस तरह की प्रथा राजस्थान, बंगाल आदि प्रान्तों में अधिक प्रचलित थीं। बाल–विवाह मुगलकाल में सामाजिक अवस्था का एक लोकप्रिय पक्ष था। सामान्यतः लड़कियों की शादी आठ से दस साल की अवस्था में ही कर दी जाती थी। हिन्दु और मुसलमान दोनों ही इस दुषित प्रथा के शिकार थे।

3.12:1 तिलक–दहेज की प्रथा

मुगलकालीन भारतीय समझ में तिलक–दहेज की कुप्रथा भी प्रचलित थी। सामन्त वर्ग के लोग दहेज के लोभ से अनेक विवाह करते थे। मुस्लिम समाज भी इस कुप्रथा से दूर नहीं था। इस कुप्रथा के कारण कभी–कभी लड़की की शादी एक कठिन समस्या बन जाती थी। दहेज की यह प्रथा परम्परा से चली आ रही थी और इन दिनों इसमें उत्तरोतर वृद्धि हो रही थी। बंगाल में इस प्रथा की बुराइयां

सबसे अधिक देखने को मिलती हैं। सम्राट अकबर ने इस कुप्रथा के विरूद्ध आदेश भी जारी किये थे, किन्तु इसमें उसे विशेष सफलता नहीं मिली थी।

3.12:2 पर्दे की प्रथा

परम्परा से पर्दे का रिवाज मुस्लिम स्त्रियों के साथ रहता आया है। हिन्दुओं में यह अपेक्षाकृत कम लोकप्रिय रहा है। मुगलकालीन मुस्लिम स्त्रियां बिल्कुल पर्दे में रहती थीं। भारत में मुसलमानों के आगमन के पश्चात विदेशियों से अपनी इज्जत–आबरू की रक्षा के उद्देश्य से हिन्दु स्त्रियों ने भी इस प्रथा को अपना लिया। सम्भवतः शासक वर्ग को खुश रखने के उद्देश्य से कुछ हिन्दुओं ने उनका अनुकरण करते हुए इस प्रथा को अपना लिया था, किन्तु यहाँ हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि गरीब एवं निम्नवर्ग की स्त्रियां जिन्हें खेती में अथवा अन्य कार्यों में अपने पति को सक्रिय सहयोग देना पड़ता था। इस प्रथा को अपनाने में पूर्णतः असमर्थ थीं। अस्तु यह प्रथा हिन्दुओं में सिर्फ अमीर एवं सुखी–सम्पन्न परिवारों के बीच ही प्रचलित थीं।

3.12:3 सती और जौहर की प्रथा

सती प्रथा गुप्त काल से भारतीया समाज में प्रचलित था। जो स्त्री अपने मृत पति के चिता में जिंदा नहीं जलती थी अथवा सती नहीं होती थी, उन्हें समाज हेय दृष्टि से देखता था। वे न सुन्दर वस्त्र पहन सकती थी, न आभूषणों से अपने शरीर को सजा सकती थी। यहां तक कि शुभ अवसर पर उनका दर्शन भी अशुभ माना जाता था। विधवा होना स्त्री के पूर्व जन्म का अभिशाप समझा जाता था। अस्तु, अधिकांश हिन्दु विधवाऐं सती होना पसन्द करती थीं। यह प्रथा सामान्य रूप से ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों के बीच अधिक प्रचलित थीं। लगभग सभी विदेशी पर्यटकों ने अपनी यात्रा के विवरण में सती प्रथाा का भयावह चित्र प्रस्तुत किया है। सती की तरह राजपूत वीरांगनाओं में सामूहिक रूप से चिता में भस्म जाने की प्रथा भी प्रचलित थी, जिसे जौहर व्रत कहा जाता है। जब कभी युद्धों में पति मारे जाते तो अपने सतित्व की रक्षा के उद्देश्य से ये जौहर व्रत धारण कर लेती थीं। कुछ मुगल शासकों ने इस प्रथा को रोकने का प्रयास भी किया था। कहा जाता है कि अकबर एवं जहांगीर ने इस कुप्रथा के विरूद्ध आदेश निकाले थे कि स्त्री के इच्छा के विरूद्ध सती हेतु किसी को बाध्य न किया जाए। 1663 ई0 मे औरंगजेब ने सती होने पर निषेध लगा दिया था, किन्तु बाल–बच्चे विहीन विधवाओं को सती होने की छूट थी। इस निषेधात्मक आदेशों के बावजूद मुगलकाल में सती प्रथा लोक प्रिय बनी रही।

3.13 स्त्रियों का जीवन–स्तर

नारियों के जीवन स्तर के आधार पर स्पष्टतः दो वर्गों में वर्गित के जा सकता है– उच्च वर्ग और निम्न वर्ग। उच्च वर्ग की नारियों का जीवन–स्तर ऊँचा था। उनके आवास, खान–पान ,वस्त्र, आभूषण, श्रंगार आदि उनकी आर्थिक अवस्था के अनुरूप उच्चकोटि का एवं कीमती होते थे। वे शौकीन और विलासप्रिय होती थी तथा ऐशोआराम की जिन्दगी बिताती थीं। किन्तु बाल–विवाह, तिलक–दहेज, एवं पर्दा की प्रथाओं के कारण उनकी स्वतंत्रता प्रायः समाप्त हो चुकी थी और उनकी स्थिति निश्चित रूप से पहले से खराब हो चुकी थी। निम्न वर्ग की स्त्रियों को वे सारी सुविधाऐं प्राप्त नहीं थीं जो उच्च वर्ग की स्त्रियों को थीं। उनका रहन–सहन, खान–पान, पोशाक, आभूषण, आवास, एवं साज–सज्जा उनकी आर्थिक जीवन के अनुरूप सीधे–साधे और आर्कषहीन होते थे। उनके बीच

शिक्षा का प्रचलन प्रायः नहीं होता था। इन दृष्टिकोणों से उनकी स्थिति अपने अन्य दूसरे बहनों की अपेक्षा दयनीय थी। किन्तु कई दृष्टिकोण से उनकी स्थिति अपेक्षाकृत अच्छी कही जा सकती है। उन्हें अपनी उच्च वर्ग की बहनों की तरह महल की चहारदिवारों अथवा पर्दे में नहीं रहना पड़ता था। वे अपेक्षाकृत अधिक स्वच्छन्द और स्वतंत्र थीं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि मुगलकाल में स्त्रियों की स्थिति पहले के अपेक्षा हीन हो गई थी, फिर भी संतोषप्रद थी।

3.14 खान–पान

मुगलकाल में व्यक्तियों के बीच खान–पान का स्तर उनके सामाजिक स्तर के अनुरूप था। उच्च वर्ग के लोग स्वादिष्ट एवं कीमती भोजन करते थे, जबकि निम्न वर्ग के किसी तरह से अपना जीवन निर्वाह करते थे। हिन्दु सामान्य रूप से शाकाहारी थे, किन्तु सामिष व्यंजनों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था। उच्च वर्गों में मदिरा का प्रयोग आमतौर से किया जाता था। वैसे मध्य तथा निम्न वर्ग के लोग भी अपने सामर्थ्य के अनुरूप मदिरा सेवन किया करते थे। इस्लाम मदिरा–सेवन पर प्रतिबन्ध लगाता है किन्तु इस नियम को तोड़कर उच्चवर्ग के मुसलमान यथासंभव इसका सेवन करते थे। अमीरों के आवासगृह अपेक्षाकृत भव्य एवं सुसज्जित होते थे। उनके घरेलू बर्तन–बासन, कीमत और संख्या में अधिक होते थे। साधारण लोग कच्चे तथा खपड़ेल के मकानों में रहते थे जो साधारण स्तर के होते थे।

3.15 पोशाक तथा प्रसाधन

उच्चवर्ग के हिन्दु और मुस्लमान अपनी पोशाकों के प्रति विशेष रूप से सचेत रहते थे। हिन्दुओं के लिए प्रत्येक दिन अनिवार्य रूप से स्नान करना आवश्यक था। समाज में व्यक्तिगत स्वच्छन्दता तथा स्वास्थ्य रक्षा हेतु सदाचारों का विधिवत पालन किया जाता था। उत्तर भारत में पुरूष धोती और कुर्ते का प्रयोग करते थे। सुखी सम्पन्न लोग अंगीका का भी प्रयोग करते थे। पुरूषों के बीच पगड़ी धारण करने का रिवाज भी विशेष रूप से प्रचलित था। दक्षिण भारत में भी पुरूषों के बीच धोती का ही प्रचलन था, किन्तु इसके पहनने का ढंग भिन्न था सम्पन्न व्यक्ति जूते चप्पल का भी प्रयोग किया करते थे। मुसलमान पुरूष कमीज और पैजामे पहना करते थे। उनके बीच 'काबा' भी एक लोकप्रिय ऊपरी पोशाक था। सम्पन्न मुसलमान शरद ऋतु में **'दगला'** (लम्बा कोट) का प्रयोग किया करते थे। स्त्रियों की पोशाक में जाति, धर्म एवं क्षेत्र के अनुसार हम अधिक भिन्नता पाते हैं। अमीर वर्ग की स्त्रियां, सिल्क, डोरियां तथा कीमती मलमल से निर्मित पोशाकों का प्रयोग करती थीं। उच्च एवं मध्यम वर्ग की स्त्रियों की पोशाकों में कपड़े के स्तर और कीमत का फर्क होता था, उनके फैशन का नहीं। मुस्लिम स्त्रियां सामान्य रूप से पैजामे और कुर्ते का ही प्रयोग करती थीं मुगल स्त्रियां सिर के ऊपर ताजकुलाह ताकी आदि का प्रयोग करती थीं। राजपूत स्त्रियां अंगिया, लहंगा, ओढ़नी जैसे वस्त्र धारण किया करती थीं। स्त्री एवं पुरूष में लम्बे बाल रखने का भी फैशन था। सामान्य हिन्दु स्त्रियां सिर के ऊपर **'तरंग'**तथा मुस्लिम स्त्रियां **'कशावा'** धारण करती थीं।

3.16 आभूषण

भारतवर्ष के सभी स्त्री–पुरूष सामान्य रूप से आभूषण का प्रयोग किया करते थे। आभूषणप्रियता स्त्रियों की सबसे बड़ी कमजोरी थी और वे इसके प्रति विशेष रूप से आर्कषित रहती थीं। अपने व्यक्तित्व को आर्कषक एवं सुन्दर बनाने के उद्देश्य से वे विभिन्न प्रकार के आभूषणों से सजाकर अपने शरीर को रखना चाहती थी। उन दिनों प्रयोग में लाये जाने वाले आभूषणों में उल्लेखनीय हैं– नूपुर,

कलवा, अंगुठी, कंगन, अंगद, हार, बेसर, खोट, टीका, शीराफल, नथ, चूड़, बिछवा, कर्णफल आदि। समृद्ध स्त्रियां सोने–चांदी जैसी कीमती धातुओं से निर्मित तथा कीमती जवाहरात एवं पत्थरों के गहनों का प्रयोग करती थीं। विदेशी यात्री मनुसी कहता है कि मुगल रनवास की स्त्रियां गहनों के रूप में बड़े हीरे, पन्ने तथा माणिक का प्रयोग करती थीं। साधारण स्तर की हिन्दु तथा मुस्लिम स्त्रियां समृद्ध स्त्रियों द्वारा प्रयोग में लाये जाने वाले आभूषण ही धारण करती थीं, किन्तु वे कीमती धातुओं के बजाए ताम्बे, टीन, सीसे, कांसे, हाथी के दांत, कौड़ी अथवा पत्थर आदि के बने होते थे।

3.17 मनोरंजन के विभिन्न साधन

जनजीवन में मनोरंजन का महत्वपूर्ण स्थान था। लोग नृत्य, संगीत, नाटक, आदि के माध्यम से सामान्य रूप से अपना मनोरंजन करते थे। नृत्य को समाज में कला का स्थान प्राप्त नहीं था और नर्तकियों को नीचे दृष्टि देखा जाता था। उच्च एवं आदरणीय वर्ग की स्त्रियों को इसमें कोई दिलचस्पी नहीं थीं। अस्तु सिर्फ व्यवसायिक स्त्रियां ही अपनाती थीं। इन स्त्रियों को अकबर 'कंचनी' की संज्ञा से सम्बोधित करता था। तत्कालीन यूरोपीय पर्यटक, पीटर मुंडी तथा बर्नियर आदि ने भी इनका वर्णन किया है। पिटर मुंडी नर्तकियों की श्रेणी में ललनीं, हराकिन, कंचनी तथा डोमिन आदि की चर्चा करता है। समाज में नृत्य को कला का स्थान प्राप्त नहीं था, लोग विशेष रूप से शासक वर्ग तथा सामन्त अनुष्ठानों के अवसर पर अथवा पर्व–त्योहार, मेले तथा अन्य विशेष अवसरों पर नृत्य का आयोजन किया करते थे। नृत्य की अपेक्षा संगीत को समाज में अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त थी, और अच्छे घराने की स्त्रियां भी इस कला में दिलचस्पी लिया करती थीं। रत्नावली, मीराबाई, मृगनयनी, नूरजहां, तथा जैबुननिसां जैसी प्रतिष्ठित स्त्रियां भी इस कला में प्रवीण थीं। तत्कालीन वाद्य यंत्र में उल्लेखनीय हैं– बांसुरी, वीणा, ढ़ोलक, तबला, झांझ, उपंग, रबाब आदि। समाज में नाटकों का भी प्रचलन था। इसकी चर्चा हम भारतीय अथवा विदेशी विद्वानों की रचनाओं में पाते हैं। नृत्य, संगीत, अथवा नाटकों का पोषण सिर्फ उच्चवर्ग के लोगों के द्वारा ही नहीं किया जाता था, वरन् साधारण लोगों के बीच भी ये समान रूप से लाकप्रिय थे।

3.18 पर्व–त्योहार

हिन्दु तथा मुसलमान दोनों के सामाजिक जीवन में पर्व–त्योहार एवं मेले असाधारण रूप से हर्षोल्लास के अवसर प्रदान करते थे। हिन्दुओं के बीच आजकल के समान ही बसन्तपंचमी, होली, शिवरात्री, रामनवमी, कृष्णाष्टमी, दशहरा, दीपावली, गोवर्धन आदि पर्व अत्यन्त लोकप्रिय थे। स्त्रियां पुरूषों की अपेक्षा पर्व–त्योहारों में अधिक दिलचस्पी लेती थीं। मुस्लिम पर्व–त्योहारों में ईद–उल–फितर, ईद–उल–अजहा, मुहर्रम, चहेल्लुम, शब–ए–बारात तथा नौरोज आदि पर्व अत्यन्त महत्वपूर्ण थे। मुगलदरबार में नौरोज, होली, दशहरा, ईद–उल–फितर आदि पर्व तथा सम्राट और शहजादों के जन्मदिन बड़े धूम–धाम से मनाये जाते थे। इन उत्सवों पर साधारण लोग भी सम्मलित होते थे। अकबर के द्वारा चलाई गई **'मीनाबाजार'** की परम्परा मुगल सम्राटों एवं सामंतो के मनोरंजन का विशेष साधन था। पर्व–त्योहारों के अतिरिक्त सार्वजनिक मेले, तथा उत्सवों में लोग अपने दैनिक जीवन की नीरसता को भुलाकर आनन्दोत्सव मनाते थे।

3.19 खेल–कूद

समाज में सभी वर्ग के लोग विभिन्न प्रकार के खेलकूदों के द्वारा भी मनोरंजन किया करते थे। मैदानी खेलों में शिकार, पशुयुद्ध, चौगान, गेंद, कुश्ती तथा कबड्डी आदि काफी लोकप्रिय था। शिकार तथा चौगान जैसे खेल खर्चीले थे। अस्तु, ये उच्चवर्ग के लोगों के बीच मुख्य रूप से लोकप्रिय था। शिकार खेलना मनोरंजन का एक अच्छा साधन था। मुगल सम्राट तथा सामन्त अकसर इससे अपना मनोरंजन करते थे। अकबर ने शिकार में **'कमरधा'** विधि का प्रथम प्रयोग किया, जो बाद में अत्यन्त लोकप्रिय हो गया। इसमें हकवे दूर–दूर से शिकार हांक कर शिकारी के पास ला देते थे, जिससे शिकार करने में सुविधा होती थी। हाथी पकड़ना और चीते का शिकार करना सम्राट का विशेषाधिकार था। मछली मारना, नौका–विहार, आकर्षक स्थानों का भ्रमण, तीर्थयात्रा आदि से भी लोगों का अच्छा मनोरंजन हो जाता था। साधारण लोग गेंद, कुश्ती, कबड्डी, पतंगबाजी, कबूतरबाजी, बाजीगरी, जादूगरी आदि के द्वारा अपना मनोरंजन किया करते थे। घर के अंदर खेले जाने वाले खेलों में प्रधान थे– शतरंज, चौपड़, ताश, गोटी के विभिन्न खेल, पचीसी आदि। स्त्रियां भी इन खेलों में काफी दिलचस्पी दिखाती थीं विशेष अवसरों पर सभी तरह के लोग आतिशबाजी की प्रदर्शनी से भी मनोरंजन किया करते थे। सम्राट, राजा–महाराजे तथा सामन्तवर्ग के लोग बागवानी के भी शौकीन होते थे और इस पर अपने अवकाश के क्षण व्यय करते थे।

3.20 हिन्दु–मुस्लिम समन्वय

प्राचीनतम हिन्दु संस्कृति और सभ्यता में एकीकरण करने की इतनी अधिक शक्ति थी कि देश के प्रारम्भिक आक्रान्ता, जैसे यूनानी, ईरानी, हूण आदि भारतीयों में पूर्णरूपेण मिल गये और वे अपने एकात्मय व अनन्यता की सम्पूर्णतया खो बैठे। परन्तु इस्लाम के साथ ऐसा नहीं हुआ। इस्लामी आक्रमणकारियों के साथ–साथ भारत में नवीन विभिन्न और निर्टिष्ट सामाजिक और धार्मिक विचार प्रवेश कर गये और इनका सम्पूर्ण एकीकरण असम्भव था। परन्तु जब कभी दो प्रकार की सभ्यताऐं और संस्कृतियां सदियों तक परस्पर सम्पर्क में आती हैं वे परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करती हैं। इस प्रकार सुदीर्घ काल में, नवीन संसर्ग भारतीय मुसलमानों के समुदाय के विकास, मुस्लिम आक्रमणकारियों के भारत में बस जाने से हिन्दु स्त्रियों से विवाह, हिन्दु और मुस्लिम संतों और उनके अनुयायियों के पारस्परिक सम्पर्क, मुस्लिम शासकों द्वारा हिन्दु कलाकारों शिल्पियों और साहित्यकारों के संरक्षण और उनके उदार आन्दोलनों के प्रभाव के कारण हिन्दु और मुसलमान एक दूसरे के विचार और प्रथाओं को अपनाकर उनका समीकरण करने वाले थे और फलस्वरूप अनेक सामाजिक परिवर्तन हुए। धार्मिक क्षेत्र में इस्लाम के प्रभाव से निर्गुण ईश्वर के प्रति पुनः श्रद्धा जागृत हो गई। यह सब हिन्दु धर्म के लिए ऐसा था मानो सुरा को एक पात्र से दूसरे में बदल दिया गया हो। हिन्दु के नेताओं ने इस्लाम की तरह हिन्दु धर्म को अधिक सजीव, सरल, भावुक व आकर्षक करने के लिए उसकी बाहरी रूप रेखा में परिवर्तन कर दिया।

3.21 परस्पर सामंजस्य, सहयोग एवं सहिष्णुता की भावना का विकास

हिन्दुओं और मुसलमानों के मूलभूत मतभेदों के होने पर भी आक्रमण और विप्लव की अशान्त सतह के नीचे कालान्तर में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में पारस्परिक सामंजस्य और सहिष्णुता की सुखद धारा प्रवाहित होने लगी थी। कुछ समय व्यतीत हो जाने पर हिन्दुओं और मुसलमानों ने युद्ध और सम्पीड़न की निष्फलता व निरर्थकता को समझ लिया था। धीरे–धीरे दोनों समुदायों में सामंजस्य और सहयोग

की भावना प्रकट हो रही थी। वे परस्पर एक दूसरे को जानने और समझने की चेष्टा भी करने लगे। फलतः हिन्दू धर्म, हिन्दु कला, हिन्दु साहित्य और हिन्दुविज्ञान ने मुस्लिम तत्वों को अपनाया ही नहीं प्रत्युत हिन्दु संस्कृति की भावना और हिन्दु मनीषा की प्रेरणा में भी परिवर्तन हो गया। इसी प्रकार मुसलमानों ने भी जीवन के हर क्षेत्र के प्रति उनमुख होकर खुले ह्रदय से आदान–प्रदान किया। हिन्दुओं के धार्मिक नेताओं और संतो ने हिन्दु–मुस्लिम विचारों के समन्वय का सफल प्रयास किया तो मुसलमानों के सूफी सम्प्रदाय तथा उनके लेखकों व कवियों ने भी हिन्दु–सिद्धान्त व परम्पराओं को ग्रहण किया। प्रसिद्ध मुस्लिम विद्वान और संत भारत में इस्लाम के दार्शनिक और आध्यात्मिक विचारों के प्रचार–प्रसार के लिए कठोर परिश्रम करने लगे।

पारस्परिक सहिष्णुता की भावना की अभिव्यक्ति मुस्लमानों के संतों के प्रति, विशेषकर रहस्यवादी आध्यात्मिक संतों के लिए हिन्दुओं की बढ़ती हुई श्रद्धा और भक्ति मे हुई थी और इसी प्रकार मुसलमान भी हिन्दुओं के साधु–संतो के प्रति ऐसी ही श्रद्धा और भक्ति की भावना रखने लगे। हिन्दुओं ने उदारता पूर्वक मुस्लिम पीरों की कब्रों पर हिन्दु मिठाइयां चढ़ाते और कुरान के पाठ को श्रवण करते। वे कुरान को एक देववाणी के समान मानने लगे। जीवन के बुरे प्रभावों और अपशकुनों से बचने के लिए घरों में कुरान की प्रतियां रखने लगे। भ्रातृत्व प्रदर्शित करने के लिए मुसलमानों को भोजन कराने लगे। पंजाब में अब्दुल कादिर जिलानी के मुरीदों, रावलपिण्डी के ब्राह्मणों और बहराइच में सैयद सालार मसूद गाजी की मजार के उपासक हिन्दुओं का उल्लेख है। इसी प्रकार अजमेर के शेख मुईनुद्दीन चिश्ती के भक्तों में बहुसंख्यक हिन्दु भी थे। इसी भांति मुसलमान भी हिन्दु धर्म की ओर झुके। मुर्ति पूजा के कट्टर विरोधी होने पर भी बंगाल में मुसलमानों ने हिन्दुओं को शीतला तथा काली तथा धर्मराज, वैधनाथ आदि अन्य देवी–देवताओं की पूजा को अपना लिया। इसके अतिरिक्त उन्होंने सरिताओं के अधिष्ठाता ख्वाजा खिज्र, सुन्दरतम सघन वन में सिंह पर सवारी करने वाली देवी के प्रेमी व अंगरक्षक जिन्दागाजी आदि नवीनतम मुस्लिम देवताओं का निर्माण किया। सामंजस्य, सहिष्णुता, सहयोग और सानिध्य की भावनाओं के इन परिणामों के साथ–साथ सत्यपीर नामक देवता का प्रादुर्भाव हुआ जिसे हिन्दु और मुसलमान दोनों ही मानते थे। गौड़ नरेश हुसैनशाह को इसका संस्थापक माना जाता है। इस प्रकार हिन्दु धर्म और इस्लाम को पारस्परिक प्रतिक्रिया से कई विचित्र समन्वयकारी सम्प्रदायों और क्रियाओं का उदय हुआ।

सामंजस्य, सम्मिश्रण और सामीप्य की मंगलकारिणी भावना का प्रभाव इस्लाम पर भी कम न हुआ। उसमें कोमलता और सरलता आ गई। उसके स्वरूप में खूब परिवर्तन हुआ और सूफी सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ। हिन्दु और मुसलमान दोनों ही इस सम्प्रदाय के संतों को मानने लगे। उनकी समाधियां इन दोनों ही सम्प्रदाय के लिए तीर्थस्थल बन गयी। ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती जो अफगानिस्तान से 1192 ई0 में भारत आये थे और जिन्होंने अजमेर को अपना केन्द्र बना लिया था, ऐसे ही सूफी संत थे इनकी समाधि **'ख्वाजा साहब की दरगाह'** के नाम से आज भी अजमेर में प्रसिद्ध स्थान हैं। यहां **'उर्स'** के मेले पर बहुसंख्यक हिन्दु और मुसलमान आज भी आते हैं। तेरहवीं सदी में निजामुद्दीन औलिया और सोलहवीं सदी में शेख सलीम चिश्ती सुफी सम्प्रदाय के अन्य प्रसिद्ध सन्त थे। सन्तों के अन्य सम्प्रदाय सुहरावर्दी और कादरी थे। इन सम्प्रदायों का प्रभाव यह हुआ कि इस्लाम ने अपने भारतीय वातावरण में सन्त–पूजा को ग्रहण कर लिया। हिन्दु मुसलमानों में परस्पर मेल–मिलाप, सामीप्य तथा सहिष्णुता की भावनाओं का परिणाम यह हुआ कि सत्यपीर, सत्तनामी, नारायणी आदि ऐसे ग्रंथों का प्रादुर्भाव हुआ जिसके अनुयायी हिन्दू और मुसलमान दोनों ही थे और जो परस्पर दोनों में कोई भेदभाव नहीं मानते थे। कालान्तर में मुसलमानों में पन्थी साहित्य का विकास हुआ। समन्वय की इस प्रवृत्ति ने समाज के अतिरिक्त संस्कृति, राजनीति, प्रशासन, साहित्य, धर्म, एवं कथाओं को भी गहरे

रूप से प्रभावित किया। वस्तुतः हमारे आज की तमाम व्यवस्थाऐं मूलतः मध्यकाल की ही देन हैं यद्यपि पश्चिमी सम्पर्क में आने के बाद इनमें और भी परिवर्तन एवं परिवर्द्धन हुए हैं।

3.22 सारांश

संक्षेप में कहा जा सकता है कि मुगलकालीन भारतीय संस्कृति एक समन्वय और सम्मिश्रण का काल था। दो भिन्न सभ्यताओं को एक दूसरे को समीप आने, परखने एवं प्रभाव ग्रहण करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। दोनों वर्गों के ऊपर एक दूसरे का सामाजिक, राजनीतिक सांस्कृतिक एवं धार्मिक प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। धीरे–धीरे समय के साथ उनके बीच की दूरी भी कम होती गई और वे एक दूसरे के समीप आने लगे। हिन्दु–मुस्लिम के मध्य व्याप्त कटुता ने प्रेम–स्नेह, सहिष्णुता और सहनशीलता ने ले लिया। अब उनके मध्य सामाजिक एवं सांस्कृतिक आदान–प्रदान के साथ ही वैवाहिक सम्बन्ध भी कायम हुआ जो भारत में मुगलों के स्थायित्व के लिए मील का पत्थर साबित हुआ।

3.23 अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) मुगलकालीन भारत की सामाजिक स्थिति का वर्णन कीजिए।
(2) मुगलकालीन महिलाओं की स्थिति का विश्लेषण कीजिए
(3) मुगलकालीन सभ्यता एवं संस्कृति पर निबन्ध लिखिए।
(4) भारतीय संस्कृति एवं इस्लाम ने किस प्रकार एक दूसरे को प्रभावित किया। उल्लेख कीजिए।
(5) अकबर का काल सामाजिक ''सद्भाव एवं सहिष्णुता का काल था'' व्याख्या कीजिए।

3.24 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. युसूफ हूसैन, इण्डियन कल्चर
2. अतहर अली रिज्वीं, मिडिवल इण्डियन कल्चर
3. जे.एल. मेहता, मध्यकालीन भारत का बृहत इतिहास
4. बी.बी. सिन्हा, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति
5. बी.एल. लोनिया, भारतीय संस्कृति
6. के.एल. खुराना, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति,
7. मीनाक्षी खन्ना, भारत का सांस्कृतिक इतिहास

ब्लॉक दो

इकाई एकः आधुनिक भारत : विकास यात्रा एवं विविध प्रवृत्तियाँ

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 अंग्रेजों का व्यापारिक विस्तार

1.4 सामाजिक क्षेत्र में विकास

1.5 प्रभासनिक क्षेत्र में विकास

1.6 आर्थिक क्षेत्र में विकास

1.7 अन्य विविध क्षेत्रों में विकास

1.8 निष्कर्ष

1.1 प्रस्तावना

18वीं भाताब्दी के प्रारम्भ में ही चरमराते हुए मुगल साम्राज्य को पतन की ओर अग्रसर देख हैदराबाद, कर्नाटक, बंगाल, अवध, मैसूर, और पंजाब के गवर्नरों ने स्वतंत्र राज्य का गठन कर लिया। मुगल साम्राज्य की केन्द्रीय शक्ति में कमजोरी तथा मुगल प्रांतों के गर्वनरों के स्वतंत्रता के दावे से इन राज्यों का जन्म हुआ। भारत में विदेशियों के आगमन के समय भारतीय राजनीति में दो प्रमुख शक्तियाँ थी – मुगल और मराठा। मुगल पतनोन्मुख हो चले थे और मराठा विकासोन्मुख थे। वास्तविकता यह थी कि औरंगजेब की मृत्यु (1707) के उपरान्त भारत में केन्द्रीय सत्ता नहीं रही और सारा देश छोटे–छोटे राज्यों में विभक्त हो गया।

दूसरी तरफ, 16वीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी में यूरोप में एक नवीन बौद्धिक लहर चल रही थी, जिसके फलस्वरुप एक 'जागृति के युग' का सूत्रपात हुआ। तर्कवाद तथा अन्वेषण की भावना ने यूरोपीय समाज को एक प्रगति प्रदान की। विज्ञान तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक सभी पक्षों को प्रभावित किया और तत्कालीन विश्व में अब यूरोप सभ्यता का अग्रणी महाद्वीप था। उसके विपरीत भारत एक निश्चल, निष्प्राण तथा गिरते हुए समाज का चित्र प्रस्तुत करता था। उन यूरोपीय शक्तियों में, जिन्होंने भारत और हिंद महासागरीय क्षेत्र में आकर नवीन व्यापारिक गतिविधियां आरम्भ की थीं, अंग्रेज सर्वाधिक सफल एवं प्रभावोत्पादक सिद्ध हुए। इसकी मुख्य वजह यह थी कि अंग्रेज भारत सहित एशियाई व्यापार के स्वरूप को समझने में सफल रहे और उन्होंने इसके लिए सैनिक – राजनैतिक शक्ति का सहारा लिया। मौलिक कारण यह था कि इंग्लैण्ड की उपभोक्ता संस्कृति, औद्योगिक विकास, मांग व आपूर्ति का संतुलन तथा अनुकूल राजनैतिक स्थिति ने पूंजी निवेश की प्रवृत्ति को बहुत अधिक प्रोत्साहित किया।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेंगे

- भारत में अंग्रेजों का व्यापारिक प्रभाव।
- भारतीय समाज का आधुनिकीकरण तथा सामाजिक क्षेत्र में पश्चिमी प्रभाव।
- प्रशासनिक क्षेत्र में भारत में हुए सुधार कार्य।
- आर्थिक क्षेत्र में विकास, यातायात एवं संचार साधनों का उद्‌भव।
- आधुनिक शिक्षा प्रणाली और पत्रकारिता का उदय।

1.3 अंग्रेजों का व्यापारिक विस्तार

अंग्रेजों ने शीघ्र ही अरब सागर और फारस की खाड़ी पर अपना एकाधिकार स्थापित कर लिया। अंग्रेज भारत से वस्त्र, नील, शोरा, मसाले, मलमल इत्यादि ले जाते थे। आरम्भ में, अंग्रेजों द्वारा भारतीय वस्तुओं का बड़े पैमाने पर आयात किए जाने के कारण भारतीय दस्तकारी को बहुत लाभ पहुंचा। बड़े–बड़े भारतीय व्यापारी कम्पनी के मध्यस्थ व्यापारी के रूप में काम करने लगे। अपनी समकालीन यूरोपीय तथा भारतीय शक्तियों को पराजित करने के बाद, अंग्रेजों ने भारत में अपना राजनीतिक प्रसार आरम्भा कर दिया, ताकि व्यापारिक आवश्यकताएँ पूरी की जा सके। इसी क्रम में, अंग्रेज भारत में मुगलों की वैकल्पिक शक्ति के रूप में उभारे, 1764 ई0 तक बंगाल विजय के बाद से तो अंग्रेजों ने ब्रिटिश औद्योगिक क्रान्ति की आवश्यकताओं के अनुरूप व्यापार को स्वरूप प्रदान किया। व्यापारिक व्यवस्था को भारत में सुदृढ़ करने हेतु अंग्रेजों ने कुछ सुधार कार्यों को अपनाया तथा राजनीतिक तौर पर सत्ता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय जनता में संतोष बनाये रखने के लिए अंग्रेजी शासन ने भारतीय सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विकास के लिए न चाहते हुए भी कुछ महत्वपूर्ण कदम उठाए। अंग्रेजों के अनुसार, भारतीय असभ्य थे, जिनको सभ्य तथा अनुशासित करने के लिए पश्चिमी शिक्षा को ग्रहण करवाना अनिवार्य समझा जाने लगा। जिसके फलस्वरूप भारतीय समाज में अनेकों आर्थिक, समाजिक, राजनीतिक परिवर्तन हुए। जिन परिवर्तनों से भारत का विकास कुछ यूरोपीय तर्ज पर किया गया।

1.4 सामाजिक क्षेत्र में विकास

भारतीय क्षेत्रों को विजित करने के पश्चात् 1813 ई0 तक अंग्रेजों ने देभा के धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में गैर हस्तक्षेप की नीति अपनाई। मगर 1813 ई0 के बाद उन्होंने भारतीय समाज और संस्कृति के रूपांतरण के लिए सक्रिय कदम उठाए। अठारहवीं सदी में औद्योगिक पूंजीवाद का विकास ब्रिटिश समाज के सभी पहलुओं को तेजी से बदल रहा था। उदीयमान औद्योगिक हितों ने भारत को अपनी वस्तुओं के लिए बड़े बाजार के रूप में बदलना चाहा। इसके लिए भारतीय समाज के आरंभिक रूंपातरण और आधुनिकीकरण की आवश्यकता थी। इस संदर्भ में, इतिहासकारों थाम्पसन और गैरेट के शब्दों में, 'पुरानी बटमारी की मनोदशा और तौर–तरीके आधुनिक उद्योगवाद तथा पूँजीवाद की मनोदशा व तौर–तरीकों में बदल गए।'

अठारहवीं और उन्नीसवीं सदियों के दौरान ब्रिटेन तथा यूरोप में नए विचारों का एक नया ज्वार देखा गया जिसने भारतीय समस्याओं के प्रति ब्रिटिश दृष्टिकोण को प्रभावित किया। नए चिंतन की तीन मुख्य विशेषताएं थी– विवकेशीलता या तर्क और विज्ञान में विश्वास ; मानवतावाद या मनुष्य के प्रति प्रेम ; मानव की प्रगति करने की क्षमता में आस्था।

1.4.1 भारतीय समाज पर पश्चिमी प्रभाव

भारतीय समाज में 1800 ई0 तक रूढ़िवादी दृष्टिकोण की जगह पर बड़ी तेजी से नया दृष्टिकोण आने लगा जो प्राचीन भारतीय समाज और संस्कृति का कटू आलोचक था। भारतीय सभ्यता को गतिहीन कहकर उसकी निंदा की गई और उसे घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा। भारतीय रीति–रिवाजों को असभ्यता का प्रतीक माना गया, भारतीय संस्थानों को भ्रष्ट और पतनोन्मुख बतलाया गया तथा भारतीय चिंतन को संकीर्ण, अविकसित और अवैज्ञानिक कहा गया। ब्रिटिश समाज के श्रेष्ठतर तत्वों का प्रतिनिधित्व करने वाले ''रेडिकल्स'' ने भारत को विज्ञान और मानवतावाद के आधुनिक प्रगतिशाील संसार का हिस्सा बनाना चाहा। उनके अनुसार, आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान, दर्षन और साहित्य को अपनाकर वस्तुतः व्यापक और नए तरीके से परिवर्तन के जरीए भारत की कुरीतियों का निराकरण हो सकता है।

1.4.2 समाज और संस्कृति का आधुनिकीकरण

भारतीय समाज और संस्कृति के आधुनिकीकरण की नीति को ईसाई धर्म प्रचारकों तथा विलियम विल्बर–फोर्स और ईस्ट इंडिया कम्पनी के निदेशक मंडल के अध्यक्ष चार्ल्स ग्रांट जैसे धर्मपरायण लोगों ने बढ़ावा दिया, जो चाहते थे कि भारत में ईसाई धर्म फैले एवं उसका विकास हो। उन्होंने भी भारतीय समाज के प्रति आलोचनात्मक रूख अपनाया मगर उन्होंने ऐसा धार्मिक आधार पर किया। इसके लिए उन्होंने देश में पश्चिमी तर्ज पर स्कूल, कॉलेज और अस्पताल का निर्माण करवाया। धर्मप्रचारकों को विवकेशील 'रेडिकल्स' का बहुधा अनचाहे सहायक होना पड़ता था। 'रेडिकल्स' का वैज्ञानिक दृष्टिकोण न केवल हिन्दू या मुस्लिम पौराणिक गाथाओं की बल्कि ईसाई पौराणिक गाथाओं की जड़े खोदता था। धर्मप्रचारकों ने पितृसत्तावादी, साम्राज्यवादी नीतियों का भी समर्थन किया क्योंकि वे कानून तथा व्यवस्था और ब्रिटिश प्रभुत्व को अपने धार्मिक प्रचार के काम के लिए आवश्यक समझते थे।

'रेडिकल्स' को राजा राममोहन राय और उन्हीं के समान अन्य शिक्षित भारतीयों ने अपना पूर्ण समर्थन दिया। आधुनिकीकरण की नीति को 1858 ई0 के बाद धीरे–धीरे छोड़ दिया गया क्योंकि भारतीय योग्य शिष्य सिद्ध हुए और वे अपने समाज के आधुनिकीकरण तथा अपनी संस्कृति पर जोर देने की दिशा में बढ़े। उन्होंने मांग की कि उन पर स्वतंत्रता, समानता और राष्ट्रीयता के आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार शासन किया जाये।

1.4.3 सामाजिक सुधार

उन्नींसवीं सदी के राष्ट्रीय जागरण का प्रमुख प्रभाव सामाजिक सुधार के क्षेत्र में देखने को मिला। नवशिक्षित लोगों ने बढ़–चढ़कर रूढ़िवादी सामाजिक रितियों तथा पुरानी प्रथाओं से विद्रोह किया।

उनका विद्रोह सामाजिक समानता तथा सभी व्यक्तियों की समान क्षमता के मानवतावादी आदर्शों से प्रेरित था।

समाज–सुधार के आन्दोलन में लगभग सभी धर्म–सुधारकों का योगदान रहा। कारण यह कि भारतीय समाज के पिछड़ेपन की तमाम निशनियों – जैसे जाति प्रथा या स्त्रियों की असमानता को अतीत में धार्मिक मान्यता प्राप्त रही है। साथ ही सोशल कांफ्रेसं, भारत सेवक समाज जैसे कुछ अन्य संगठनों तथा ईसाई मिशनरियों ने भी समाज–सुधार के लिए काफी काम किया। ज्योतिबा गोविन्द फूले, गोपाल हरि देशमुख, जस्टिस रानाडे, के0 टी0 तेलंग, बी0 एम0 मलाबारी, डी0 के0 कर्वे0 शशिपद बनर्जी, विपिनचंद्र पाल, वीरेशलिंगम, ई0 वी0 रामास्वामी, नायकर 'पेरियार' और डॉ0 भीमराव अम्बेडकर तथा दूसरे प्रमुख व्यक्तियों की भी एक प्रमुख भूमिका रही। बीसवीं सदी में, और खासकर 1919 के बाद राष्ट्रीय आन्दोलन समाज सुधार का प्रमुख प्रचारक बन गया। उन्होंने अपने विचारों को फैलाने के लिए उपन्यासों, नाटकों, काव्य, लघु कथाओं, प्रेस तथा 1930 के दसक में फ़िल्मों का भी उपयोग किया। समाज सुधार बहुत कुछ ऊंची जातियों के नवशिक्षित भारतीयों द्वारा अपने समाजिक व्यवहार का आधुनिक पश्चिमी संस्कृति व मूल्यों के साथ तालमेल बिठाने के प्रयासों का परिणाम था। लेकिन धीरे–धीरे इसका क्षेत्र व्यापक होकर समाज के निचले वर्गो तक फैल गया और यह सामाजिक क्षेत्र की क्रांतिकारी पुनर्रचना करने लगा। इस प्रकार, समाज के सभी वर्गो का विकास होने लगा।

1.4.4 सामाजिक हित में लोकोपकारी कार्रवाईयाँ

रूढ़िवादी भारतीय समाज को उसकी कुरीतियों से मुक्त करने के लिए किए गए ब्रिटिश सरकार के प्रयास कुल मिलाकर बहुत कम थे, फिर भी उनके द्वारा इस सामाजिक व्यवस्था में सुधार अवश्य किए गए। उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि थी, 1829 ई0 सती प्रथा को गैरकानूनी घोषित करने की कार्रवाई। विलियम बैंटिक ने घोषित किया कि पति की चिता पर विधवा के जल मरने की कार्रवाई में जो भी सहयोगी होंगे, उन्हें अपराधी माना जाएगा। राजा राम मोहन राय और अन्य प्रबुद्ध भारतीयों तथा धर्मप्रचारकों ने इस अमानवीय प्रथा को खत्म करने के लगातार आंदोलन किए। इस प्रथा को गैरकानूनी घोषित करने के लिए बैंटिक प्रंशसा का पात्र है। इस कुप्रथा के कारण 1815 और 1818 के बीच केवल बंगाल में ही 800 महिलाओं ने अपनी जान गंवाई थी। बैंटिक इसलिए भी प्रंशसा का पात्र है कि उसने सती प्रथा के रूढ़ीवादियों के विरोध के सामने झुकने से इनकार कर दिया।

इसके अतिरिक्त, शिशु हत्या को रोकने के सम्बन्ध में कानून 1795 और 1802 में बनाए गए थे मगर उन्हें सख्ती से बैंटिक और हार्डिग ने ही लागू किया। हार्डिंग ने नर बलि की प्रथा को खत्म करने के लिए भी कानून बनाया। यह प्रथा गोंड नाम की आदिम जाति में प्रचलित थी।

भारत सरकार ने 1856 में हिन्दू विधवाओं के पुर्नविवाह के लिए कानून पास किया, सरकार ने पं0 ईश्वर चन्द्र विद्यासागर और अन्य सुधारकों द्वारा इसके पक्ष में लगातार आन्दोलन चलाने के बाद यह कार्रवाई की। इस कानून के तात्कालिक प्रभाव कुछ विशेष नहीं हुए।

1.5 प्रशासनिक क्षेत्र में विकास

आंरभा में कम्पनी ने भारत स्थित अपने इलाकों का प्रशासन भारतीयों के हाथों में छोड़ दिया था और तब उसकी गतिविधियाँ देख–रेख तक सीमित रह गई थी। मगर कम्पनी ने जल्द ही समझ लिया कि प्रशासन के पुराने तौर–तरीकों का अनुसरण करने से ब्रिटिश उद्देश्य ठीक से प्राप्त नहीं हो सकते। फलस्वरूप कम्पनी ने प्रशासन के कुछ पहलुओं को हाथ में ले लिया।

वॉरेन हेस्टिंग्स और कॉर्नवालिस के प्रशासन काल में ऊपर के प्रशासन में आमूल परिवर्तन किया गया और नई व्यवस्था की नींव अंग्रेजी प्रशासनिक ढांचे की तर्ज पर रखी गई। नए क्षेत्रों में ब्रिटिभा सत्ता के विस्तार, नई समस्याओं, नई आवश्यकताओं, नए अनुभवों और नए विचारों के फलस्वरूप उन्नीसवीं सदी में प्रशासन की व्यवस्था में अधिक गंभीर परिवर्तन हुए। मगर इन परिवर्तनों के दौरान साम्राज्यवाद के व्यापक उद्दश्यों को कभी नहीं भुलाया गया।

भारत में ब्रिटिभा प्रशासन तीन स्तम्भों पर खड़ा किया गया –

1. नागरिक सेवा (सिविल सर्विस)

2. सेना

3. पुलिस

1.5.1 नागरिक सेवा का उद्भव

नागरिक सेवा (सिविल सर्विस) का जन्मदाता लॉर्ड कॉर्नवॉलिस था। कॉर्नवॉलिस 1786 में भारत का गर्वनर–जनरल बनकर आया (वह प्रशासन को स्वच्छ बनाने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ था।) मगर उसने महसूस किया कि कम्पनी के कर्मचारी तब तक ईमानदारी और कुभालतापूर्वक काम नहीं कर सकते जब तक उन्हें पर्याप्त वेतन नहीं दिए जाते। इसलिए उसने निजी व्यापार तथा अफसरों द्वारा नजराने और घूस लिए जाने के खिलाफ सख्त कानून बनाए। साथ ही उसने कम्पनी के कर्मचारियों के वेतन भी बढ़ा दिए।

लॉर्ड वेलेजली ने 1800 में नागरिक सेवा में आने वाले युवा लोगों के प्रशिक्षण के लिए कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज खोला। कम्पनी के निदेशकों ने उसकी कार्रवाई को पसन्द नहीं किया और 1806 में उन्होंने कलकत्ता के कॉलेज की जगह इंग्लैण्ड में हैलीवरी के अपने ईस्ट इंडिया कॉलेज में प्रशिक्षण का काम आरम्भा किया। 1853 तक नागरिक सेवा में नियुक्तियाँ ईस्ट इंडिया कम्पनी के निदेशक करते रहे। अन्ततोगत्वा संसद ने उनके विशेषाधिकारों को छीन लिया तथा 1853 में निदेशक उस अधिकार को खो बैठे जब चार्टर ऐक्ट ने यह कानूनी व्यवस्था लागू कर दी कि नागरिक सेवा में सारे प्रवेश प्रतियोगी परीक्षाओं के द्वारा किए जाएंगे।

सेवाओं के उच्च वेतनमानों से भारतीयों को वंचित रखने की नीति जानबूझकर अपनाई गई थी। मगर छोटे ओहदों के लिए भारतवासियों को बड़ी संख्या में भर्ती किया गया क्योंकि वे अंग्रेजों की अपेक्षा कम वेतन पर तथा आसानी से उपलब्ध थे। भारतीय नागरिक सेवा धीरे–धीरे दुनिया की एक अत्यंत कुशल और शक्तिभाली सेवा के रूप में विकसित हो गई। भारतीय नागरिक सेवा को बहुधा ' इस्पात का चौखटा' कहा गया है जिसने भारत में ब्रिटिश शासन का पोषण किया और लम्बी

अवधि तक बनाए रखा। जिसके फलस्वरूप आज भी भारत में नागरिक सेवा कायम है जो कि अंग्रेजों की देन है।

1.5.2 सेना का विकास

भारत में ब्रिटिश राज के दूसरे महत्वपूर्ण स्तम्भ के रूप में सेना थी। उसने तीन महत्वपूर्ण कार्य किए, वह भारतीय शक्तियों को जीतने के लिए औजार बनीं। उसने विदेशी प्रतिद्वंद्वियों से भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा की और सदा वर्तमान आंतरिक विद्रोह के खतरे से ब्रिटिश प्रभुसत्ता को बचाए रखा।

कम्पनी की अधिकांश सेना भारतीय सिपाहियों की थी जिन्हें मुख्य रूप से उन क्षेत्रों से भर्ती किया गया था जो अभी उत्तर प्रदेश और बिहार में हैं। 1856 में सेना में केवल तीन ऐसे भारतीय थे जिनको 300 रूपए प्रति माह वेतन मिलता था और सबसे ऊंचा भारतीय अफ़सर एक सूबेदार था। इसके अलावा, ब्रिटेन की जनसंख्या इतनी कम थी कि वह शायद भारत को जीतने के लिए बड़ी संख्या में सैनिक नहीं दे सकती थी। संतुलन के लिए फौज के सारे अफ़सर अंग्रेज रखे जाते थे और भारतीय सैनिकों को नियंत्रण में रखने के लिए ब्रिटिश सैनिकों को एक निश्चित संख्या में रखा जाता था।

1.5.3 पुलिस का विकास

पुलिस ब्रिटिश शासन का तीसरा स्तम्भा थी। उसका सृजन करने वाला भी कॉर्नवालिस ही था। उसने जमीदारों को पुलिस कार्यो से मुक्त कर दिया और कानून तथा व्यवस्था बनाए रखने के लिए एक नियमित पुलिस दल की स्थापना की। इसके लिए उसने थानों की पुरानी भारतीय व्यवस्था को आधुनिक बनाया। दिलचस्प बात यह है कि पुलिस व्यवस्था के मामले में भारत ब्रिटेन से आगे हो गया। उस समय तक ब्रिटेन में पुलिस व्यवस्था विकसित नहीं हुई थी। कॉर्नवालिस ने थानों की व्यवस्था स्थापित की। हर थाने का प्रधान दरोगा था जो भारतीय होता था। बाद में, पुलिस के जिला सुपरिंटेंडेंट (अधीक्षक) का पद बनाया गया। सुपरिंटेंडेंट जिले में पुलिस संगठन का प्रधान हो गया। पुलिस में भी भारतीयों को सभी ऊँचे ओहदों से अलग रखा गया। गावों में पुलिस की जिम्मेदारियों को चौकीदार निभाते थे जिनका भरण–पोभाण गाँव वाले करते थे। पुलिस धीरे–धीरे डकैती जैसे प्रमुख अपराधों को कम करने में सफल हो गई। जब राष्ट्रीय आन्दोलनों का उदय हुआ तब पुलिस का इस्तेमाल उसे दबाने के लिए किया गया।

इसके विपरित, संसद की एक समिति ने 1813 की अपनी रिपोर्ट में बताया कि ' पुलिस ने शंतिप्रिय निवासियों को उसी तरह लूटा–मारा जैसे डकैत करते थे जबकि डकैतों को दबाने के लिए उसका आयोजन किया गया था।' फिर भी वर्तमान की पुलिस व्यवस्था भारत को ब्रिटिश शासन की देन ही है।

1.5.4 न्यायिक प्रणाली का उद्‌भाव और विकास

दीवानी और फौजदारी कचहरियों के श्रेणीबद्ध संगठन के जरिए न्याय प्रदान करने की एक नई व्यवस्था की नींव अंग्रेजों ने रखीं। इस व्यवस्था को वारेन हेस्टिंग्स ने आरम्भ किया मगर कॉर्नवॉलिस ने 1793 में इसे और सुदृढ़ बनाया। हर जिले में एक दीवानी अदालत कायम की गई

जिसका प्रमुख जिला जज होता था, जो नागरिक सेवा का सदस्य होता था। इस तरह कॉर्नवॉलिस ने दीवानी जज और कलेक्टर के ओहदों को अलग–अलग कर दिया। जिला अदालत के फैसलों के खिलाफ अपील पहले दीवानी अपील की चार प्रांतीय अदालतों में हो सकती थी। अपील की आखिरी सुनवाई सदर दीवानी अदालत ही कर सकती थी। जिला अदालत के नीचे रजिस्ट्रार की अदालतें थीं जिनके प्रधान भारतीय जज होते थे जिन्हें मुंसिफ और अमीन कहा जाता था।

फौजदारी मुकदमों का निपटारा करने के लिए कॉर्नवॉलिस ने बंगाल प्रेसिडेंसी को चार डिविजनों में बांट दिया। उसने उनमें से हर एक में एक क्षेत्रीय न्यायालय (कोर्ट ऑफ सर्किट) स्थापित किया जिनके प्रधान नागरिक सेवा के लोग होते थे। इन अदालतों के नीचे छोटे–छोटे मुकदमों का फैसला करने के लिए बड़ी संख्या में भारतीय मजिस्ट्रेट होते थे। क्षेत्रीय न्यायालय (कोर्ट ऑफ सर्किट) के फैसलों के खिलाफ सदर निजामत में अपील की जा सकती थी। विलियम बैंटिक ने 1831 में अपील कर प्रांतीय अदालतों तथा क्षेत्रीय न्यायालयों को खत्म कर दिया गया। उनका काम बाद में जिला जजों और जिला कलक्टरों को सौंप दिया। उसने सदर दीवानी अदालत और सदर निजामत अदालत की जगह 1865 में कलकत्ता, मद्रास और बम्बई में उच्च न्यायालय स्थापित किए गए।

अधिनियम तथा पुराने कानूनों को संहिताबद्ध करने की प्रक्रियाओं के द्वारा अंग्रेजों ने कानूनों की एक नई प्रणाली स्थापित की। उन्होंने रेगुलेशन लागू किए, तत्कालीन कानूनों को संहिताबद्ध किया और उन्हें बहुधा न्यायिक व्याख्याओं के द्वारा सुव्यवस्थित करके आधुनिक बनाया। 1833 के चार्टर ऐक्ट के कानून बनाने के सारे अख्तियार काउंसिल की सहमति से गर्वनर–जनरल को दे दिए। सरकार ने 1833 में लॉर्ड मैकाले के नेतृत्व में भारतीय कानूनों को संहिताबद्ध करने के लिए विधि आयोग नियुक्त किया। उसके परिश्रम के फलस्वरूप भारतीय दंड संहिता पश्चिमी देशों से लाई गई दीवानी प्रक्रिया और दंड प्रक्रिया संहिताएं और कानून की अन्य संहिताएं आई। आयोग द्वारा किये गये प्रयासों के परिणामस्वरूप कालांतर में दीवानी संहिता (1859), भारतीय दण्ड संहिता (1860) व फौजदारी संहिता (1861) तैयार किया गया जो आज कुछ संसोधनों सहित बरकरार है। अब सारे देश में एक ही प्रकार के कानून लागू हो गए और उन्हें न्यायालयों की समरूप प्रणली के जरिए लागू किया गया। इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारत को न्यायिक रूप से एक सूत्रबद्ध किया गया।

इस प्रकार भारत में विभिन्न गर्वनर जनरलों द्वारा किये गये सुधार तथा चार्टर एक्ट व भारत शासन अधिनियमों ने भारत में एक एकीकृत न्यायपालिका की आधुनिक व्यवस्था को जन्म दिया जो कि प्रचलित भारतीय न्याय प्रणालियों से अधिक तार्किक, वैज्ञानिक एवं सुदृढ़ थी।

1.6 आर्थिक क्षेत्र में विकास

ब्रिटिश विजय का भारत पर स्पष्ट और गहरा आर्थिक प्रभाव पड़ा। अंग्रेजों ने जो आर्थिक नीतियां अपनाई उनसे भारत की अर्थव्यवस्था का रूपांतरण एक औपनिवेभिाक अर्थव्यवस्था में हो गया, जिसके स्वरूप और ढ़ांचे का निर्धारण ब्रिटिश अर्थव्यवस्था की जरूरतों के अनुसार हुआ। जिसके फलस्वरूप भारत में आर्थिक क्षेत्र में कुछ परिवर्तन हुए। भारतीय अर्थव्यवस्था को ब्रिटिश व्यापार और उद्योग के हितों के अधीन करने के अनेक व विविध परिणाम हुए।

1.6.1 आधुनिक उद्योगों का विकास

भारत में मशीन युग का आरम्भ तब हुआ जब उन्नींसवी सदी के छठे दशक में सूती कपड़ा, जूट और कोयला खान उद्योगों की स्थापना हुई।

कपड़ा उद्योगों का विकास

भारतीय समाज में कपड़ा उद्योग का विकास पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव पड़ने के फलस्वरूप हुआ। पहली कपड़ा मिल 1853 में कावसजी नाना भाई ने बम्बई में शुरू की, और पहली जूट मिल 1855 में रिशरा ''बंगाल'' में स्थापित की गई। इन उद्योगों का विस्तार धीरे–धीरे मगर सतत् रूप से हुआ। 1879 में भारत में 56 सूती कपड़ा मिलें थीं जिनमें लगभग 43,000 लोग काम करते थे। 1882 में 20 जूट मिलें थी, जो अधिकतर बंगाल में थी और उनमें लगभाग 20,000 लोग काम करते थे। 1905 तक भारत में 206 सूती मिलें हो गई थीं जिनमें करीब 1,15,000 लोग काम पर लगे थे। 1946 में कारखानों में काम करने वाले 40 प्रतिशत मजदूर सूती कपड़ा और जूट उद्योगों में लगे हुए थे।

अन्य उद्योगों का विकास

कोयला खान उद्योगों में 1906 में करीब एक लाख लोगों को रोजगार मिला हुआ था। बीसवीं सदी के चौथे दशक में सीमेंट, कागज, दियासलाई, चीनी और शीशा उद्योग विकसित हुए। अधिकतर आधुनिक भारतीय उद्योगों पर ब्रिटिश पूंजी का स्वामित्व या नियंत्रण था। विदेशी पूंजीपति भारतीय उद्योग में ऊंचे मुनाफों की सम्भावनाओं के कारण उसकी ओर आकर्शित हुए। श्रम अत्यतं सस्ता था; कच्चे माल तुरंत और सस्ती दरों पर उपलब्ध थे; और अनेक वस्तुओं के लिए भारत और उसके पड़ोसियों ने तैयार बाजार उपलब्ध कराया। चाय, जूट, और मैंगनीज जैसे अनेक भारतीय उत्पादनों के लिए सारे संसार में बना–बनाया बाजार था।

विदेशी पूंजी ने भारतीय पूंजी को दबा दिया। केवल सूती कपड़ा उद्योग में आंरंभा में भारतीयों का बहुत बड़ा हिस्सा था और बीसवीं सदी के चौथे दशक में चीनी उद्योग का विकास, भारतीयों ने किया। भारतीय पूंजीपतियों को आरम्भ से ही ब्रिटिभा मैनेजिंग एजेंसियों और ब्रिटिश बैकों की ताकत के खिलाफ संघर्ष करना पड़ा। भारत में अति तीव्रता से मिलों के निमार्ण के फलस्वरूप भारत भी औद्योगिकरण की ओर बढ़ने लगा। निःसदेह भारतीयों ने धीरे–धीरे अपने बैंक और बीमा कम्पनियां विकसित करनी भुरू कर दीं।

बागान उद्योगों का विकास

मशीनों पर आधारित उद्योगों के अलावा, उन्नीसवीं सदी में नील, चाय और कॉफी जैसे बागान उद्योगों का भी विकास हुआ। पंरन्तु उन पर पूरी तरह विदेशी स्वामित्व था। नील का इस्तेमाल सूती कपड़ा उद्योग में रंगाई के लिए होता था। नील से रंग बनाने का उद्योग भारत में अठारहवीं सदी के अंत में शुरू किया गया। वह बंगाल और बिहार में फला–फूला। एक संश्लिष्ट रंग के आविष्कार से नील उद्योग को बड़ा धक्का लगा और धीरे–धीरे इस उद्योग का ह्रास हो गया।

चाय उद्योग का विकास 1850 के बाद असम, बंगाल, दक्षिण भारत तथा हिमाचल प्रदेभा की पहाड़ियों में हुआ। चाय उद्योग पर विदेभाी स्वामित्व होने के कारण सरकार ने लगान मुक्त जमीन तथा अन्य सुविधाएं देकर उनकी सहायता की। धीरे–धीरे चाय का उपयोग सारे भारत में होने लगा। चाय निर्यात की एक महत्वपूर्ण वस्तु बन गई। इस दौरान कॉफी बागानों का विकास दक्षिण भारत में हुआ।

बागान तथा विदेशी स्वामित्व वाले अन्य उद्योगों से भारतीय जनता को कोई खास फायदा नहीं हुआ। फिर भी, इन उद्योगों से भारतीयों को एक ही फायदा हुआ कि अकुशल लोगों के लिए रोजगार के अवसर पैदा हुए। भारत का आधुनिक औद्योगिक विकास अन्य देशों के आर्थिक विकास या भारत की आवश्यकताओं की तुलना में नगण्य था। पंरतु यह पहले की अपेक्षा आधुनिक क्षेत्र में प्रगतिशील होना शुरू हो गया था। इसके अतिरिक्त, देभा के सीमित औद्योगिक विकास का एक महत्वपूर्ण सामाजिक परिणाम यह हुआ कि भारतीय समाज में दो नए सामाजिक वर्गों का उदय हुआ। ये वर्ग थे– औद्योगिक पूंजीपति वर्ग तथा आधुनिक मजदूर वर्ग। ये दोनों वर्ग भारतीय इतिहास में बिल्कुल नए थे क्योंकि आधुनिक खानें, उद्योग और परिवहन के साधन नए थे। यद्यपि ये वर्ग भारतीय जनसंख्या के अत्यंत छोटे भाग थे तथापि उन्होंने नई टेक्नोलॉजी, आर्थिक संगठन की नई प्रणाली, नए सामाजिक सम्बन्धों, नए विचारों और नए दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व किया।

1.6.2 यातायात और संचार साधनों का विकास

प्रारम्भ में भारतीय समाज में यातायात के साधन बहुत पिछड़े हुए थे। यातायात बैलगाड़ी और तांगों तक सीमित था। ब्रिटिश शासकों ने महसूस किया कि ब्रिटिश उद्योगों के लिए यहां से कच्चा माल प्राप्त करना है तो यहां यातायात की एक सस्ती और आसान प्रणाली का विकास करना होगा। इसके फलस्वरूप उन्होंने नदियों में स्टीमर चलाना और सड़कों को सुधारना आंरम्भा किया। कलकत्ता से दिल्ली तक ग्रैंड ट्रंक रोड पर 1839 में काम आरम्भ हुआ जो 1850 के दशक में पूरा हुआ। संड़कों द्वारा देश के प्रमुख नगरों, बंदरगाहों और मंड़ियों को जोड़ने के प्रयास भी किए गए। पर यातायात में वास्तविक सुधार रेलों के आरम्भ के बाद ही हो पाया।

रेलवे का विकास

जॉर्ज स्टीवेंसन का बनाया पहला रेल इंजन इंग्लैण्ड में 1814 में पटरियों पर चलाया गया। वहां 1830 तथा 1840 के दशकों में रेलों का तेजी से विकास हुआ। जल्द ही भारत में भी तेजी से रेल लाइनों का विकास होने लगा क्योंकि कम्पनी को व्यापार को सुविधाजनक बनाना था। ब्रिटिश उद्योगपतियों को आशा थी कि इस प्रकार देश के भीतर के दूरदराज के इलाकों के विशाल तथा अभी तक पकड़ से बाहर रहा बाजार भी उन्हें मिल जाएगा। ब्रिटिश बैंकरों और निवेशकर्ताओं को भाी लगा कि उनकी अतिरिक्त पूंजी सुरक्षा के साथ भारत में रेलों के विकास में लगाई जा सकती थी। भारत में रेल–लाइन बिछाने का पहला सुझाव 1831 में मद्रास में आया था। पर इस रेल के डिब्बों को घोड़े खीचनें वाले थे। भारत में भाप से चलने वाली रेलों का पहला प्रस्ताव 1834 में इंग्लैंड में रखा गया। इंग्लैण्ड के रेलवे प्रोमोटरों, वित्तपतियों, भारत से व्यापार कर रहे व्यापारिक घरानों तथा कपड़ा उत्पादकों से इस प्रस्ताव को भारी राजनीतिक समर्थन मिला। तय हुआ कि प्राइवेट कम्पनियां भारत में रेल लाइनें बिछाएं और रेलें चलाएं। इसके फलस्वरूप, बम्बई और ठाणे के बीच पहली रेल–लाइन यातायात के लिए 1853 में खोल दी गई।

1849 में भारत का गर्वनर–जनरल बनने वाला लॉर्ड डलहौजी यहां तेजी से रेल–लाइन बिछाने के विचार का पक्का समर्थक था। 1853 में लिखे एक प्रसिद्ध नोट में उसने रेलों के विकास का व्यापक कार्यक्रम सामने रखा। 1869 के अंत तक ज़मानत–प्राप्त कम्पनियां 4000 मील से अधिक लाइन बिछा चुकी थी। पर यह प्रणाली काफ़ी खर्चीली और धीमी साबित हुई। इसलिए 1869 में भारत सरकार ने सरकारी उद्यम के रूप में नई रेल लाइनें बिछाने का फैसला किया। 1880 के बाद प्राइवेट कम्पनियो और सरकार दोनों ने रेल–लाइनें बिछाई। 1905 तक लगभाग 28,000 मील लम्बी रेल लाइनें बिछाई जा चुकी थीं।ये लाइनें मुख्यतः भारत के अंदरूनी भागों में स्थित कच्चे माल पैदा करने वाले क्षेत्रों को निर्यात करने वाले बंदरगाहों से जोड़ने के लिए बिछाई गई थीं। ब्रिटेन के साम्राज्यवादी हितों की पूर्ति करने के लिए बर्मा तथा पश्चिमोत्तर भारत में भारी लागत से अनेक रेल लाइनें बिछाई गईं।

संचार साधनों का विकास

अंग्रेजों ने एक कुशल और आधुनिक डाक–प्रणाली भी कायम की तथा तार की व्यवस्था की शुरूआत की। 1853 में कलकत्ता और आगरा के बीच पहली तार लाइन का आरम्भ किया गया। लॉर्ड डलहौजी ने डाक–टिकटों को भी आरम्भा किया। इससे पहले जब भी कोई पत्र डाक के हवाले किया जाता तो नगद पैसा देना पड़ता था। उसने डाक की दरें भी घटा दीं तथा पूरे देश में कहीं भी पत्र भेजने के लिए एक समान दर रखी जो एक अधन्नी (पुराने दो पैसे) थे। उसके सुधारों से पहले पत्र पर डाक–टिकट कितना लगेगा, यह इस पर निर्भर था कि वह कितनी दूर जाएगा। कभी–कभी तो एक पत्र पर इतना डाक–खर्च आता जो एक कुशल भारतीय मज़दूर की चार दिन की मज़दूरी के बराबर होता था।

1.7 अन्य विविध क्षेत्रों में विकास

1.7.1 आधुनिक समाचार पत्रों का उभारना

भारत में अंग्रेजी राज का एक अन्य प्रभाव, आधुनिक समाचार पत्रों का उभारना था। ये यूरोपीय लोग ही थे जिन्होंने भारत में मुद्रणालय स्थापित किए और समाचार पत्र तथा सस्ता साहित्य प्रकाशित करना आरम्भ किया। शनैः–शनैः भारतीय भाषा समाचार पत्र स्थापित होने लगे थे। ये समाचार पत्र पाश्चात्य नमूने पर विकसित हुए। यद्यपि इन पर बहुत से साम्राज्यवादी शसकों ने प्रतिबन्ध लगाए, फिर भी भारतीय समाचार पत्र बहुत विकसित हुए। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारतीय मालिकों द्वारा चलाए गए अंग्रेजी तथा भारतीय भाषाओं में समाचार पत्रों की संख्या में अभातपूर्व वृद्धि हुई। 1877 तक भारतीय भाषा समाचार पत्रों की संख्या 169 तक पहुंच गई थी तथा उनकी प्रचलन संख्या एक लाख तक पहुंच गई थी।

भारतीय समाचार पत्रों के विकास के परिणामस्वरूप भारतीय राष्ट्रवाद के उत्थान में इन समाचार पत्रों का अत्यधिक महत्व रहा था। अनेकों अंग्रेजी तथा भारतीय भाषा समाचार पत्रों ने अंग्रेज शासकों द्वारा किए गए अतिरेकों को प्रकाशित किया। इसके अतिरिक्त इन्होंने प्रतिनिधि सरकार, स्वतन्त्रता तथा प्रजातन्त्रीय संस्थाओं को जनता में लोकप्रिय बनाया। कुछ प्रमुख समाचार पत्र निम्नलिखित इस प्रकार हैं– दि इण्डियन मिरर, दि बंगाली, दि अमृत बाजार पत्रिका, दि बॉम्बे क्रानिकल, दि हिन्दू पेट्रिअट, दि महरट्टा, दि केसरी, दि आन्ध्र प्रकाशिका, दि हिन्दू, दि हिन्दू प्रकाश, दि कोहिनूर इत्यादि।

1.7.2 आधुनिक भिक्षा का प्रचलन एवं विकास

अठारहवीं शताब्दी में भारत में हिन्दू और मुस्लिम शिक्षा केन्द्र लुप्तप्राय हो गए थे। देश में अनेक राजनैतिक उथल–पुथल के कारण ऐसी अवस्था हो गई थी कि शिक्षक और विद्यार्थी दोनों ही विद्या उपार्जन में न लग सके। कम्पनी की सरकार ने प्राच्य विद्या के प्रसार के लिए कुछ निरूत्साह से प्रयत्न किये। ईसाई धर्म प्रचारकों ने इस प्राचीन विद्या प्रणाली को पुनर्जीवित करने की निन्दा की और इस बात पर बल दिया कि पाश्चात्य साहित्य और ईसाई मत अंग्रेजी माध्यम द्वारा ही प्रसारित किया जाना चाहिए। सीरमपुर के मिशनरी इस क्षेत्र में बहुत उत्साही थे। आधुनिक शिक्षा प्रणाली के प्रचलन से आधुनिक पाश्चात्य विचारों को अपनाने में सहायता मिली, जिससे भारतीय राजनीतिक सोच को एक नई दिशा मिली। सर चार्ल्स ई0 ट्रेवेविलियन, टी0 बी0 मैकाले तथा लार्ड विलियम बैंटिक (समकालीन गर्वनर जनरल) ने जब सन् 1835 में देश में अंग्रेज़ी शिक्षा का श्रीगणेश किया तो वह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण निर्णय था। इस संदर्भा में, 1833 में कामन्स सभा में दिए गए अपने भाषण में मैकॉले ने कहा था,'' यह सम्भव है कि भारतीय सर्वसाधारण मत हमारी प्रणाली के अधीन विकसित हो जायें और हमारी प्रणाली से भी आगे निकल जाएं, अर्थात हम अपने उत्तम प्रशासन के फलस्वरूप अपनी प्रजा को अधिक अच्छा प्रशासन करने योग्य बना दें अर्थात वे लोग यूरोपीय भाषा में शिक्षित होकर किसी भविष्य काल में यूरोपीय संस्थाओं की मांग करें।''

भारत के सभी भागों में अंग्रेजी भाषा के प्रसार तथा लोकप्रियता के कारण शिक्षित भारतीयों को यह एक सम्पर्क एक भाषा के रूप में मिल गई थी, जिसके माध्यम से वे एक–दूसरे को अपने विचारों से अवगत करा सकते थे तथा सम्मेलनों में भाग ले सकते थे। अंग्रेजी भाषा ने सबको एक ही मंच पर लाकर खड़ा कर दिया। आधुनिक भिक्षा के प्रचलन से भारतीय समाज में फैली कुप्रथाओं के प्रति नवशिक्षित वर्ग का ध्यान आर्कषित हुआ, जिसके फलस्वरूप सुधार आंदोलनों का विकास हुआ। आधुनिक शिक्षा के विकास के लिए ब्रिटिश सरकार ने कई कदम उठाए जिसके तहत हन्टर शिक्षा आयोग, सैडलर विश्वविद्यालय आयोग, हार्टोग समिति जैसे आयोगों एवं समितियों का गठन किया गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् राधाकृष्णन आयोग, नियुक्त किया गया तथा इसकी सिफारिभों को कार्यान्वित करने के लिए 1953 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग बनाया गया। शिक्षा के क्षेत्र हुए इन कार्यों के परिणामस्वरूप आधुनिक शिक्षा का विकास हुआ। जिन्होनें भारतीय समाज को पश्चिमी रंग में रंग दिया।

1.8 निष्कर्ष

आधुनिक भारत के इतिहास का अध्ययन करने के पश्चात् हम देख सकते है कि किस प्रकार भारत में विदेशी शक्तियों ने अपना शासन स्थापित किया। व्यापार के उद्देश्य से आयी हुई कम्पनियों ने भारत में यहां कि अव्यवस्था को देखते हुए धीरे–धीरे यहां की राजनीतिक गतिविधियों में भामिल हुए। ब्रिटिश भासन ने अपने व्यापार को सरल बनाने के लिए तथा अधिक लाभ कमाने के लिए भारत में सत्ता प्राप्ति के पश्चात अपने उद्देश्यों को हासिल करने के लिए राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक क्षेत्रों में कई सुधार किये। इन सुधारों के परिणामस्वरूप भारत में अनेकों परिवर्तन हुए। भारतीय मध्ययुगीन समाज का पश्चिमीकरण होने लगा, मिलों व कारखानों के निर्माण के कारण समाज में नवीन वर्गों का उदय हुआ, जिसके बारे में हम उपर चर्चा कर चुके है।

अतंतः कहा जा सकता है कि आधुनिक भारत के विकास में अंग्रेजों का अत्यधिक महत्वपूर्ण योगदान रहा। ब्रिटिश काल में ही भारतीय समाज में नवीन बुद्धिजीवी वर्ग का उदय हुआ, जो पश्चिमी विचारों से प्रभावित था। इन बुद्धिजीवी लोगों ने ही भारतीय समाज को एकीकृत किया तथा हिन्दू व मुस्लिम दोनों में राष्ट्रवाद की भावना को जागृत किया। अंग्रेजो ने अपने लाभ के लिए अर्थात् अपने प्रशासन को सुदृढ़ बनाने के लिए भारतीयों को पश्चिमी सभ्यता एवं शिक्षा से अवगत कराया। वर्तमान में, हम जिन रेलों एवं यातायात सम्बन्धी सुविधाओं का उपयोग हम कर रहे है इन की नीवं ब्रिटिभा काल में ही पड़ी थी। अतः कहा जा सकता है कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद के फलस्वरूप ही भारत का विविध क्षेत्रों में विकास हुआ तथा समाज में व्याप्त कुरितियों व सामाजिक असमानता का अंत हुआ।

1.9. अभ्यासार्थ प्रश्न

- ब्रिटिश कालीन भारतीय समाज में न्यायिक प्रणाली का उद्‌भव किस प्रकार हुआ। तथा राजनीति व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने में यह किस प्रकार कारगर साबित हुई ?
- उन्नीसवीं सदी में भारत में ग़रीब जनता पर मुद्रण संस्कृति का क्या असर हुआ। एवं मुद्रण संस्कृति से भारत के राष्ट्रवाद के विकास में क्या सहायता प्राप्त हुई ?
- '' आधुनिक भारतीय इतिहास में बागान उद्योगों का लाभ अंग्रेजों को मिलता था। '' इस कथन की विस्तृत विवेचना कीजिए ?
- उन्नीसवीं सदी के भारत में आए ऐसे कुछ सामाजिक बदलावों के बारे में बतलाइए, जिनके कारण समाजिक समानता का विकास हुआ ?
- भारत में यातायात एवं संचार साधनों के विकास का क्या असर हुआ तथा इसका ग्रामीण समाज पर क्या प्रभाव पड़ा ?
- आधुनिक शिक्षा के प्रचलन का भारतीय रूढ़िवादी विचारधारा से प्रेरित लोगों पर क्या प्रभाव पड़ा और इसके क्या परिणाम हुए ?

1.10 संदर्भ ग्रन्थ

- ' आधुनिक भारत का इतिहास '– विपिन चन्द्र
- ' आधुनिक भारत का इतिहास '– बी0एल0 ग्रोवर , अलका मेहता
- ' पलासी से विभाजन तक और उसके बाद '– भोखर बंद्योपाध्याय

ब्लॉक दो

इकाई दोः आधुनिकतावादः कला एवं साहित्य जगत

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 आधुनिकता का अर्थ
2.4 आधुनिकता की परिभाषा
2.5 आधुनिकता की पृष्ठभूमि
2.6 आधुनिकता का स्वरूप–विवेचन
    2.6.1 कालनिरपेक्षता
    2.6.2 परिवेश के प्रति सजगता
    2.6.3 जीवंतता
    2.6.4 बौद्धिकता
    2.6.5 प्रश्नाकुलता
2.7 आधुनिकता और युगबोध
2.8 आधुनिकता के प्रेरणा स्रोत
    2.8.1 विज्ञान
    2.8.2 औद्योगीकरण
    2.8.3 वर्ग–चेतना
    2.8.4 विकासवाद
    2.8.5 अस्तित्ववाद
    2.8.6 समाजवाद
2.9 आधुनिकता और परम्परा
2.10 आधुनिकता के लक्षण
    2.10.1 सामाजिक तथा धार्मिक मूल्यों के प्रति विद्रोह
    2.10.2 परम्परा भंजन
    2.10.3 शहरीकरण
    2.10.4 मूल्य–प्रक्रिया
    2.10.5 समय बोध
    2.10.6 जिज्ञासा और गतिशीलता
    2.10.7 सतर्कता
    2.10.8 अरागात्मकता और विकल्प की स्वतंत्रता
2.11 सारांश
2.12 अभ्यासार्थ प्रश्न
2.13 संदर्भ ग्रन्थ
2.14 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

सृष्टि का नियम परिर्वतनशील है। व्यक्ति, वस्तु, समाज, सामाजिक नियम और व्यक्ति के आचार–विचार, रहन–सहन, नीति–नियम, भाव तथा इच्छाएँ आदि परिवर्तनशील हैं। इस प्रकार के परिवर्तनशील विचार, घटना या व्यवस्था को अपनाने की जो मानसिकता होती है उसे ही हम आधुनिकता कहते हैं। आधुनिकता की अवधारणा पुनर्जागरण (रेनेसा) और वैज्ञानिक प्रगति के साथ जुड़ी हुई है। इसमें निरंतरता का गुण है जो निरंतर परिवर्तन के साथ आगे बढ़ते रहती है। आधुनिकता किसी काल तथा आधुनिक मानव की मानसिकता है, आत्मनिष्टता है और सामाजिक सत्य भी है।

2.2 उद्देश्य.

इस इकाई में आधुनिकता के अर्थ, परिभाषा एवं पृष्ठभूमि से लेकर उसके लक्षणों की जानकारी दी गई है। किस प्रकार आधुनिकता ने तर्क तथा वैज्ञानिक आधार पर रूढिवादी परंपराओं एवं मान्यताओं का खण्डन किया। आधुनिकता के स्वरूप के सम्बन्ध में वर्णन किया गया है। साथ ही आधुनिकता के प्रेरणा–स्त्रोतों को भी सम्मिलित किया गया है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे।

- आधुनिकता सम्बन्धी अर्थ व परिभाषा
- आधुनिकता की पृष्ठभूमि
- आधुनिकता का स्वरूप
- आधुनिकता और युगबोध
- आधुनिकता के प्रेरणा स्त्रोत
- आधुनिकता और परम्परा
- आधुनिकता के लक्षण

2.3 आधुनिकता का अर्थ.

आधुनिकता का जन्म पाश्चात्य में हुआ है। नवीन खोजों की शुरूआत के परिणाम को आधुनिकता माना गया। पाश्चात्य शब्दावली में आधुनिकता का अर्थ स्थापित नियमों, परम्पराओं, मान्यताओं एवं नियमों को छोड़कर नवीनता भरी दृष्टि को स्वीकार कर लेना आधुनिकता है। आधुनिकता शब्द अंग्रेजी के श्मॉडर्निटीश शब्द का हिन्दी अनुवाद माना जाता है। शब्दकोश के अनुसार इसका अर्थ है– श्वर्तमान या हाल में घटितश। किंतु धीरे–धीरे इस शब्द का प्रयोग कुछ अलग अर्थ में होने लगा और इसका अभिप्राय हो गया– श्सामाजिक संरचना एवं मूल्यों में परिवर्तनश या श्नए मूल्यों एवं एक नई सोच का जन्मश अर्थात आधुनिकता शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त होता है– पहला, काल से संबंधित अर्थ और दूसरा, प्रवृत्तिमूलक अर्थ।

इस प्रकार आधुनिकता वर्तमान की कोख में जन्म लेता है और वृहद सीमाओं को स्पर्श करता है। यद्यपि समसामयिकता और आधुनिकता समय के साथ–साथ चलते हैं। इस दृष्टि से प्रत्येक नया काल अपने आप में आधुनिक होता है।

2.4 आधुनिकता की परिभाषा.

आधुनिकता एक प्रवृत्ति के रूप में, विचारधारा के रूप में, एक चिंतन के रूप में परंपरागत मान्यताओं तथा परंपरागत नियमों के विरूद्ध एक नवीन बौद्धिक एवं तार्किक जीवन–शैली है। ज्ञान की नई शाखाओं के उद्‌भव के कारण समाज में आया बदलाव आधुनिकता है। आधुनिकता के कारण समाज दो स्वरूपों में दिखायी पड़ता है– एक, परंपरा से आबद्ध समाज और दूसरा, परंपरा से मुक्त।

- पारंपरिक समाज एक ऐसा समाज होता है जिसमें परंपरा से चले आ रहे समाजिक मूल्यों, मान्यताओं एवं विचारों से लिप्त जीवन शैली को स्वीकार किया जाता है। पारंपरिक समाज के लोग किसी तरह के परिवर्तन की आवश्यकता ही नहीं समझते और न ही कल्पना कर सकते हैं।
- परंपरा से मुक्त जो आधुनिक समाज है। वह पुरानी मान्यताओं, प्रथाओं एवं नियमों का त्याग करता है। आधुनिक व्यक्ति स्वतंत्र रूप से निर्णय करता है एवं उसकी अपनी एक जीवन–शैली होती है। पारंपरिक बंधनों से मुक्त होकर अपनी जीवन–शैली में परिवर्तन करने के लिए वह स्वतंत्र होता है।

2.5 आधुनिकता की पृष्ठभूमि.

आधुनिकता का आरंभ पुनर्जागरण (रेनेसा) से माना जाता है। सबसे पहले आधुनिकता धर्म के क्षेत्र मे आयी। पुनर्जागरण ने धार्मिक रूढिवादिता का खण्डन किया। निष्कर्षतः एक ओर जहाँ चर्च और पोप के प्रभुत्व का अन्त हुआ वहीं दूसरी ओर मध्यकालीन धर्मशास्त्र को तार्किक दृष्टि से देखा और अपनाया गया।

सन् 1443 ई0 में यूनान के पतन के परिणामस्वरूप यूनानी विद्वानों ने दूसरे देशों में जाकर शरण ली। उनमें तथा दूसरे यूरोपीय विद्वानों में विचारों का आदान–प्रदान हुआ जिसके आधार पर प्राचीन धारणाओं को नये युग के अनुरूप बनाने की ऐतिहासिक दृष्टि मिली और इस प्रकार संस्कृतियों का मिलन भी हुआ। तत्पश्चात व्यापार के विस्तार से व्यापारी वर्ग तथा पूँजीवादियों का उदय हुआ, जिससे परंपरागत सामाजिक और आर्थिक संबंधों में परिवर्तन हुए। नगर, व्यापार व संस्कृति के केन्द्र बने और राष्ट्रीयता की भावना पैदा हुई। इसके पश्चात स्वच्छन्दवाद का युग आया।

तदुपरान्त 18वीं शताब्दी में दो महत्वपूर्ण घटनाएँ घटीं– इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रांति तथा फ्रांस की प्रजातांत्रिक क्रांति। औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप अनेक वैज्ञानिक आविष्कार हुए, मशीनों का निर्माण हुआ जिससे उद्यागों का विकास हुआ। रेनेसा के समय का व्यापारी वर्ग अब पूँजीवादी में परिवर्तित हो गया। साथ ही सामन्तवाद के विरूद्ध सामाजिक समानता की माँग ने फ्रांस की प्रजातांत्रिक क्रांति को जन्म दिया। क्रांति के परिणामस्वरूप सामन्तवाद का तख्ता पलट हुआ। राजतंत्र, कुलीनतंत्र तथा चर्च की सभी धारणाएँ जो मनुष्यों के बीच असमानता का कारण थी समाप्त हो गयी।

आधुनिकता के अगले चरण अर्थात 19वीं शताब्दी में सामाजिक परिवेश में बहुत बदलाव आया। नए औद्योगिक नगर बस गए। आर्थिक अव्यवस्था में परिवर्तन हुए, जिन्होंने जनता की विचारधारा को प्रभावित किया। दूसरी ओर समानता का प्रचार करने वाली शिक्षा पद्यति ने भी जनपत को प्रभावित किया, जिससे सामाजिक संबंधों में बदलाव आया। इस प्रकार आधुनिकता निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है जो वर्तमान में भी जारी है। अतः इतिहास के बदलते परिवेश को एक दृष्टि से आधुनिकता ही कह सकते हैं।

2.6 आधुनिकता का स्वरूप–विवेचन

आधुनिकता के संबंध में विस्तृत रूप से कहा जाये तो पता चलता है कि वह मानसिकता से संबंधित स्थिति है। मानव अपने परिवेश के साथ अपनी मनःस्थिति को भी परिवर्तित कर लेता है। इस तरह परिवेश के साथ–साथ मानसिकता की निरंतरता को आधुनिकता कहा जाता है। आधुनिक व्यक्ति नये विचार और संकल्पनाओं को अपने खुले दृष्टिकोण से देखता है। वह अपने विवेक से हर बात का सही या गलत निर्णय कर सकता है। वह अंधविश्वास और बेकार विचारों से कोसों दूर रहता है। पूर्णरूप से व्यक्ति को रूढिवादी या पूर्णरूप से आधुनिक बताना मुश्किल है। आधुनिकता का स्वरूप–विवेचन करने पर इसमें निम्न तत्वों की उपस्थिति अनिवार्य होती है।

2.6.1 कालनिरपेक्षता.

आधुनिकता का संबंध किसी समय–विशेष से नहीं है। जो व्यक्ति आज आधुनिक है, वह कल पुरातन हो जाएगा। परिवेश और परिस्थिति के साथ व्यक्ति की मानसिकता में परिवर्तन हो जाता है। बीसवीं सदी की मानसिकता कुछ समय के बाद अर्थात इक्कीसवीं, बाइसवीं सदी तक पुरानी पड़ जाएगी इसी वजह से आधुनिकता को किसी काल–विशेष से बाँधना संगत नहीं होगा।

वर्तमान की धारणा समय–सापेक्ष है। हमें आधुनिकता का संबंध वर्तमान से मानने पर यह भी मानना होगा कि जिस प्रकार प्रत्येक युग का वर्तमान बदलता रहता है, उसी प्रकार आधुनिकता का रूप भी प्रत्येक युग में बदलते रहता है। इस अर्थ में आधुनिकता पुराने से भिन्न नए का द्योतक है।

2.6.2 परिवेश के प्रति सजगता.

मनुष्य प्राचीन काल से परिस्थिति और परिवेश के साथ जुड़ते आया है। निरंतर संघर्ष के साथ कठिनाईयों का सामना करते हुए अपने जीवन में प्रगति के साथ आगे बढ़ रहा है। निरंतर संघर्ष के कारण ही व्यक्ति की मानसिक चेतना निरंतर विकसित होती रही है। मनुष्य जब से उत्पन्न हुआ है, वह प्रकृति को अपने अनुकूल बनाने के लिए उससे संघर्ष कर रहा है। आरंभ में वह शीत के प्रकोप से बचने के लिए पत्तों का बाद में वस्त्रों का उपयोग करने लगा। जंगली पशुओं से बचने के लिए हथियारों का निर्माण किया। आरंभ में प्रकृति के रौद्र रूपों जैसे– अकाल, बाढ़, भूकंप, रोग, महामारी आदि को दैवीय प्रकोप समझकर प्रार्थना करता था। परंतु जब विज्ञान का आविर्भाव हुआ वह इन सभी विचारों को अंधविश्वास समझने लगा।

पर्यावरण के अनुसार निरंतर विकसित होती हुई मानसिक चेतना की प्रखरता ही मनुष्य को आज के युग में ले आयी है। अपने परिवेश से निरंतर संघर्ष करते हुए मानसिकता के इस विकास की तुलना डार्विन के श्विकासवाद के सिद्धान्तश से की जा सकती है।

2.6.3 जीवंतता

आधुनिकता एक जीवंत और गतिशील प्रक्रिया है। इसमें निरंतर परिवर्तन होता रहता है। आज के संदर्भ में पुराने मूल्य और विश्वासों का महत्व नहीं रह गया है। विज्ञान के कारण ये सभी निरर्थक बन गए है। उसे परिवर्तन की इस प्रक्रिया में त्याग दिया जाता है। मानव को सही दिशा में ले जाने वाले मूल्यों को ग्रहण किया जाता है। जिसे हम आधुनिकता कहते हैं, वह एक प्रक्रिया का नाम है। यह प्रक्रिया अंधविश्वास से बाहर निकलने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया नैतिकता में उदारता बरतने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया बुद्धिवादी बनने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया समाज में जीवंतता लाने की

प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया धर्म के सही रूप पर पहुँचने की प्रक्रिया है। आधुनिकता एक ऐसा शाश्वत चिंतन है जो परंपरा की प्रतिक्रिया में ही स्पष्ट होता है।

2.6.4 बौद्धिकता.

मानव को समाज में इसलिए श्रेष्ठ प्राणी कहा जाता है कि वह किसी भी काम को करने से पहले सोच विचार कर सकता है। सोचने के लिए उसके पास विशिष्ट बुद्धि है, ज्ञान है। मानव किसी विचार या तत्व की खूबियों या समस्याओं को समझने के बाद ही स्वीकारते हैं। मानव में इस बौद्धिकता का विकास वैज्ञानिक विचारधारा से हुआ। वैज्ञानिक विचारधारा आधुनिकता की धारणा है। वैज्ञानिक उपलब्धियों से मनुष्य के जीवन में आधुनिकीकरण आया है। हमारे बदलते हुए दृष्टिकोण विज्ञान से प्रभावित हैं। व्यक्ति बुद्धिवादी होने के कारण समाज में रहता है, सामाजिक जीवन और वैयक्तिक जीवन में अनेक परिस्थितियाँ आती हैं। फलस्वरूप वैयक्तिक विचार की सामाजिक प्रचलित विचार से टकराहट होती है। वैयक्तिक विचार की टकराहट तर्क के आधार पर होती है। व्यक्ति निर्णय वैज्ञानिक पद्धति और स्वतंत्रता के माध्यम से लेता है। व्यक्ति की यही निर्णयन क्षमता उसमें बौद्धिकता की उपस्थिति को दर्शाती है।

2.6.5 प्रश्नाकुलता.

अपने विवेक बुद्धि का उपयोग करते हुए परिवर्तनशील मूल्यों और संकल्पनाओं के प्रति सतर्कता और जागरूकता ही प्रश्नाकुल मानसिकता है। जिस प्रकार किसी चीज की स्थापना हमारे समक्ष प्रश्न–चिह्न खड़ा करती है, उसी प्रकार किसी चीज का खण्डन भी। इसमें आपसी अंतर्गत प्रक्रिया का–सा भाव बना रहता है। जब किसी वस्तु पर प्रश्न–चिह्न लगता है तो व्यक्ति सतर्क है; यह आवश्यक नहीं कि उसे अविश्वास अथवा भ्रम ही हो। बात सतर्क और जागरूक होने की है, अतः प्रश्न–चिह्न अस्तित्व में आता है। पुराने पर जब प्रश्न–चिह्न लगाया जाता है तो स्वभावतः नए की स्थापना का कार्यक्रम तैयार होता है और तब पुराने पर प्रश्न–चिह्न जरूरी हो जाता है। नये के प्रति दृष्टिकोण रखते हुए भी उसके जाँच या परख के बिना उसे स्वीकार नहीं करते हैं।

इससे यही कह सकते हैं कि आधुनिक मानव की बुद्धि विकसित हुई है। वह पुरानी परंपरा की सही जाँच करके उपयोगी विचारों को ही अपनाता है। इसे ही दूसरे शब्दों में वैज्ञानिक विचार कह सकते है और नवीनता भी।

2.7 आधुनिकता और युगबोध.

युगबोध के निर्माण में, उस युग की परिस्थितियों, युग का वैज्ञानिक एवं तकनीकी ज्ञान एवं उपलब्धियाँ आदि का महत्वपूर्ण योगदान होता है। आधुनिक युग की औद्योगिक उन्नति मशीनीकरण तकनीकी विकास आदि के परिणामस्वरूप मानव की पूर्वाग्रह विमुक्त वैज्ञानिक विवेकशील दृश्टि का विकास हुआ। फलस्वरूप पारिवारिक इकाईयों का विघटन, नैतिक मान्यताओं का विघटन, ईश्वरीय सत्ता में अविश्वास, जीवन के प्रति अनास्था–अविश्वास आदि प्रवृत्तियाँ आधुनिक युगबोध के अंग बन गए है। इन अंगों के अतिरिक्त आशापूर्ण चिन्तन और जीवन के प्रति आस्था का वर्णन भी आधुनिकता के अंतर्गत होना आवश्यक है। किंतु वह आधुनिक युगबोध का अंग नहीं बन सका है। सच तो यह है कि आधुनिकता का प्रश्न हर सजग मनुश्य के सामने अपने युग की परिस्थितियों के बीच से उठा है और वह अपनी जागरूक चेतना और अपने देशकाल की सीमाओं के अनुरूप उनका उत्तर भी देता

है। इसलिए हमें आधुनिकता दृश्टिकोण ग्रहण करने की आवश्यकता है। परन्तु आधुनिकता के नाम पर आधुनिकीकरण करने की, वह भी जड़वादि संस्कृति के अनुकरण की तो कतई आवश्यकता नहीं है।

मनुश्य की मनुश्यता को उभारने के लिए समाज को कटिबद्ध होना पड़ेगा। आधुनिकता की यही माँग है कि जो व्यवस्था टूटते जा रहे हैं उसे टूटने से बचायें और आधुनिकता के साथ युग बोधता को बनाए रखें।

2.8 आधुनिकता के प्रेरणा स्रोत

किसी भी व्यवस्था का निर्माण बिना परिवेश के साथ नहीं हो सकता है। उसी प्रकार आधुनिकता का प्रादुर्भाव भी अचानक नहीं बना है। उसके बनने में कोई भी व्यवस्था, परिवेश या कारण हो सकता है, इसलिए हमें यह देखना है कि आधुनिकता के निर्माण में प्रेरणा किस से मिली है।

आधुनिक चिंतन का स्वरूप निर्माण आचनक ही नहीं हो गया था बल्कि इसमें व्यक्ति–मानव विशेश के अनुसार होने वाले बदलाव और निरंतर परिवर्तन के अतिरिक्त कुछ ऐसी घटनाओं, सामाजिक क्रांतियों और विचारधाराओं का भी योग रहा है। जिनके कारण आधुनिक प्रवृत्तियों का विकास हुआ है। व्यक्ति की चेतना को नये मोड़ देने वाले प्रमुख तत्व हैं– वैज्ञानिक प्रगति, औद्योगीकरण तथा विकासवाद, समाजवाद मनोविश्लेशणवाद और अस्तित्ववाद जैसी चिंतन धाराएँ हैं। इन तत्वों का संक्षिप्त रूप से वर्णन किया गया है।

2.8.1 विज्ञान.

विज्ञान मनुश्य को नया मार्ग दिखाता है। किसी तथ्य आदि परखने को सत्यांश वैज्ञानिक दृश्टि कह सकते हैं। वैज्ञानिक खोज के कारण मनुश्य के धार्मिक विश्वास टूट गये हैं। धर्म पर अंध श्रद्धा समाप्त हो गई है। भरोसे के बदले मनुश्य कर्म पर विश्वास करने लगा, वैज्ञानिक प्रगति के साथ–साथ मानव का मूल्य बढ़ने लगा है। नैतिकता भी ईश्वरपरक न रहकर मानव सापेक्ष हो गई। सच तो यह है कि आधुनिक युग में कोई भी कार्य विज्ञान के बिना नहीं हो रहा है। विज्ञान के कारण वर्तमान युग की संस्कृति नया रूप ले रही है। समूह माध्यम तथा संचार के साधनों द्वारा विज्ञान ने भौगोलिक दूरियों को समाप्त कर दिया है। सम्पूर्ण विश्व से संपर्क स्थापित होने के कारण व्यक्ति की सजगता में वृद्धि हुई है। साथ ही सजगता के कारण उसकी महत्वाकांक्षा में भी वृद्धि हुई है।

परन्तु केवल विज्ञान या टेक्नोलॉजी के विकास से मनुश्यता का काम नहीं चलेगा और टेक्नोलॉजी के विध्वंशकारी पक्ष से बचने के लिए प्रतिकार के रूप में आध्यात्मिकता का सहारा लेना ही होगा। वैज्ञानिक प्रयोग को नैतिक मूल्यों के निश्कर्श पर तोलने के बाद ही उसका उपयोग करना अच्छा है। इससे सुधार भी होगा और समाज की प्रगति भी।

2.8.2 औद्योगीकरण

औद्योगीकरण को आधुनिकता का प्रमुख आधार मानना अनिवार्य है क्योंकि औद्योगीकरण के बिना समाजिक जीवन में परिवर्तन लाना मुश्किल हो सकता है। औद्योगीकरण के कारण कामगार, तकनीकी, संचार–साधन, सड़कें और निवास स्थल भी उसी गति से बढ़ रहे हैं और औद्योगीकरण में सुधार हो रहा है जिससे परिवेश बदल रहा है। औद्योगीकरण से ग्रामीण क्षेत्रों में लघु उद्योग धंधों का

अंत हुआ और शहर में उद्योग केन्द्र बन गए हैं, शहरीकरण होने लगा है। मनुश्य आज ग्रामीण क्षेत्रों से शहर के विलासमय जीवन में शामिल हो गया है। यहाँ आकर व्यक्ति की आवश्यकताएँ बढ़ गई है। जिनकी पूर्ति के लिए उसे संघर्शमय जीवन को अपनाना पड़ रहा है। मशीनों के साथ काम करते–करते मनुश्य का जीवन भी यांत्रिक हो गया है। संयुक्त परिवार, छोटे परिवारों में बदल गए है और परंपरागत स्वरूप बदल गया है।

इस प्रकार औद्योगीकरण ने प्रकृति के दृश्यांकनों की जगह मानव निर्मित दृश्य स्थापित किए हैं। जंगलों को नगरों में तब्दील किया है और तपोवनी संस्कृति को विदाई देकर उद्योगों के रूप में एक नई संस्कृति की स्थापना की शुरूआत की है।

2.8.3 वर्ग–चेतना.

पहले के दार्शनिकों का विचार था कि मानव मुक्ति के लिए एकमात्र उपाय धार्मिक रूढ़ियों से मुक्ति पाना है। मार्क्स ने इस विचार से सहमति प्रकट की किंतु साथ ही यह भी जोड़ दिया कि वास्तविक मुक्ति केवल धार्मिक रूढ़ियों से निजात पाना ही नहीं बल्कि उन सब झूठी मानवीयता से भी छुटकारा पाना है जो सदा से मनुश्य को श्रम में डाले हुए है और इस तरह सही मायने में मुक्ति अर्थात शोशण का अंत है।

वर्गचेतना के परिणामस्वरूप ही मानव मूल्यों का जन्म हुआ। विश्व में स्राम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद का पतन आरंभ हुआ और समाज उपनिवेशवादी दासता से मुक्त होकर आर्थिक और औद्योगिक प्रगति के पथ पर बढ़ने लगा। आर्थिक और राजनीतिक स्वतंत्रता की भावना के साथ राश्ट्रीयता की भावना बढ़ने लगी जिससे आधुनिकता को एक नई गति प्राप्त हुई।

2.8.4 विकासवाद

विकासवाद के अनुसार यह सृश्टि आरंभ में ऐसी नहीं थी जैसी आज दिखाई देती है। समय के अनुसार इस ब्रह्ममांड में परिवर्तन होते रहते हैं। परिस्थितियों और वातावरण के अनुकूल निरंतर होते हुए परिवर्तनों के कारण अपने–आप विकसित होती चली आई है। आज जिस श्रेश्ठतम स्थिति में मनुश्य है, ऐसा पहले से नहीं था। क्रमशः विकास के बाद ही वह अन्य प्राणियों से श्रेश्ठ बन पाया। विकासवाद के परिणामस्वरूप ही सभ्यता और संस्कृति का निर्माण हुआ। विकासवाद ने मानव के धार्मिक अंधविश्वासों पर आघात किया और उसे आधुनिकता की ओर अग्रसर किया। निरंतर विकास के बाद ही वह अपने आज के स्वरूप को प्राप्त कर पाया और पुरानी धारणाओं को बदल पाया। परिवर्तन, विकास व परिश्रम ही मानव जीवन की उन्नति के सूत्र बन गए हैं। विकास और आधुनिकता के कारण ही युगों से चली आ रही मान्यताएँ, आस्थाएँ और विश्वास सब बदल गए हैं। आधुनिकता के दौर ने पुरूशार्थ को अधिक महत्व दिया है।

2.8.5 अस्तित्ववाद.

अस्तित्ववादी दर्शन के अनुसार मनुष्य संसार में पहले आता है। अस्तित्ववाद में वह अपने स्वतंत्र निर्णय द्वारा अस्तित्व को सार्थकता प्रदान करता है। स्वतंत्रता मनुश्य के अस्तित्व के लिए अनिवार्य है। मनुश्य मान्यताओं, आदर्शों, विचारों आदि का चुनाव करता है और मनुश्य अपने चुनाव के लिए स्वयं ही उत्तरदायी है। उसका यह उत्तरदायित्व केवल अपने प्रति ही नहीं बल्कि समाज के प्रति भी है। उसके इस चुनाव पर सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था निर्भर करती है। इस प्रकार मनुश्य

अपने अस्तित्व में रहकर ही सामाजिक व्यवस्थाओं का निर्माण कर पाता है। जो मनुश्य के नयेपन अर्थात आधुनिक होने को दर्शाता है।

2.8.6 समाजवाद.

समाजवाद एक प्रगतिशील प्रजातांत्रिक आंदोलन है। जिसका उद्देश्य समाज की आर्थिक व्यवस्था का न्याय संगत सुधार है। समाजवादी अपने देश की परिस्थितियों को आधार बनाते है और किसी एक के विचारों या सिद्धान्तों तक स्वयं को सीमित न रखकर प्रत्येक समाजवादी विचारधारा को अपनाते हैं। इसका एकमात्र उद्देश्य वर्गहीन समाज की स्थापना करना है। समाजवादी समाज व्यवस्था में केन्द्रीय सरकार के अतिरिक्त प्रान्तीय, जिला और गाँव सरकारों को पर्याप्त अवसर प्राप्त होते हैं। जहाँ एक तरफ चार स्तम्भ होते हैं वहीं एक पाँचवा स्तम्भ विश्व सरकार भी होता हैं। जिसके परिणामस्वरूप किसी एक सरकार के हाथों में निरंकुश ताकत नहीं रहती। जिससे समाज के प्रत्येक मनुश्य की स्वतंत्रता की सुरक्षा होती है।

अतः समाजवादी विचारधारा का आदर्श सभी प्रकार की असमानता को समाप्त कर एक लोकतांत्रिक समाजवाद का निर्माण करना है। इस आदर्श को पाने के लिए समाजवादी अहिंसा और सत्याग्रह के मार्ग को अपनाते हैं।

2.9 आधुनिकता और परम्परा

आधुनिकता को मनःस्थिति स्वीकार कर लेने के पश्चात प्रश्न उठता है कि किस प्रकार की मनःस्थिति को आधुनिक माना जाये? जो परम्परा को स्वीकार करके चलती है अथवा उसे जो परम्परा का निशेध करती है।

परम्परा रूढ़िवादी आस्था पर टिकी है और आधुनिकता तर्क और विवेक पर, इसलिए परम्परा और आधुनिकता में परस्पर द्वन्द की स्थिति का होना स्वाभाविक है। आधुनिकता नवीनता से जुड़ी हुई है, इसलिए यदि उसमें सम्भावना नहीं है तो यह आधुनिक परम्परागत मान्यताओं और मूल्यों को चुनौती देने का कार्य करती है। बदले हुए सामाजिक संदर्भों में हमारी आवश्यकताएँ बदल जाती हैं। नयी आवश्यकताओं को परम्परागत मान्यताएँ स्वीकार नहीं करती, ऐसी अवस्था में उनसे मुक्त होने अथवा समकालीन आवश्यकताओं के अनुरूप वैज्ञानिक आधारभूमि पर उन्हें बदलने का प्रयास करना ही श्आधुनिकताश है। श्परम्परा में परिवर्तन की इच्छा ही तो समय का बोध है और परिवर्तन की सक्रीय वैज्ञानिक विचारधारात्मक भूमि आधुनिकता की धारणा है।श आधुनिकता न केवल परिवेश के प्रति जागरूकता पैदा करती है; बल्कि वर्तमान संदर्भों में विकल्प ले सकने की बौद्धिक क्षमता भी प्रदान करती है। श्नयी संभावनाओं और नए चुनावों के प्रति जगह करना आधुनिकता की विशेशता है।श अतः कह सकते हैं कि वैज्ञानिक आधार पर जो परिवर्तन होते रहते हैं, उसे ही आधुनिकता का नाम देना समीचीन रहेगा।

2.10 आधुनिकता के लक्षण

श्जीवन की बदलती हुई संकल्पनाओं और नवीनता के प्रति उदार दृश्टिकोण आधुनिकता का प्रमुख लक्षण है।श लेकिन उदारता की उपस्थिति में भी आँखमूद कर किसी विचार को आधुनिकता नहीं स्वीकारती है। इसलिए जब हम आधुनिकता को परिभाशित करते हैं तब हमें इसके कतिपय

लक्षणों पर अवश्य ध्यान देना चाहिए। केवल परिभाशा की कुछ पंक्तियाँ ही पर्याप्त नहीं होती। इस संदर्भ में आधुनिकता के निम्न लक्षण बहुत महत्वपूर्ण हैं।

2.10.1 सामाजिक तथा धार्मिक मूल्यों के प्रति विद्रोह

वर्तमान में मानव ने अपने जीवन में इतना परिवर्तन कर लिया है, वह पुराने विचार या धार्मिक मूल्यों को नहीं मानता। वह किसी भी व्यवस्था या विचार को ऐसे ही आँख मूँदकर नहीं अपनाता, भले ही वो उसके अपने जीवन से संबंधित हों या अपने परिवेश से संबंधित हों। वह खुद प्रयोग के तौर पर अपनाकर बाद में स्वीकारते हैं। अर्थात आधुनिकता को आत्मसात करने वाला व्यक्ति धार्मिक मूल्यों और परम्परा को स्वीकार नहीं करता। वह इन्हें प्रगति एवं कार्यकुशलता में बाधक बनने वाला ढ़कोसला मानता है। इसलिए वह इन्हें अस्वीकार करता है। आधुनिक व्यक्ति सामाजिक व धार्मिक परम्परा से युक्त लोगों से भी दूर रहना चाहता है। क्योंकि वह उन लोगों के विचार से सहमत नहीं होता है और उनसे अलग अपनी एक निजी पहचान बनाने का प्रयास करता है।

2.10.2 परम्परा भंजन

आधुनिकता अपने उदय के साथ ही परम्परा–भंग के प्रति विशेश आग्रह और पर्याप्त उत्साह पैदा करती है। विश्व ने विगत शताब्दियों में परम्परा भंजन और परिवर्तनों को स्वीकार करने की प्रवृत्ति का विकास किया है। परन्तु पहले सभी समाजिक परम्परा को ज्यादा महत्व देते थे, परन्तु ये प्राचीन परम्पराएँ विज्ञान के प्रादुर्भाव से समाप्त हुई हैं। श्अछूतोद्धारश, श्प्रतिलोम विवाहश, श्बहुविवाह का कानूनी बहिश्कारश, श्सती प्रथा का निशेधश, श्नारियों को सम्पत्ति पर समान अधिकारश, श्तलाक वंध्याकरण धर्मनिरपेक्ष सरकारी नीतिश, श्विभिन्न प्रान्तों का परस्पर आर्थिक अन्तरावलम्बन योजनाबद्ध आर्थिक विकासश, श्उत्तराधिकार की संहिता में संशोधनश आदि की कानूनी और सामाजिक स्वीकृति इसके उत्तम उदाहरण हैं।

2.10.3 शहरीकरण

आधुनिकता के आगमन के साथ–साथ शहरीकरण की प्रवृत्ति भी फैलती है। आज आधुनिकता के कारण गाँव में परिवर्तन सृजन होकर शहर बनते जा रहे हैं। आधुनिकता का एक प्रभाव ही है, कि नये शहर औद्योगिक शहरों में परिवर्तित हो रहे हैं। आज के जीवन में शहर की आस्वादन, परिवेश और शहरीपन की संवेदनाओं को बहुत कुछ अभिव्यक्ति मिली है। इस तरह का परिवर्तन पहले कभी नहीं देखा गया था, कारण यह है कि आधुनिकता और शहरीपन का संबंध गहरा हुआ है। आधुनिकता के बाद में शहरीकरण की प्रवृत्ति मजबूत बन जाती है।

2.10.4 मूल्य–प्रक्रिया.

आधुनिकता को अगर एक निश्चित मूल्य के रूप में ग्रहण किया जाए तो वह समय विशेश से निबद्ध एक वस्तुनिश्ठ स्थिति बन जाएगी, ऐसी स्थिति में आधुनिकता के सभी लक्षण मानदण्ड के रूप में स्वीकृत किये जायेंगे तब आधुनिकता की पहचान नियत मानदण्डों के आधार पर की जायेगी। वर्तमान के प्रति तीव्रतम सजगता आधुनिकता बनकर सृजनात्मक मूल्य के रूप में प्रतिश्ठित होती है। मूल्य के रूप में विभावित आधुनिकता इतिहास की प्रक्रिया का अद्यतन चरण है। सृश्टि के विकास की

आधारभूत स्थितियों का यदि परीक्षण किया जाए तो इस संचरण का क्रम–परिवर्तक विकास, आधुनिकता के रूप में दिखाई देगा।

2.10.5 समय बोध

समय बोध का आधुनिकता बोध से निकट संबंध है। आधुनिकता बोध के संदर्भ में कहा जाता है कि यह समय सापेक्ष संकल्पना है। समय सापेक्षता के दो अर्थ हैं।

- पहला अर्थ यह है कि हर काल अपने युग में आधुनिक होता है। जैसे– प्राचीन काल भी अपने समय में आधुनिक रहा होगा और आज का युग भी वर्तमान संदर्भ में आधुनिक है।
- समय सापेक्षता का दूसरा अर्थ वर्तमान अर्थात काल विशेश की ओर संकेत करता है। इस काल विशेश का प्रारंभ पुनर्जागरण ;रेनेसाद्ध से माना जाता है। युग के प्रति सतर्कता इसकी सबसे बड़ी विशेशता है।

समय सापेक्षता के दोनों अर्थ अपनी–अपनी जगह चाहते हैं, जिसके अनुसार आधुनिकता बोध का संबंध पुनर्जागरण ;रेनेसाद्ध के साथ जोड़ा जा सकता है। क्योंकि पुनर्जागरण जैसे युग प्रवर्तक घटना के बाद समूचे विश्व में इतना परिवर्तन आया कि उसे नये नाम की आवश्यकता महसूस हुई।

2.10.6 जिज्ञासा और गतिशीलता

निरन्तर प्रश्नाकुलता और जिज्ञासा आधुनिकता के लक्षण हैं। इनके कारण गतिशीलता और निरन्तरता बनी रहती है। प्रश्नाकुलता और जिज्ञासा वैज्ञानिक दृश्टि के ही अंग हैं। इसने चिंतन की जड़ प्रणालियों को तोड़ा है। प्रश्नाकुलता और जिज्ञासा के कारण ज्ञान में निरंतर वृद्धि हो रही है। हर नया अन्वेशण तर्क, शुद्ध दृश्टि से पुरातन को गलत साबित करते हुए उसे अस्वीकार करता है। हर शस्त्र–यन्त्र आदि अन्वेशण के आधार पर अपने में सुधार करता चला जाता है। किसी भी चीज का कोई अन्तिम हल नहीं होता इसलिए अन्वेशण निरंतरीय बना ही रहता है। इससे यही कह सकते हैं कि जिज्ञासा और गतिशीलता ही नयेपन अर्थात आधुनिकता की जननी है।

2.10.7 सतर्कता

आधुनिक मनुश्य अपने वर्तमान के प्रति बहुत अधिक सतर्क है। वर्तमान जब अतीत से बहुत अधिक भिन्न नजर आता है; तब मनुश्य अपने वर्तमान के प्रति जागरूक हो उठता है। मध्य युग में कई बार जब तत्कालीन वर्तमान उसके अतीत से भिन्न था, तब वह युग अपने वर्तमान के प्रति सतर्क एवं सजग न होने से परिवर्तन को एक दैवीय निश्पत्ति के रूप में स्वीकार कर लेते थे। इसके विपरीत आज हमें इस बात का तीव्रता से एहसास हो रहा है कि अतीत से चली आ रही व्यवस्थाएँ निरर्थक ही रही हैं। सारी पारस्परिक व्यवस्थाओं का मानव जीवन में उपयोगी न होने का बोध ही उसमें अपने परिवेश के प्रति सतर्कता पैदा करती है। जो आधुनिकता का एक विशिश्ट लक्षण है।

2.10.8 आरागात्मकता और विकल्प की स्वतंत्रता

तार्किकता वैज्ञानिक दृश्टि का अभिन्न अंग है। तार्किकता, भावुकता के विरोध में पड़ती है। भावुकता से परे होने का मतलब ही है, अरागात्मक होना। मनुश्य जितना अधिक अरागात्मक होगा उतना अधिक वह वैज्ञानिक और आधुनिक होगा। अरागात्मक होने की मनुश्य में जितनी अधिक क्षमता

होगी, उस मात्रा में उसे विकल्प की स्वतंत्रता प्राप्त होगी। आधुनिक होने का मतलब है कि जीवन को विकल्प और चुनाव की दृश्टि से देखना।

2.11 सारांश.

उपरोक्त विवेचना से स्पश्ट हो जाता है कि आधुनिकता एक ऐसी मानसिक स्थिति है, जो समकालीन परिवेश के प्रति जागरूक है। इस जागरूकता के मूल में वैज्ञानिक जीवन दृश्टि है। विज्ञान ने मनुष्य को भौतिकवादी दृश्टि दी है और आधुनिक युग के मूल्यों का निर्माण या विकास किया है। यह भौतिकवादी जीवन दृश्टि का ही प्रभाव है कि धर्म व अर्थ की आस्था के स्थान पर तर्क, संदेह और अनास्था की भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता की तथा कल्पना के स्थान पर प्रयोग की प्रतिश्ठा हुई है। इन्हीं आधारभूत तत्वों ने आधुनिकता का मार्ग प्रशस्त किया है।

2.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

- आधुनिकता से क्या आशय है? अर्थ व परिभाशा सहित स्पश्ट कीजिए।
- आधुनिकता की पृष्ठभूमि तथा उसके स्वरूप का विवेचन कीजिए।
- आधुनिकता के प्रेरणा–स्रोतों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
- आधुनिकता के लक्षणों का वर्णन कीजिए।

2.13 संदर्भ ग्रन्थ

डा0 एस0 एल0 दोशी.	आधुनिकता, उत्तर–आधुनिकता एवं नव–समाजशास्त्रीय सिद्धान्त
डा0 रमेश कुंतल मेघ.	आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण
डा0 शिव प्रसाद सिंह.	आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद
डा0 गंगा प्रसाद विमल.	आधुनिकता– साहित्य के संदर्भ में
डा0 वीरेन्द्र मोहन.	आधुनिकता– व्यवहारिक पक्ष
डा0 एन0डी0 पाटिल.	आधुनिकी खण्डकाव्यों में युगचेतना

2.14 निबन्धात्मक प्रश्न

- किस प्रकार आधुनिकता ने रूढिवादी परम्पराओं का खण्डन करके एक नये युग का निर्माण किया? तर्क दीजिए।

ब्लॉक दो

इकाई तीनः उत्तर–आधुनिकतावादः कला, साहित्य, संगीत एवं स्थापत्य

3.0 प्रस्तावना

3.1 उद्देश्य

3.2 उत्तर–आधुनिकता का अर्थ

3.3 उत्तर–आधुनिकता की परिभाषा

3.4 उत्तर–आधुनिकता के तत्व

- 3.4.1 विरचना, विखण्डनवाद या विनिर्मितिवाद
- 3.4.2 विकेन्द्रीयता
- 3.4.3 लोकप्रिय संस्कृति की ओर उन्मूखता
- 3.4.4 स्थानीयता का महत्व
- 3.4.5 नव–इतिहासवाद
- 3.4.6 अंतवाद
- 3.4.7 परंपरा का अतिक्रमण

3.5 उत्तर–आधुनिकता का उद्भव

3.6 उत्तर–आधुनिकता का व्याप

3.7 उत्तर–आधुनिकता का प्रभाव

3.8 उत्तर–आधुनिकता का महत्व

3.9 आधुनिकता और उत्तर–आधुनिकता

3.10 सारांश

3.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.12 संदर्भ ग्रन्थ

3.13 निबन्धात्मक प्रश्न

3.0 प्रस्तावना

उत्तर–आधुनिकता 20वीं सदी के उत्तरार्ध में शुरू हुआ एक सैद्धान्तिक आन्दोलन है। यह विशुद्ध साहित्यिक आन्दोलन नहीं है। साहित्य के साथ–साथ इसने कला के कई रूपों को प्रभावित किया है। इसने पुराने सिद्धान्तों पर फिर से विचार करने पर जोर दिया। उत्तर–आधुनिकता एक ही साथ आधुनिकता का विकास भी है और विलोम भी। आधुनिकता ने मनुष्य को केन्द्र में रखकर अपना विकास किया था। मनुष्य ने अपनी सुख–सुविधा को केन्द्र में रखा। भौतिक विकास को ही मनुष्य का वास्तविक विकास माना जाने लगा। परिणाम यह हुआ कि प्रकृति के साथ समाज का एक बड़ा हिस्सा भी हाशिए पर चला गया।

उत्तर–आधुनिकता का विकास आधुनिकता की इन्हीं प्रवृत्तियों के विरोध में हुआ। उत्तर–आधुनिकता ने हाशिए की आवाज को केन्द्र में लाने की कोशिश की। विकास की धारणा को प्रश्नांकित किया। परिणामस्वरूप हाशिए की चीजें केन्द्र में आने लगीं। आदिवासी विमर्ष, दलित विमर्ष, स्त्री–विमर्ष, पर्यावरण संवेदना आदि कई विमर्ष शरूः हुए। समाज में हुए इन विमर्षों ने कला, साहित्य, संगीत, स्थापत्य एवं राजनीति आदि कई चीजों को प्रभावित किया।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई में उत्तर–आधुनिकता के अर्थ, परिभाषा एवं उद्‌भव से लेकर उसके तत्वों की जानकारी दी गई है। किस प्रकार उत्तर–आधुनिकता विकेन्द्रीयता के तत्व को सम्मिलित करके केन्द्र को विस्थापित कर हाशिए से लोगों को केन्द्र में लायी। साथ ही उत्तर–आधुनिकता के प्रभाव एवं महत्व को भी सम्मिलित किया गया है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे।

- उत्तर–आधुनिकता सम्बन्धी अर्थ व परिभाषा
- उत्तर–आधुनिकता के तत्व
- उत्तर–आधुनिकता का उद्‌भव
- उत्तर–आधुनिकता का व्याप
- उत्तर–आधुनिकता का प्रभाव
- उत्तर–आधुनिकता का महत्व
- आधुनिकता और उत्तर–आधुनिकता

3.2 उत्तर–आधुनिकता का अर्थ

उत्तर–आधुनिकता शब्द वर्तमान में चर्चा का नया केन्द्र है। सामान्यतः उत्तर–आधुनिकता शब्द आधुनिकता के अर्थ संदर्भ की ओर संकेत करता है। मूलतः उत्तर–आधुनिकता शब्द आधुनिकता से पूर्व उत्तर शब्द जुड़कर बना है। इस अर्थ में उत्तर–आधुनिकता का तात्पर्य आधुनिकता के बाद आने वाला काल है। यह वर्तमान में आये हुए परिवर्तनों को व्याख्यायित करती है। इस प्रकार उत्तर–आधुनिकता, आधुनिकता की प्रतिक्रिया भी, अंत भी और विस्तार भी है। क्योंकि यह एक विचारधारा है जो अपनी पूर्ववर्ती सारी विचारधारा का अंत करके अपना स्थायी स्थान बनाती है।

अपने इन अर्थ–संदर्भों के साथ उत्तर–आधुनिकता एक विचारधारा के रूप में स्थित हुई है। आधुनिकता के बाद उसकी प्रतिक्रिया एवं उसके विस्तार के रूप में उत्तर–आधुनिकता का उद्‌भव हुआ है। अपने व्यापक अर्थ संदर्भों के कारण उत्तर–आधुनिकता को संपूर्ण परिभाषित करना संभव

नहीं हो पाया है। परंतु संक्षेप में उत्तर–आधुनिकता परिवर्तित नये सामाजिक ढांचे का प्रतिबिंब है जो समाज के परिवर्तन की दिशा भी निर्धारित करती है।

3.3 आधुनिकता की परिभाषा

फ्रांस के विचारक जाफ्रेंकोज–ल्योतार ने ही उत्तर–आधुनिकता के पद को गाढ़ा है। उन्होंने 1960 ई0 से उत्तर–आधुनिकता का आरम्भ स्वीकार किया है। ल्योतार उत्तर–आधुनिकता को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि:.

अत्यधिक सरल शब्दों में उत्तर–आधुनिकता की परिभाषा महान वृतान्तों में अविश्वास करना है। हमें सकलता के खिलाफ युद्ध छेड़ देना चाहिए, इसकी अपेक्षा हमारी सक्रियता विशिष्टता के प्रति होनी चाहिए। वास्तव में उत्तर–आधुनिकता केवल अधिकृत व्यक्तियों का औजार ही नहीं है, इसका लक्ष्य विशिष्टता के प्रति हमें संवेदनशील करना है और वे वस्तुएँ जो हमें अनुपयुक्त लगती हैं, उन्हें उदारता के साथ स्वीकार करने की योग्यता पैदा करना है।

ल्योतार की परिभाशा थोड़ी भारी–भरकम है। उन्हें महान वृतान्त इसलिए अस्वीकार्य हैं क्योंकि इसमें सकलता है। संसार में बड़ी विविधता है, एकाधिक संस्कृतियाँ हैं, भाषाएँ हैं, संगीत और नृत्य हैं, अर्थ–व्यवस्थाएँ हैं। सबको बाँधकर कोई एक सिद्धान्त सारी दुनिया पर लागू नहीं किया जा सकता है। यह सकलता है, सारी दुनिया के लिए एक ही पैमाना है। ल्योतार को इसीलिए यह महान वृतान्त अस्वीकार है। वास्तव में समाजशास्त्र को समाज की विभिन्नताओं को समझना चाहिए। हमें स्थानीयता केन्द्रित वृतान्त बनाने चाहिए। उनका विचार है कि जो बातें हमें अनुपयुक्त लगती हैं, महान वृतान्त उन्हें छोड़ देते हैं। इनके विचार से इन अनुपयुक्त बातों के प्रति हमें संवेदनशील होना चाहिए। इनकी परिभाषा के प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं:.

- ल्योतार विखण्डन अर्थात स्थानीयता के पक्षधर हैं।
- विविधता के हामी हैं।
- सकलता तथा महान वृतान्त के विरोधी हैं।

3.4 उत्तर–आधुनिकता के तत्व

उत्तर–आधुनिकता के तत्व उत्तर–आधुनिकता को समझने में भली भाँति सहायक सिद्ध होते हैं। जिन तत्वों के आधार पर उत्तर–आधुनिकता खड़ी हैं, उन्हें समझने पर वह अपने–आप स्पष्ट हो जाती है। उत्तर–आधुनिकता का विवेचन करने पर इसमें निम्न तत्वों की उपस्थिति अनिवार्य होती है।

3.4.1 विरचनावाद, विखण्डनवाद या विनिर्मितिवाद

विरचना, विखण्डन या विनिर्मिति को उत्तर–आधुनिकता का प्रमुख तत्व माना जाता है। विखण्डनवाद की पूरी अवधारणा को जन्म देने का श्रेय देरीदा को जाता है। देरीदा ने अपने विखण्डनवाद के माध्यम से उत्तर–आधुनिकता की दार्शनिक, साहित्यिक विचारधारा को एक नया क्रांतिकारी मोड़ दिया है।

विखण्डनवाद की प्रणाली के माध्यम से पाठ के निर्धारित अर्थ को विस्थापित करके, उसके अद्वितीयत्व को पूरी तरह विखण्डित करके पाठ के भीतर जो अर्थ दबा हुआ है उसे बाहर लाया जाता है। इस प्रकार उत्तर–आधुनिकता का विखण्डनवाद खण्डन का काम करता है। विचारकों ने पाठ को केवल एक दृष्टि से देखकर अपनी धारणा के अनुसार एक अर्थ निर्धारित कर दिया था।

उत्तर–आधुनिकता उसमें सेंध करती है और उस अर्थ को खण्डों में विभाजित करके विस्थापित करती है तथा उसकी जगह दबे मूल अर्थ को बाहर लाती है।

3.4.2 विकेन्द्रीयता

उत्तर–आधुनिकता का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है–विकेन्द्रीयता। विकेन्द्रीयता अर्थात केन्द्र को विस्थापित करके हाशिए से लोगों को केन्द्र में लाना। आधुनिकता केन्द्रीय सत्ता से सीधी टकराती है।

विकेन्द्रीकरण की धारणा, उत्तर–आधुनिकता की एक ऐसी मान्यता है जो रचना के साथ ही समान और सामाजिक संबंधों की पुनर्व्याख्या की माँग करती है। इसका कारण है शासक समुदाय अथवा बुद्धिजीवी समाज, साहित्य और कला के क्षेत्र में शरू से ही एक केन्द्रीय परम्परा बनाए रखना चाहते हैं तथा जो भी विचार अथवा रचना उस केन्द्रीय परम्परा के खिलाफ विकसित होती है वह उसकी आलोचना, विरोध एवं दमन का पात्र बनती है। इस प्रकार उत्तर–आधुनिकता का विकेन्द्रीयता नामक तत्व हर तरह के केन्द्रवाद को तोड़ता है, ध्वस्त करता है। उसकी यात्रा केन्द्र से परिधि की ओर रही है। केन्द्र को हाशिए पर धकेलना तथा हाशिए को केन्द्र में लाना, उत्तर–आधुनिकता का लक्ष्य रहा है।

3.4.3 लोकप्रिय संस्कृति की ओर उन्मूखता

उत्तर–आधुनिकता लोकप्रिय संस्कृति का खुलकर समर्थन करती है। विभिन्न कूपमंडूक संस्कृतियाँ छद्म वेष धारण किए हुए हैं। जिसमें स्थापित हित वाले लोग अस्मिता के नाम पर ढ़ोंग ही करते हैं। वास्तव में वे दलित–पिछड़े वर्ग के लोगों के साथ क्रूर मजाक ही करते हैं। अभिजात्य संस्कृति के लोग केवल दिखावा ही करते हैं। भीतर तो अमानवीयता ही भरी रहती है। उत्तर–आधुनिकता परंपरागत संस्कृतियों का विरोध करती है और सभी मनुष्यों को एक मानकर विश्व–संस्कृति का निर्माण करती है। यही लोकप्रिय संस्कृति है।

संस्कृति की चर्चा आते ही उत्तर–आधुनिकता लोकप्रिय संस्कृति की पक्षधरता को ग्रहण करती है। कहना चाहिए उसकी निष्ठा लोकप्रिय संस्कृति मास कल्चर के प्रति है। पूरे जोर–शोर से उत्तर–आधुनिकतावाद, अभिजात्यवादी कला–संस्कृति पर प्रहार करता है और उसे लोकप्रिय संस्कृति से श्रेष्ठ नहीं मानता।

3.4.4 स्थानीयता का महत्व

उत्तर–आधुनिकता वैश्विक स्तर पर अपना स्वामित्व सिद्ध करने वाली विचारधारा रही है। प्रत्येक स्थान पर उसका प्रभाव रहा है। किन्तु वह स्थानीयता को महत्व देकर आगे बढ़ती है। स्थानिक परिस्थितियाँ एवं समस्याएँ उसके केन्द्र में रहती हैं। इसलिए उत्तर–आधुनिकता के प्रखर विचारक फूको ने विशिष्ट बुद्धिजीवियों की धारणा की है।

फूको के अनुसार– विशिष्ट बुद्धिजीवी, विश्वस्तरीय बुद्धिजीवियों से अलग होते हैं। विश्वस्तरीय बुद्धिजीवी जैसे–वामपंथी या मार्क्सवादी बुद्धिजीवी अपने आपको विश्वजनीनता के प्रवक्ता मानते है। उन्हें सत्य, न्याय एवं समानता जैसी बड़ी समस्याओं पर विचार करने में आनंद आता है। वे सभी स्थितियों के लिए न्यायसंगत एवं सत्य होना चाहते हैं। किंतु समस्याएँ विश्व स्तर पर न होकर एक स्तर विशेष पर होती हैं। विशिष्ट बुद्धिजीवियों को न विषेश परिस्थितियों एवं स्थानों में काम

करना होता है जहाँ उनका जीवन एवं उनका काम उन्हें स्थापित करता है। इस प्रकार उत्तर–आधुनिकता स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप अपना कार्य करती है।

3.4.5 नव–इतिहासवाद

नव–इतिहासवाद, उत्तर–आधुनिकता का एक अंगभूत तत्व है। नव–इतिहासवाद की संकल्पना इसलिए उत्पन्न हुई कि साहित्य के अंतर्गत यह विचार चल पड़ा था कि साहित्य इतिहास और संस्कृति के अनुरूप होना चाहिए या नहीं। अतः दो कारणों से नव–इतिहासवाद का जन्म हुआ– एक, साहित्यिक अध्ययन की सुविधा हेतु तथा दूसरा, इतिहास की प्रमाणिकता संदिग्ध है।

- साहित्य में इतिहास और संस्कृति की भूमिका पर नये ढ़ंग से विचार करने पर जो नवीन विचार–दृष्टि पैदा हुई है उसे नव–इतिहासवाद कहा गया।
- नव–इतिहासवाद, का दूसरा मूलभूत कारण है– अब तक लिखे गये इतिहास प्रमाणिकता की दृष्टि से संदिग्ध रहे हैं। इतिहास की प्रमाणिकता पर इसलिए सवाल खड़े हुए हैं क्योंकि इतिहास में अधिकांश जो वर्णन मिलता है वह केवल एक विषेश वर्ग से ही संबंधित होता है। उसमें सामान्य जनता का संपूर्ण रूप में समावेश नहीं हुआ है। इतिहास केन्द्र पर रहे लोगों की गाथा है तथा हाशिए पर जीने वाले लोगों को उसमें न्याय नहीं मिलता है। उत्तर–आधुनिकता इन सभी बातों की ओर इंगित करते हुए इतिहास को पुनर्व्याख्यायित करने की माँग करती है।

3.4.6 अंतवाद

अंतवाद उत्तर–आधुनिकता का सर्वाधिक विवादास्पद तत्व रहा है। उत्तर–आधुनिकता ने महाआख्यानों का, इतिहास का तथा लेखक का अंत घोषित किया है। उसकी दृष्टि में अंतवाद का एक ही कारण है कि महाआख्यान और इतिहास दोनों सार्वभौमिक–शाश्वत सत्य की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। इसमें से लेखक का अंत अलग दृष्टि से घोषित किया गया है।

अतः उत्तर–आधुनिकता मार्क्सवाद, फ्राइडवाद, ईसाइवाद आदि को केवल वृतान्त मानती है, सार्वभौमिक–शाश्वत सत्य उनमें नहीं है। इसलिए वह इन सभी का अंत घोषित करती है वह इतिहास को अप्रमाणिक मानकर चलती है। उत्तर–आधुनिकता लेखक का अंत इस प्रकार घोषित करती है कि– जैसे ही रचना लेखक से अलग होकर पाठक तक पहुँचती है, वह अपना स्वायत्त स्वतंत्र जीवन जीती है और तुरंत लेखक का अंत हो जाता है। क्योंकि पाठक रचना को अपने अनुभव जगत के आधार पर पढ़ता है, अर्थ ग्रहण करता है, लेखक की उसमें कहीं भूमिका नहीं रह जाती। अतः लेखक का अंत माना जाता है।

3.4.7 परंपरा का अतिक्रमण

परंपरा का अतिक्रमण अर्थात परंपरा का उल्लंघन। उत्तर–आधुनिकता परंपरा का उल्लंघन करती है। इस दृष्टि से उत्तर–आधुनिकता, आधुनिकता का विस्तार है। उत्तर–आधुनिकता परंपरा को समूल नष्ट करने का प्रयास करती है। इससे पहले किये गये प्रयास इतने कमजोर थे कि परंपराएँ एक या दूसरे स्वरूप में बनी रहीं। उत्तर–आधुनिकता की यह विशेषता है कि वह अपने इस पहलू को पूरा महत्व देकर संपूर्णता के साथ परंपराओं को दूर करने का प्रयास करती है। उत्तर–आधुनिकता परंपराओं पर अपना सीधा आक्रमण करती है। परंपराओं के विरोध के कारण सामाजिक साहित्यिक संरचनाओं में एक विशेष प्रकार का परिवर्तन आता है। इससे मनुष्य व्यर्थ की

विडंबनाओं से मुक्त होता है। मनुष्य कई प्रकार के बंधनों से मुक्त होता है। फलतः स्वतंत्र एवं स्वस्थ जीवन जी पाता है। सामाजिक बंधन शिथिल होने पर मानव–मानव के बीच की दूरी कम हो जाती है।

3.5 उत्तर–आधुनिकता का उद्‌भव

उत्तर–आधुनिकता का उद्‌भव निश्चित तौर पर किस वर्ष में हुआ यह कहना थोड़ा मुश्किल है। सभी विद्वानों के मत में थोड़ा–बहुत फर्क रहा है। सर्वमान्य मत के अनुसार उत्तर–आधुनिकता का उद्‌भव सन् 1960 में यूरोप में हुआ है। उसका पहला प्रभाव समाज पर लक्षित होने लगा था। सन् 1970 तक आते–आते वह अपने स्पष्ट रूप में सामने आने लगा। कोई भी परिवर्तन जब अपने सारे लक्षणों के साथ सामने आता है, तभी ही उसका नामाभिधान होता है। सन् 1970 में जो परिवर्तन सामने आया, उस परिवर्तन को नाम दिया गया– उत्तर–आधुनिकता। इस परिवर्तन का बुद्धिजीवियों, विचारकों, चिंतकों ने अध्ययन किया और उस पर अपने विचार, मत प्रकट किये। सन् 1984 में ल्योतार ने उत्तर–आधुनिकता की संपूर्ण अवधारणा स्पष्ट की। ल्योतार ने विज्ञान, दर्शन एवं समाज में आये परिवर्तनों का विश्लेषण करके उत्तर–आधुनिकता की स्थापना की है। ल्योतार की स्थापना के बाद देरीदा, फूको, जेमेसन, रोला बार्थ जैसे विद्वानों ने इसे और अधिक विकसित किया। अंततः उत्तर–आधुनिकता ने अन्य सभी प्रणालियों, विचारधाराओं, स्थापनाओं को विस्थापित करके अपना स्थान कायम किया।

यहाँ उत्तर–आधुनिकता के उद्‌भव के साथ ही उद्‌भव के कारणों को देखना भी जरूरी बन जाता है। उत्तर–आधुनिकता के उद्‌भव के पीछे दो कारण जिम्मेदार हैं– एक, स्वयं आधुनिकता और दूसरा, प्रौद्योगिकी तथा संचार एवं सूचना की सतत विकसित होती हुई तकनीकें।

अतः उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि सन् 1960 के बाद उत्तर–आधुनिकता का उद्‌भव यूरोप में हुआ और अपने व्याप के कारण समग्र विश्व में छा गई। नई उत्पन्न परिस्थितियों के कारण इस चिंतनप्रणाली, ज्ञानधारा का जन्म हुआ है।

3.6 उत्तर–आधुनिकता का व्याप

उत्तर–आधुनिकता का व्याप इतना है कि उसने मानव–जीवन से जुड़े हुए पहलू पर अपना प्रभाव छोड़ा है। उत्तर–आधुनिकता को समग्र विचार और चिंतन का विज्ञान अर्थात ज्ञान का विज्ञान भी कहा जाता है। क्योंकि इसके सिद्धान्तकार सिर्फ साहित्य पर ही बात नहीं करते बल्कि उसे एक राजनितिक विमर्ष मानकर जीवन का नया अर्थ खोजने की माँग करते हैं। अर्थात उत्तर–आधुनिकता कोई एक विद्वान के द्वारा प्रवाहित होने वाली धारा नहीं है बल्कि अलग–अलग विद्वानों के चिंतन से अस्तित्व में आने वाली विचारधारा रही है। उसके सभी व्याख्याता अलग–अलग विषय क्षेत्रों के ज्ञाता रहे हैं। इसलिए इसका व्याप समग्र विषय क्षेत्रों में रहा है।

उत्तर–आधुनिकता की व्यापकता ने संपूर्ण विश्व के साहित्य के स्वरूप एवं समीक्षा–प्रणाली को परिवर्तित कर दिया है। उत्तर–आधुनिकता ने साहित्य–चिंतन की कई नई वैचारिक पद्धतियाँ–प्रविधियाँ–शैलियाँ विकसित की हैं। इन वैचारिक पद्धतियों में सांस्कृतिक–अध्ययन क्षेत्र, नव–इतिहासवाद, नवमिथकवाद, अधीनस्थों का अध्ययन, नारीवाद, अश्वेत पीड़ा अध्ययन, दलित–दमित साहित्य का अध्ययन आदि को जगह मिलती है।

संक्षेप में उत्तर–आधुनिकता का व्याप सर्वत्र फैला हुआ है। समग्र विश्व के कला, साहित्य, दर्शन, इतिहास, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, संस्कृति, विज्ञान आदि सभी विषय–क्षेत्रों पर उत्तर–आधुनिकता अपनी जड़ें जमा चुकी है।

3.7 उत्तर–आधुनिकता का प्रभाव

मानव–जीवन पर उत्तर–आधुनिकता का प्रभाव सूक्ष्म एवं गहरा रहा है। सूचना प्रौद्योगिकी एवं तकनीकी इस प्रभाव के माध्यम रहे हैं। यह प्रभाव वैश्विक एवं क्षेत्रीय दोनों स्तरों पर रहा है। क्षेत्र–विषेश की संस्कृतियाँ उत्तर–आधुनिकता के प्रभाव में आकर अपना अस्तित्व खो रही हैं और एक विश्व–संस्कृति का निर्माण हो रहा है। मनुष्य के संबंध बदल रहे हैं, भाषा बदल रही है और रहने के ढ़ंग बदल रहे हैं। ये परिवर्तन अत्यंत तीव्र गति से हो रहे हैं।

तकनीकी क्रांति ने मानव समुदाय को प्रत्येक कोणों से बदल दिया। उत्तर–आधुनिकता ने आधुनिकता के सारे सिद्धान्तों को नया मोड़ दिया। आधुनिकता की सारी सीमाएँ टूट गयी। कम्प्यूटर ने न केवल मानव–समुदाय को आश्चर्यचकित किया बल्कि उस पर पूरी तरह से अपनी सत्ता भी स्थापित की। उत्तर–आधुनिकता ने साहित्य, संस्कृति, कला आदि के स्वरूप को बदल दिया है।

संक्षेप में उत्तर–आधुनिकता ने सारी जीवन–शैलियों को परिवर्तित कर दिया है। मानव जीवन से जुड़े हर क्षेत्र नये ढ़ाँचे में अपना आकार ग्रहण कर रहे हैं। दुनिया एक विश्व–ग्राम बनने की ओर अग्रसर हो रही है।

3.8 उत्तर–आधुनिकता का महत्व

प्रौद्योगिकी एवं तकनीकी विकास तथा आधुनिकता की प्रतिक्रिया स्वरूप उद्‌भावित होने वाली उत्तर–आधुनिकता का समसामयिक परिस्थितियों में विशेष महत्व रहा है। आधुनिकता से उत्पन्न समस्याओं से निपटने में उत्तर–आधुनिकता सहायक सिद्ध होती है। आधुनिकता की खण्डनात्मक प्रवृत्तियों की प्रतिक्रिया के रूप में ही इसका जन्म हुआ है। वह मनुष्य को भावी जीवन के लिए सजग करती है। उचित न्याय प्रणाली एवं औवचित्य भरी दृष्टि उसकी प्रमुख विषेशता रही है। उत्तर–आधुनिकता असमानता को दूर करती है और बौद्धिकता तथा योग्यता को महत्व देती है। इससे ढ़कोसले जैसी परंपराओं का अंत होता है। वह आने वाली समस्याओं के प्रति सजग करती है तथा जीवन के महत्वपूर्ण सवालों के प्रति हमारा ध्यान आकर्षित करती है। इस दृष्टि से उत्तर–आधुनिकता का महत्व और अधिक बढ़ जाता है कि वह असमानता को दूर करके मानवीयता को स्थापित करने का प्रयास करती है। वह एकाधिकार एवं केन्द्रवाद को खारीज करती है इसमें ही उसका महत्व है।

आधुनिकता ने पूँजीवाद को जन्म दिया और पूरी तरह से विकसित किया। समग्र दुनिया पर पूँजीपतियों का साम्राज्य स्थापित हुआ, जिसमें सामान्य मनुष्य पीसा जा रहा था। उत्तर–आधुनिकता पूँजीवाद का विरोध करती है और पूँजीवाद को सर्वभक्षी मानकर उसे खारिज करने का प्रयास करती है। अतः इस दृष्टि से भी उत्तर–आधुनिकता का महत्व कम नहीं है।

संक्षेप में वर्तमान की समस्याओं को उजागर करने वाली, समाज के नव–निर्माण के लिए प्रयास करने वाली तथा मानवीय पहलुओं को साथ लेकर चलने वाली उत्तर–आधुनिकता का महत्व कम नहीं है। वह वर्तमान की माँग एवं आवश्यकता रही है।

3.9 आधुनिकता और उत्तर–आधुनिकता

उत्तर–आधुनिकता को संपूर्ण रूप में समझने के लिए आधुनिकता के साथ उसके संबंध को देख लेना जरूरी बन जाता है। उत्तर–आधुनिकता, आधुनिकता से कैसे और क्यों अलग है, यह समझने से उत्तर–आधुनिकता का एक निष्चित रूप सामने आता है।

कुछ विद्वानों ने उत्तर–आधुनिकता को आधुनिकता का विस्तार माना है। उनका मानना है कि उत्तर–आधुनिकता का जन्म आधुनिकता की अगली कड़ी के रूप में हुआ है। उत्तर–आधुनिकता के प्रमुख प्रवक्ता ल्योतार का कहना है कि– उत्तर–आधुनिकता, आधुनिकता का आखिरी बिंदु नहीं है, बल्कि उसमें मौजूद एक नया बिंदु है और यह दशा लगातार है। अर्थात उत्तर–आधुनिकता, आधुनिकता का विस्तार है। इस अर्थ में उत्तर–आधुनिकता को अति–आधुनिकता भी कहा जा सकता है।

अधिकांशतः विद्वानों ने यह स्वीकृत किया है कि उत्तर–आधुनिकता का उद्‌भव आधुनिकता की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ है। इसलिए वह आधुनिकता का विस्तार नहीं है। दो विश्वयुद्धों की विभीषिका को मानव–समुदाय ने अनुभूत किया। परिणाम–स्वरूप आधुनिक समाज के ढाँचे में परिवर्तन आया। इस सामाजिक परिवर्तन ने उत्तर–आधुनिकता को जन्म दिया। प्रतिक्रिया के इस भाव ने उत्तर–आधुनिकता को आधुनिकता के विरोध में खड़ा कर दिया हैं।

उत्तर–आधुनिकता को चूँकि आधुनिकता का उत्कर्ष या अवसान माना जाता है, किंतु आधुनिकता के बिना हम उसकी कल्पना नहीं कर सकते। उत्तर–आधुनिकता और आधुनिकता के बीच जो अंतर है, वह हम निम्न पहलुओं पर देख सकते हैंः–

- उत्तर–आधुनिकता इतिहास को भ्रम का पुलिंदा मानकर अस्वीकार करती है जबकि आधुनिकता इतिहास का समर्थन करती है।
- उत्तर–आधुनिकता अन्तर्राष्ट्रीयता को महत्व देती है जबकि आधुनिकता राष्ट्रीयता को प्रबल करती है।
- उत्तर–आधुनिकता केन्द्र का विस्थापन करती है जबकि आधुनिकता केन्द्र को मजबूत करती है।
- उत्तर–आधुनिकता व्यक्तिगत भूमिका को महत्व देती है जबकि आधुनिकता संस्थागत भूमिका को महत्व देती है।
- उत्तर–आधुनिकता तार्किकता का विरोध करती है जबकि आधुनिकता तार्किकता को महत्व देती है।

संक्षेप में उत्तर–आधुनिकता और आधुनिकता के बीच अविच्छिन्न संबंध रहा है। भले ही उत्तर–आधुनिकता, आधुनिकता की विरोधिनी रही हो, किन्तु उसके उद्‌भव के मूल में आधुनिकता ही रही है।

3.10 सारांश

आधुनिकता एवं उत्तर–आधुनिकता दोनों ने मानव–जीवन को संपूर्ण रूप से प्रभावित किया है। बौद्धिक क्रांति ने आधुनिकता को जन्म दिया। नये सोच ने पुरानी सोच को प्रभावित किया। आधुनिक उपकरणों ने जीवन–प्रणाली को बदल दिया। आधुनिकता की विकृतियों ने मानव–समाज पर भौतिक तथा अभौतिक संकट उत्पन्न किए। पूँजीवाद, वर्चस्ववाद, केन्द्रवाद मजबूत हुए। समान्य मनुष्य की

आवाज एवं अस्मिता दब गई। आधुनिकता की इन परिस्थितियों के विरूद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप उत्तर–आधुनिकता का उद्‌भव हुआ। सूचना एवं प्रौद्योगिकी को साथ लेकर चलने वाले उत्तर–आधुनिकता ने मानवतावादी बिन्दुओं पर अपना प्रभाव छोड़ा। इसके कारण केन्द्रवाद, पूँजीवाद, वर्चस्ववाद अपनी जगह से विस्थापित हो रहे हैं। उत्तर–आधुनिकता मानव–मानव के बीच की दूरी खत्म करके एक विश्व–संस्कृति का निर्माण कर रही है और अपने अर्थ–संदर्भों में कालमूलक तथा चिंतनात्मक–समीक्षात्मक विचारधारा के रूप में प्रयुक्त हो रही है।

3.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

- उत्तर–आधुनिकता से क्या आशय है? अर्थ व परिभाशा सहित स्पष्ट कीजिए।
- उत्तर–आधुनिकता में सम्मिलित तत्वों का विवरण दीजिए।
- उत्तर–आधुनिकता के उद्‌भव तथा मानव–जीवन पर उसके प्रभाव का वर्णन कीजिए।
- उत्तर–आधुनिकता के महत्व पर प्रकाश डालिए।

3.12 संदर्भ ग्रन्थ

डा0 एस0 एल0 दोशी.	आधुनिकता, उत्तर–आधुनिकता एवं नव–समाजशास्त्री सिद्धान्त
डा0 सुधीश पचौरी.	उत्तर–आधुनिकताः साहित्यिक विमर्ष
डा0 कृष्णदत्त पालीवाल.	उत्तर–आधुनिकतावाद और दलित साहित्य
डा0 पाण्डेय शशिभूषण.	उत्तर–आधुनिकताः बहुआयामी संदर्भ
डा0 आरती सिंह.	आधुनिकता से उत्तर–आधुनिकता

3.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. किस प्रकार उत्तर–आधुनिकता एक ही साथ आधुनिकता का विकास भी है और विलोम भी? तर्क दीजिए।

ईकाई एक : आधुनिक भारत में लिंगभेद एवं जाति व्यवस्था

1.1. प्रस्तावना
1.2. उद्देश्य
1.3. लिंगभेद
1.3.1. ब्रिटिश कालीन लिंगभेद
1.3.2. लिंगभेद के कारण
1.3.3. लिंगभेद सुधार आंदोलन
1.3.4. स्वतंत्रता पश्चात् लिंगभेद की स्थिति
1.4. जाति व्यवस्था
1.4.1. ब्रिटिश कालीन जाति व्यवस्था
1.4.2. जाति–व्यवस्था में वर्तमान परिवर्तन व विघटन
1.4.3. स्वतंत्रता पश्चात् जाति व्यवस्था स्वरूप
1.4.4. स्वतंत्रता पश्चात् जाति व्यवस्था के विघटन के कारण
1.5. सारांश
1.6. संदर्भ ग्रंथ
1.7. अभ्यासार्थ प्रश्न

1.1. प्रस्तावना

आधुनिक भारत में लिंगभेद एवं जाति व्यवस्था भारत की जटिलत्तम एवं शायद सबसे प्राचीन रूप है। लिंगभेद द्वारा समाज या संस्कृति अपने स्त्री और पुरुष सदस्यों को एक निश्चित स्थिति प्रदान करती है और उसी के अनुसार स्त्री और पुरुष समूहों में एक ऊँच–नीच का संस्तरण हो जाता है।

लिंग पर आधारित स्तरीकरण– लिंग–स्तरीकरण सम्भवतः सबसे प्राचीन एवं सरल स्तरीकरण है। प्रत्येक समाज या संस्कृति अपने स्त्री और पुरुष सदस्यों को एक निश्चित स्थिति प्रदान करती है और उसी के अनुसार स्त्री और पुरुष–समूहों में एक ऊँच–नीच का संस्तरण हो जाता है। उदाहरणार्थ, पितृसत्तात्मक या पितृवंशीय परिवार वाले समाजों में पुरुषों की स्थिति ऊँची तथा स्त्रियों की स्थिति नीची होती है। परम्परागत हिन्दू–समाज इसका एक उत्तम उदाहरण है जिसमें कि पुरुष ही परिवार

का संचालक होता है, वह ही सम्पत्ति की देखरेख करता, पारिवारिक झगड़ों का निपटारा करता और सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक व सामुदायिक विषयों में उसका निर्णय ही अन्तिम होता है। इसके विपरीत, नारी की स्थिति नीची होती है और उसके बारे में यह सोचा जाता है कि नारी अबला और शक्तिहीन होती है और उसे प्रत्येक अवस्था में, जन्म से लेकर मृत्यु तक, किसी–न–किसी पुरुष के संरक्षण की आवश्यकता होती है। अनेक संस्कृतियों में धर्म और जादू के क्षेत्र में स्त्रियों की स्थिति पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक गिरी हुई होती है। उदाहरणार्थ, नीलगिरि की टोडा जनजाति, जोकि विशुद्ध रूप से पशुपालक है, स्त्रियों को मासिक–धर्म आदि के कारण अपवित्र तथा अयोग्य मानती है; स्त्रियाँ इस जनजाति की भैंसशालाओं के पास तक नहीं जा सकतीं। इसके विपरीत, मातृसत्तात्मक या मातृवंशीय परिवार वाले समाजों में स्त्रियों की स्थिति ऊँची तथा पुरुषों की स्थिति नीची होती है। खासी जनजाति के देवता भी स्त्री होते हैं। पुरुष अपनी सारी कमाई शादी से पहले अपनी माता को और शादी के बाद अपनी पत्नी को देता है। धार्मिक क्रियाओं में भी स्त्रियों का प्रमुख स्थान होता है और बच्चों का परिचय माँ के परिवार के अनुसार ही होता है। विवाह के बाद पति को अपनी पत्नी के घर आकर बस जाना पड़ता है। इसी प्रकार से हम कह सकते है कि राज्य का शासक एवं मुख्य पुरोहित स्त्री ही होती है।

निश्चित अर्थ में भारत जाति प्रथा का आगार है और यहाँ शायद ही कोई सामाजिक समूह ऐसा हो जो इसके प्रभाव से अपने को मुक्त रख सका हो। मुसलमान और ईसाई तक भी इसके पंजे में फँस चुके हैं; चाहे उसका स्वरूप ठीक वैसा न हो जैसा हिन्दुओं में है। दूसरी बात यह है कि प्रारम्भ में जाति–प्रथा इतनी जटिल न थी जितनी बाद में हुई। समय के परिवर्तन के साथ इसका स्वरूप भी परिवर्तित होता गया और अन्त में यह न केवल जटिल बल्कि विचित्र भी हो गई। आज भारत में लगभग 3,000 जातियाँ और उपजातियाँ हैं और उनके अध्ययन के लिए, जैसा हट्टन का कथन है, विशेषज्ञों की एक सेना की आवश्यकता होगी। यही कारण है कि असंख्य विद्वानों ने इस जाति–प्रथा के सम्बन्ध में अनेक गम्भीर विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। इतिहासकारों ने इस जाति–प्रथा का विभिन्न दृष्टिकोणों से अध्ययन करने का प्रयत्न किया है। कुछ विद्वनों ने जाति–प्रथा की उत्पत्ति को समझाया है तो कुछ ने जाति–प्रथा की गतिशीलता की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए आधुनिक समय में जाति–प्रथा में होने वाले परिवर्तनों का विश्लेषण किया है। ऐसे भी अनेक विद्वान हैं जिन्होंने हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में जाति–प्रथा के महत्व या कार्यों का निरूपण किया है, फिर भी सम्पूर्ण भारतीय जाति–प्रथा का पूर्ण विश्लेषण व निरूपण पूर्ण रूप से आज भी प्रस्तुत किया जा रहा है या नहीं, इस विषय में अब भी सन्देह है। अतः इस अध्याय में हम जाति–प्रथा के सम्बन्ध में अधिक–से–अधिक एक विनम्र रूपरेखा ही प्रस्तुत कर सकेंगे।

1.2. उद्देश्य

इस ईकाई का उद्देश्य है कि आधुनिक भारत में लिंगभेद और जाति व्यवस्था पर प्रकाश डालना है।

- लिंगभेद के क्या कारण है?
- लिंगभेद के परिणाम।
- जाति व्यवस्था के कारण।
- जाति व्यवस्था के परिणाम।

- समाज के बहुआयामी परिवर्तन को लक्षित करना।
- भारत में विद्यमान सामाजिक सांस्कृतिक एवं धार्मिक आस्थाओं पर विचार करना।

1.3. लिंगभेद

लिंग–विभेदीकरण सामाजिक विभेदीकरण का शायद सबसे प्राचीन रूप है। स्त्री और पुरुष की शारीरिक रचना बिल्कुल भिन्न होती है और इसी आधार पर उनमें अन्य विभिन्नताएँ पाई जाती हैं। उदाहरण के लिए, स्त्रियों को निर्बल, भावुक, धार्मिक एवं अन्धविश्वासी माना गया है, जबकि पुरुषों को तार्किक, उदार, साहसी तथा प्रगतिशील बताया गया है। इसी विभेद के आधार पर स्त्रियों और पुरुषों में कार्यों का विभाजन भी होता है। यह ठीक है कि संस्कृति–विशेष का भी इन कार्यों के विभाजन पर प्रभाव पड़ता है, फिर भी स्त्री और पुरुष के विशिष्ट कार्यों का एक सार्वभौम प्रतिमान अवश्य होता है जैसे घर–गृहस्थी से सम्बन्धित कार्य स्त्रियाँ करती हैं, जबकि जीविका–पालन, शासन–प्रबन्ध आदि से सम्बन्धित कार्य पुरुष करते हैं। वास्तव में कार्यों का यह विभाजन स्त्री और पुरुष में शरीर, स्वभाव, रुचि आदि में अन्तर के कारण भी होता है। उदाहरण के लिए, सिलाई, बुनाई, कढ़ाई, खाना–पकाना, ललित–कलाएँ आदि स्त्रियाँ सरलता से सीख जाती हैं, जबकि गणित व विज्ञान से सम्बन्धित क्रियाएँ, मशीन का काम और कठोर परिश्रम व शारीरिक दृढ़ता के ऐसे ही अन्य काम पुरुषों को दिए जात हैं। यद्यपि इसका तात्पर्य यह नहीं है कि जिन कामों को स्त्रियाँ करती हैं उन्हें पुरुष सीख ही नहीं सकते या जिन कार्यों को पुरुष करते हैं, जिन्हें स्त्रियाँ सीख नहीं सकतीं। फिर भी लिंग पर आधारित स्त्री–पुरुष का भेद सामाजिक विभेदीकरण का महत्वपूर्ण स्वरूप है क्योंकि इसी के आधार पर अन्य अनेक सामाजिक विभेद भी उत्पन्न होते हैं।

1.3.1. ब्रिटिश कालीन लिंगभेद

ब्रिटिश काल से हमारा तात्पर्य 18 वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों से लेकर स्वतन्त्रता से पूर्व तक के समय से है। अंग्रेजी शासन काल में भारतीयों द्वारा समाज–सुधार के अनेक प्रयत्न किये गये लेकिन सरकार की ओर से लिंगभेद की स्थिति में सुधार करने के कोई भी व्यावहारिक प्रयत्न नहीं किये गये। अपने हितों को पूरा करने के लिए स्त्रियों का शोषित बने रहना अंग्रेजों के लिए भी लाभप्रद था। इसका परिणाम यह हुआ कि 20 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक स्त्रियों की निर्योग्यताओं में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। निम्नांकित क्षेत्रों में स्त्रियों की निर्योग्ताओं के आधार पर इस काल में उनकी दयनीय स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है :

- सामाजिक क्षेत्र में स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने, स्वतन्त्र रूप से अपने अधिकारों की माँग करने और व्यवहार के नियमों में किसी प्रकार का भी परिवर्तन करने का अधिकार नहीं था। स्त्रियों में अज्ञानता इस सीमा तक बढ़ गयी कि स्वतन्त्रता के पहले तक स्त्रियों में साक्षरता का प्रतिशत 6 से भी कम था। यह शिक्षा भी केवल कामचलाऊ ही थी। किसी भी स्त्री द्वारा बाल–विवाह अथवा पर्दा–प्रथा का विरोध करना उसके चरित्र के लिए एक कलंक समझा जाता था। स्त्री के सम्बन्ध उसके माता–पिता के परिवार तक सीमित थे तथा परम्परागत धार्मिक दायित्वों का निर्वाह करना ही उनके मनोरंजन का एकमात्र साधन था।
- पारिवारिक क्षेत्र में स्त्रियों के समस्त अधिकार समाप्त हो गये। सैद्धान्तिक रूप से स्त्री परिवार के सभी कार्यों की संचालिका थी लेकिन व्यवहार में यह सभी अधिकार परिवार के 'पुरुष कर्ता' को प्राप्त हो गये। स्त्री का विवाह बहुत छोटी आयु में ही हो जाने के कारण उसका जीवन

आरम्भ में ही परम्परागत निषेधों और रूढ़ियों से युक्त हो गया। वैदिक काल की 'साम्राज्ञी' सब सास की सेविका बन गयी। परिवार में स्त्री का एकमात्र कार्य बच्चों को जन्म देना और पति के सभी सम्बन्धियों की सेवा करना रह गया। परिवार में दहेज की मात्रा, सदस्यों की सेवा और धार्मिक कार्यों को लेकर स्त्री का शोषण एक बहुत सामान्य–सी बात हो गयी। सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह था कि स्त्रियाँ स्वयं भी इस अत्याचार को अपने पूर्व जन्म के कर्म का फल मानकर इससे सन्तुष्ट रहती थीं। इससे उनकी स्थिति में निरन्तर ह्रास होता गया।

- आर्थिक क्षेत्र में स्त्रियों की निर्योग्यताएँ सबसे अधिक थीं। उन्हें संयुक्त परिवार की सम्पत्ति में हिस्सा प्राप्त करने से ही वंचित नहीं रखा गया बल्कि स्त्रियों को अपने पिता की सम्पत्ति में भी हिस्सा प्राप्त करने का कोई अधिकार नहीं था। स्त्री स्वयं 'सम्पत्ति' बन चुकी थी, फिर उसे सम्पत्ति के अधिकार किस तरह प्रदान किये जा सकते थे? स्त्रियों के द्वारा कोई आर्थिक क्रिया करना एक अनैतिक कार्य के रूप में देखा जाने लगा। हमारे समाज का इससे बड़ा दिवालियापन और क्या हो सकता है कि एक स्त्री भूख और प्यास से चाहे कितनी ही संतप्त हो लेकिन कोई आर्थिक क्रिया करना उसकी कुलीनता और स्त्रीत्व के विरुद्ध मान लिया गया। इन आर्थिक निर्योग्यताओं का ही परिणाम था कि स्त्री को बड़े अमानवीय व्यवहार के बाद भी पुरुषों की दया पर ही निर्भर रहना पड़ता था। आत्महत्या इस निर्भरता का एकमात्र समाधान रह गया।
- राजनीतिक क्षेत्र में स्त्रियों द्वारा हिस्सा लेने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था। जब घर के अन्दर स्त्रियों पर मनमाना शोषण करने वाला पुरुष घर से बाहर अंग्रेजों का गुलाम था तो स्त्रियों द्वारा राजनीति में भाग लेने की कल्पना भी कैसे की जा सकती थी? यद्यपि 1919 के बाद स्त्रियों को मताधिकार देने के प्रयत्न किये गये लेकिन इसमें कोई व्यवहारिक सफलता नहीं मिल सकी। सन् 1937 के चुनाव में पति की शिक्षा और सम्पत्ति के आधार पर बहुत थोड़ी–सी स्त्रियों को मताधिकार प्रदान किया गया। वास्तव में स्त्रियों की सम्पूर्ण राजनीतिक चेतना अपने घर की चहारदीवारी के अन्दर ही बन्द थी। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में सन् 1919 के पश्चात् कुछ स्त्रियों ने राजनीति में भाग अवश्य लिया लेकिन कुलीन परिवार इसका सदैव विरोध करते रहे।

1.3.2. लिंगभेद के कारण

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन से स्पष्ट होता है कि यद्यपि वैदिक संस्कृति में स्थिति अत्यधिक उच्च थी लेकिन ईसा के लगभग 300 वर्ष पहले से उनके अधिकार कम होना आरम्भ हो गये और बाद में अनेक परिस्थितियों के कारण स्त्रियों की सामाजिक स्थिति 'दासता' के स्तर तक पहुँच गयी। स्त्रियों की स्थिति के इस कल्पनातीत ह्रास को निम्नांकित प्रमुख कारकों के आधार पर समझा जा सकता है :

- **अशिक्षा–** कुछ विद्वान हिन्दू वर्ण–व्यवस्था और कर्मकाण्डों की जटिलता को लिंगभेद का कारण मानते हैं लेकिन वास्तविकता यह है कि यदि स्त्रियाँ शिक्षित होतीं, तब न तो उन्होंने पक्षपातपूर्ण धार्मिक विधानों को स्वीकार किया होता और न ही वे अपने अधिकारों से वंचित हो पातीं। शिक्षा के अभाव में स्त्रियों का जीवन अपने परिवार तक ही सीमित हो गया। उनकी एकमात्र शिक्षा पिता और पति द्वारा मिलने वाले स्वार्थपूर्ण धार्मिक उपदेश थे। इन रूढ़िगत उपदेशों द्वारा स्त्री को अपना स्वतन्त्र अस्तित्व भूल जाने के लिए बाध्य किया गया और पति तथा पुत्र की सेवा करना ही उसका एकमात्र धर्म निर्धारित कर दिया गया। इसके फलस्वरूप सामाजिक व्यवस्था एकपक्षीय हो गयी जिसमें पुरुषों के अधिकार निरन्तर बढ़ते गये और स्त्रियों की स्थिति निम्नतम हो गयी। जिन

स्त्रियों ने कुछ शिक्षा ग्रहण की थी, वे इसका उपयोग तथाकथित धर्मशास्त्रों को पढ़ने में करने लगीं क्योंकि उस समय स्त्रियों द्वारा सतियों और पतिव्रत धर्म की कथाएँ पढ़ना ही नैतिकता की कसौटी मानी जाती थी। अशिक्षा के कारण स्त्रियाँ अपनी इस स्थिति को ही समाज का धर्म समझने लगीं और यही रूढ़िगत आदर्श माता द्वारा अपनी पुत्री निरन्तर हस्तान्तरित होने लगे। अशिक्षा के कारण धर्म के वास्तविक रूप को कभी समझा ही नहीं जा सका।

- **कन्यादान का आदर्श–** हिन्दू संस्कृति में 'कन्यादान' के आदर्श का प्रचलन वैदिक काल से ही रहा है लेकिन उस समय सामाजिक व्यवस्थाओं का रूप अत्यधिक परिष्कृत होने के कारण इस आदर्श का दुरुपयोग नहीं किया गया। कन्यादान का आदर्श वास्तव में कन्या के लिए योग्य वर ढूँढ़ने से सम्बन्धित था क्योंकि 'दान किसी सुपात्र को ही दिया जा सकता है।' इसी भावना के आधार पर वर के चुनाव में स्त्री को पूर्ण स्वतन्त्रतादी जाती थी। स्मृतिकाल के बाद के कन्यादान की विवेचना इस प्रकार की जाने लगी जैसे कन्या एक 'वस्तु' हो। इस आधार पर यह विश्वास किया जाने लगा कि जो वस्तु एक बार दान कर दी जाती है, उसे न तो वापस लिया जा सकता है और न ही पुनः दान में दिया जा सकता है। दान प्राप्त करने वाला व्यक्ति इसका किसी भी प्रकार अपनी इच्छानुसार उपयोग कर सकता है। इसका अन्तिम परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक पुरुष सुपात्र बन गया और प्रत्येक स्त्री दान में दी जाने वाली एक निर्जीव वस्तु हो गयी। इस प्रकार कन्यादान सम्बन्धी विश्वास स्त्रियों के अधिकारों को समाप्त करने वाला एक प्रमुख कारक बन गया।
- **पुरुषों पर आर्थिक निर्भरता–** उत्तर वैदिक काल के पश्चात् से स्त्रियों के सम्पत्ति अधिकार समाप्त हो जाने के कारण वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पूर्णतया पुरुषों पर निर्भर हो गयीं। ऐसी स्थिति में परिवार के सदस्यों द्वारा शोषण होने पर भी वे परिवार की सदस्यता को नहीं छोड़ सकतीं थीं। अशिक्षा के कारण स्वतन्त्र रूप से कोई आर्थिक क्रिया करना भी उनके लिए सम्भव नहीं रह गया। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि स्त्रियों पर पुरुषों का एकाधिकार निरन्तर बढ़ता गया। इस आर्थिक कारक का महत्व इसी तथ्य से स्पष्ट होता है कि उच्च जातियों की अपेक्षा निम्न जातियों में स्त्रियों सामाजिक स्थिति में कभी इतना ह्रास नहीं हुआ क्योंकि वे आर्थिक रूप से पुरुषों की दया पर इतना अधिक निर्भर नहीं रही है। आर्थिक निर्भरता ही व्यक्ति का सब कुछ सह लेने के लिए बाध्य कर देती है। निर्भरता की स्थिति में अधिकारों की माँग करने का तो प्रश्न ही नहीं उठ सकता।
- **संयुक्त परिवार व्यवस्था–** संयुक्त परिवार का ढाँचा इस प्रकार का है कि स्त्रियों को स्वतन्त्रता और सम्पत्ति–अधिकार देकर इसे किसी प्रकार भी सुरक्षित नहीं रखा जा सकता। इसके फलस्वरूप संयुक्त परिवारों ने अनेक गाथाओं और तथाकथित धार्मिक आदर्शो के आधार पर स्त्रियों को यह विश्वास दिलाया कि पति के क्रोधी, पापी और दुराचारी होने पर भी उसकी देवता के रूप में पूजा करना स्त्री का परम धर्म है। संयुक्त परिवार के पुरुष शासकों को सम्भवतः यह भय था कि स्त्रियों में चेतना का विकास होने से परिवार में उनका शासन समाप्त हो जायेगा। इस आशंका को समाप्त करने के लिए भी स्त्रियों को सभी अधिकारों से वंचित करके उनका मनमाना शोषण किया जाता रहा। इस प्रकार अनेक क्षेत्रों में संयुक्त परिवार एक गुणकारी संस्था होते हुए भी स्त्रियों की स्थिति को गिराने में अत्यधिक सक्रिय रहे हैं।
- **बाल–विवाह–** बाल–विवाह भी लिंगभेद का एक प्रमुख कारण है। छोटी आयु में ही विवाह हो जाने के कारण स्त्रियाँ न तो शिक्षा प्राप्त कर सकती थीं और न ही समाज की मौलिक संस्कृति को समझकर अपने अधिकारों की माँग कर सकती थीं। अल्पायु से उन्हें पति की उचित और अनुचित

आज्ञाओं का पालन करने की सीख मिलने के कारण यही उनका पर्यावरण बन गया। जब तक उनकी बुद्धि परिपक्व हो, तब तक अनेक बच्चों की माँ बन जाने के कारण वे अपने को पूरी तरह असमर्थ और संयुक्त परिवार पर आश्रित पाती थीं। आज भी बहुत–से व्यक्ति बाल–विवाह का समर्थन इसलिए करते हैं जिससे नव–विवाहित स्त्रियों को सभी प्रकार के नियन्त्रण में रहने के योग्य बनया जा सके। उनके लिए स्त्रियों की चेतना और अधिकारों का आज भी कोई मूल्य नहीं है।

- **वैवाहिक कुरीतियाँ–** अनेक वैवाहिक कुप्रथाओं, जैसे अन्तर्विवाह, कुलीन विवाह, विधवा–विवाह पर नियन्त्रण और दहेज–प्रथा आदि ने भी लिंगभेद बनाने में काफी योग दिया है। इन प्रथाओं के कारण समाज और परिवार में स्त्रियों को एक भार के रूप में समझा जाने लगा। माता–पिता के सामने एक ही समस्या थी कि किसी प्रकार उनकी पुत्री का विवाह हो जाये। योग्य वर का चुनाव करने का कुछ भी महत्व नहीं रह गया। इस परिस्थिति में वर–पक्ष के व्यक्ति स्त्री को एक 'लाभप्रद वस्तु' के रूप में देखने लगे जिसके आने का एक–मात्र लाभ अनेक उपहारों को प्राप्त करना था। अधिक से अधिक उपहार प्राप्त करने के लिए प्रत्येक त्यौहार और संस्कार के समय कन्या–पक्ष के लिए यह आवश्यक कर दिया गया कि वह वर–पक्ष को कुछ धन और वस्तुएँ भेंट करें। इस प्रकार प्रत्येक माता–पिता के लिए कन्या का जीवन एक आर्थिक–भार बन जाने के कारण स्त्रियों की सामाजिक स्थिति निरन्तर गिरती गयी।

1.3.3. लिंगभेद सुधार आन्दोलन

स्वार्थ, शोषण और अन्याय जब अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाते हैं, तब उनके विरुद्ध प्रतिक्रिया भी अवश्य होती है। हिन्दू समाज में भी 19 वीं शताब्दी के आरम्भ से स्त्री शोषण के विरुद्ध होने वाला आन्दोलन इसी प्रतिक्रिया को स्पष्ट करता है। यद्यपि सन् 1813 में सर्वप्रथम ईस्ट इण्डिया कम्पनी को ब्रिटिश पार्लियामेंट की ओर से यह आदेश दिया गया था कि वह सभी वर्गों में शिक्षा का प्रसार करे लेकिन ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने स्त्री शिक्षा को भारतीय मनोवृत्तियों के विरुद्ध कहकर इसे कोई महत्व नहीं दिया। इसके पश्चात् अनेक प्रगतिशील भारतीयों ने स्त्रियों की स्थिति में सुधार करने के प्रयत्न किये लेकिन वह सभी प्रयत्न व्यक्तिगत स्तर पर ही थे, इन्हें सरकार की ओर से संरक्षण नहीं मिल सका।

सर्वप्रथम राजा राममोहन राय (1772–1833) ने सन् 1828 में ब्रह्म समाज की स्थापना करके सती–प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन किया जिसके फलस्वरूप सन् 1829 में इस प्रथा को कानून के द्वारा समाप्त कर दिया गया। इसके अतिरिक्त स्त्रियों को सम्पत्ति अधिकार देने, बाल–विवाहों को समाप्त करने और स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार करने के क्षेत्र में भी राजा राममोहन राय ने महत्वपूर्ण कार्य किये। सच तो यह है कि आपके ही प्रयत्नों से समाज–सुधार आन्दोलन का मार्ग प्रशस्त हो सका। महर्षि दयानन्द ने सबसे पहले सन् 1875 में मुम्बई में आर्य समाज की स्थापना करके हिन्दू–समाज को वैदिक आदर्शों की ओर ले जाने का प्रयत्न किया। आप स्मृतियों और रूढ़िवादी हिन्दू–धर्म के कटु आलोचक थे। उत्तर भारत में स्त्री शिक्षा का प्रसार करने तथा पर्दा–प्रथा और बाल–विवाह का विरोध करने में इस संस्था का योगदान सबसे अधिक रहा है। ईश्वरचन्द विद्यासागर महर्षि दयानन्द के ही समकालीन समाज सुधारक थे। आपने यद्यपि किसी सम्प्रदाय की स्थापना नहीं की लेकिन व्यक्तिगत स्तर पर आपके प्रयत्नों से स्त्रियों की स्थिति में काफी सुधार हुआ। आपने स्त्रियों की स्थिति में सुधार करने के लिए विधवा–विवाह और बहुपत्नी विवाह सम्बन्धी परम्परागत नियमों का व्यापक विरोध किया तथा स्त्री–शिक्षा को सर्वाधिक महत्व दिया। श्री ईश्वरचन्द की व्यावहारिकता का इससे अच्छा प्रमाण और क्या हो सकता है कि आपने अपने लड़के तक का विवाह एक विधवा स्त्री से कर दिया जिसकी

उस समय कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। इन्हीं प्रयत्नों से सन् 1856 में 'विधवा विवाह कानून' पास हो सका। श्री ईश्वरचन्द के द्वारा किये गये एक सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि उस समय 69 वर्ष के एक ब्राह्मण की 80 पत्नियाँ थीं जिनमें सबसे छाटी पत्नी की आयु केवल 17 वर्ष थी। कुलीनता की विषम समस्या को समाप्त करने के लिए भी आपने एक स्वस्थ जनमत का निर्माण करने में महत्वपूर्ण कार्य किया। स्त्री शिक्षा के प्रति आपकी जागरूकता इसी तथ्य से स्पष्ट हो जाती है कि सन् 1855 और 1858 के बीच ही आपने बहुत–से कन्या विद्यालय खोलकर स्त्रियों में अपने अधिकार के प्रति जागरूकता उत्पन्न की। पूना में प्रो. कर्वे ने अनेक विधवा आश्रम खोलकर स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार करना आरम्भ कर दिया। इसी शताब्दी में अनेक प्रगतिशील महिलाओं, जैसे– दुर्गाबाई देशमुख, रमाबाई और रूखमाबाई ने भी पुरानी रूढ़ियों की चिन्ता न करते हुए स्त्रियों को अपने अधिकार माँगने और समाज में एक सम्मानपूर्ण पद प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया।

बीसवीं शताब्दी में होने वाले इस सुधार–आन्दोलन को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है– (क) महात्मा गाँधी द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्तर्गत सुधार प्रयत्न, (ख) स्त्री संगठनों द्वारा सुधार कार्य, तथा (ग) संवैधानिक व्यवस्थाएँ।

महात्मा गाँधी ने सर्वप्रथम संगठित आधार पर स्त्रियों के अधिकारों के औचित्य को स्पष्ट किया। उन्होंने स्त्रियों की स्थिति सम्बन्धी सुधार कार्य को अपने राष्ट्रीय आन्दोलन का एक प्रमुख अंग बना लिया। राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना के बाद प्रत्येक वर्ष स्त्रियों की स्थिति में सुधार करने से सम्बन्धित प्रस्ताव ब्रिटिश सरकार को भेजकर उन्होंने सरकार का ध्यान इस समस्या की ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया। इन प्रस्तावों में विशेष रूप में स्त्री शिक्षा के प्रसार, दहेज और कुलीन विवाह प्रथा पर नियन्त्रण, अन्तर्जातीय विवाह के प्रसार तथा बाल–विवाह की कानून द्वारा समाप्ति पर विशेष जोर दिया गया। राष्ट्रपिता गाँधी ने स्त्रियों की निद्रा को तोड़कर उन्हें राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जिसके फलस्वरूप पहली बार लाखों स्त्रियाँ घर की चहारदीवारी से निकलकर स्वतन्त्रता आन्दोलन में कूद पड़ीं। उन्होंने पहली बार अपनी शक्ति और सामर्थ्य को पहचाना। इससे स्त्रियों में एक नवीन चेतना का विकास हुआ और यही चेतना बाद में उनकी प्रगति का आधार बन गयी।

अनेक स्त्री संगठनों ने भी स्त्रियों में जागरूकता उत्पन्न करने के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। यद्यपि सन् 1875 में 'भारतीय महिला राष्ट्रीय परिषद्' की स्थापना हो जाने से महिलाओं को संगठित हो जाने का अवसर अवश्य मिल गया लेकिन सर्वप्रथम श्री रानाडे और डॉ. ऐनी बेसेण्ट के प्रयत्नों से समस्त महिला संगठनों को एकजुट होकर सुधार कार्य करने की वास्तविक प्रेरणा मिली। इसके फलस्वरूप 1929 में विभिन्न महिला संगठनों ने एक होकर 'अखिल भारतीय महिला सम्मेलन' (All India Women's Conference) का आयोजन किया। पूना में इसके प्रथम अधिवेशन के समय स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार देने पर बल दिया गया और एक प्रस्ताव के द्वारा सरकार से माँग की गई कि सम्पत्ति, विवाह और नागरिकता सम्बन्धी स्त्रियों की परम्परागत निर्योग्यताएँ कानून के द्वारा समाप्त की जायें। स्त्रियों को शिक्षा देने के दृष्टिकोण से दिल्ली में 'लेडी इरविन कॉलेज' की स्थापना भी संस्था के द्वारा की गई। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक महिला संघों ने भी स्त्रियों में जागरूकता उत्पन्न करने तथा उन्हें रूढ़िगत जीवन से बाहर निकलकर संगठित रूप से कार्य करने को प्रोत्साहन दिया। ऐसे संगठनों में 'विश्वविद्यालय महिला संघ' (Federation fo University Women), 'भारतीय ईसाई महिला मण्डल' (Young Women's Christian Asssociation of India), 'अखिल भारतीय स्त्री–शिक्षा संस्था' (All India Women's Education Fund Association) तथा

'कस्तूरबा गाँधी राष्ट्रीय स्मारक ट्रस्ट' (Kasturba Gandhi National Memorial Trust) आदि के नाम से विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

लिंगभेद के सुधार–आन्दोलन का सुखद परिणाम आज हमारे सामने है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् ही सन 1948 में सरकार के सामने हिन्दू कोड बिल प्रस्तुत किया गया लेकिन अनेक रूढ़िवादी तत्वों ने इसे नवीन संविधान निर्माण होने की अवधि तक टालने में सफलता प्राप्त कर ली। 1950 में नवीन संविधान के अन्तर्गत पुरुषों और स्त्रियों को समानता के अधिकार दिये गये लेकिन 'हिन्दू कोड बिल' की स्वीकृति को पुनः यह कहकर टाल दिया गया, कि 1952 में जनता द्वारा चुने गये प्रतिनिधियों द्वारा ही इस प्रकार कोई निर्णय लेना उचित होगा। सन् 1952 में जब इसे पुनः नव–निर्वाचित लोकसभा में प्रस्तुत किया गया तब अनेक राजनीतिक दलों ने अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए उन स्त्रियों को ही इसके विरोध में लाकर खड़ा कर दिया जिनकी स्थिति में सुधार करने के लिए इसे प्रस्तुत किया जा रहा था। इसके पश्चात् भी भारत में समाज–सुधार की आवश्यकता को देखते हुए इस बिल को अनेक खण्डों में विभाजित करके पास करना आरम्भ कर दिया गया। इसके फलस्वरूप धीरे–धीरे स्त्रियों की सभी परम्परागत निर्योग्यताएँ समाप्त हो गयीं और उन्हें विवाह, सम्पत्ति, संरक्षता और विवाह–विच्छेद के क्षेत्र में पुरुषों के सामने अधिकार प्राप्त करने तथा सामाजिक रूढ़ियों से छुटकारा पाने का अवसर प्राप्त हुआ। ऐसे अधिनियमों में 'हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955', 'हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956', 'हिन्दू नाबालिग और संरक्षता अधिनियम, 1956', 'हिन्दू दत्तकग्रहण और भरण–पोषण अधिनियम, 1956', 'विशेष विवाह अधिनियम, 1954' तथा 'दहेज निरोधक अधिनियम, 1961' आदि प्रमुख हैं।

1.3.4. स्वतन्त्रता पश्चात् लिंगभेद की स्थिति

भारत में स्वतन्त्रता के पश्चात् लिंगभेद की स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। यद्यपि पिछली एक शताब्दी में ही लिंगभेद की स्थिति में सुधार करने के लिए महत्वपूर्ण प्रयत्न होते रहे हैं लेकिन स्वतन्त्रता के पश्चात् लिंगभेद की सामाजिक–आर्थिक स्थिति में जो परिवर्तन हुआ है, उसकी सम्पूर्ण विश्व कल्पना तक नहीं कर सकता था। डॉ. श्रीनिवास ने पश्चिमीकरण, लौकिकीकरण (secularisation) और जातीय गतिशीलता (caste mobility) को इन परिवर्तनों का प्रमुख कारण माना है।[1] इसके अतिरिक्त स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार होने तथा औद्योगीकरण के फलस्वरूप भी उन्हें आर्थिक जीवन में प्रवेश करने के अवसर प्राप्त हुए। इससे स्त्रियों की पुरुषों पर आर्थिक निर्भरता कम होने लगी और उन्हें स्वतन्त्र रूप से अपने व्यक्तित्व का विकास करने के अवसर मिले। संचार के साधनों, समाचार–पत्रों और पत्रिकाओं में वृद्धि होने से स्त्रियों ने अपने विचारो को अभिव्यक्त करना आरम्भ किया। संयुक्त परिवारों का विघटन होने से स्त्रियों के पारिवारिक अधिकारों में वृद्धि हुई और सामाजिक अधिनियमों के प्रभाव से एक ऐसे सामाजिक वातारण का निर्माण हुआ जिसमें बाल–विवाह, दहेज–प्रथा और अन्तर्जातीय विवाह की समस्याओं से छुटकारा पाना सरल हो गया। इस सभी कारकों के संयुक्त प्रभाव से लिंगभेद की स्थिति में जो परिवर्तन हुए हैं, उन्हें निम्नांकित क्षेत्रों में स्पष्ट किया जा सकता है :

शिक्षा की प्रगति– शिक्षा के क्षेत्र में स्त्रियाँ इतनी तेजी से आगे बढ़ रही हैं कि 30 वर्ष पूर्व इसकी कल्पना तक नहीं की जा सकती थी। स्वतन्त्रता से पहले तक लड़कियों के लिए न तो शिक्षा सम्बन्धी समुचित सुविधाएँ प्राप्त थीं और न ही माता–पिता स्त्री–शिक्षा को उचित समझते थे। स्वतन्त्रता के पश्चात् स्त्री–शिक्षा में व्यापक प्रगति हुई। इस तथ्य को इसी बात से समझा जा सकता है कि सन्

1882 में भारत में ऐसे केवल 2,054 स्त्रियाँ थीं जो कुछ लिख–पढ़ सकती थीं जबकि 2001 की जनगणना के समय तक साक्षर स्त्रियों की संख्या बढ़कर 27 करोड़ से भी अधिक हो गयी। सन् 1883 में जहाँ पहली बार एक स्त्री ने बी.ए. पास किया, वहीं आज 7.5 लाख से भी अधिक लड़कियाँ विभिन्न विश्वविद्यालयों में स्नातक और स्नातकोत्तर कक्षाओं में पढ़ रही हैं। लड़कियों के लिए आज कला और विज्ञान के अतिरिक्त गृहविज्ञान, हस्तकला, शिल्पकला और संगीत की शिक्षा प्राप्त करने की भी सुविधाएँ प्राप्त है। मेडिकल तथा इंजीनियरिंग कॉलेजों में लड़कियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। शिक्षा के प्रसार के कारण स्त्रियों को बाल–विवाह और पर्दा–प्रथा से छुटकारा मिला ही है, साथ ही उन्होंने समाज–कल्याण और महिला–कल्याण में भी व्यापक रूचि लेना आदि कर दिया है। विश्वविद्यालयों तथा प्रतियोगी परीक्षाओं में सर्वाधिक अंक प्राप्त करके स्त्रियों ने यह सिद्ध कर दिया है कि उनका मानसिक स्तर पुरुषों से किसी प्रकार भी नीचा नहीं है। स्त्री–शिक्षा की इस प्रगति को देखते हुए श्री पणिक्कर ने यह निष्कर्ष दिया है कि ''स्त्री–शिक्षा ने विद्रोह की इस कुल्हाड़ी की धार तेज कर दी है जिससे हिन्दू सामाजिक जीवन की जंगली झाड़ियों को साफ करना सम्भव हो गया है।''[1]

आर्थिक जीवन में बढ़ती हुई स्वतन्त्रता– स्वतन्त्रता के पश्चात् शिक्षा, औद्यागीकरण और नवीन विचारधारा के कारण स्त्रियों की पुरुषों पर आर्थिक निर्भरता लगातार कम होती जा रही है। स्वतन्त्रता से पहले यद्यपि निम्न वर्ग की बहुत–सी स्त्रियाँ उद्योगों और घरेलू कार्यों के द्वारा जीविका उपार्जित करती थीं लेकिन मध्यम और उच्च वर्ग की स्त्रियों द्वारा कोई आर्थिक क्रिया करना अनैतिकता के रूप में देखा जाता है। स्वतन्त्रता के पश्चात् एक बड़ी संख्या में मध्यम वर्ग की स्त्रियों ने शिक्षा प्राप्त करके आर्थिक क्षेत्र की ओर बढ़ना आरम्भ कर दिया। आज शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, समाज–कल्याण, मनोरंजन, उद्योगों और कार्यालयों में स्त्री कर्मचारियों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। स्वतन्त्र रूप से जीविका उपार्जित करने वाली स्त्रियाँ आज अन्य स्त्रियों के लिए एक आकर्षण हैं और आर्थिक स्वतन्त्रता के कारण परिवार में उनके महत्व को देखकर अन्य स्त्रियों को भी आर्थिक जीवन में प्रवेश करने का प्रोत्साहन मिला है। वास्तविकता तो यह है कि स्त्रियों को आर्थिक स्वतन्त्रता मिल जाने के कारण उनके आत्मविश्वास, कार्यक्षमता और मानसिक स्तर में इतनी प्रगति हुई है कि उनके व्यक्तित्व की तुलना उस स्त्री से किसी प्रकार नहीं की जा सकती जो आज से कुछ ही वर्ष पहले तक संसार की सम्पूर्ण लज्जा को अपने घूँघट में समेटे हुए और पुरुष के शोषण को सहन करती हुई घूँघट में ही अपना जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य थी।

पारिवारिक अधिकारों में वृद्धि– परिवारों में लिंगभेद की स्थिति में आज महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। आज की स्त्री पुरुष की दासी नहीं बल्कि उसकी सहयोगी और मित्र है। परिवार में उसकी स्थिति एक याचिका की न हो बल्कि प्रबन्धक की है। आज की शिक्षित स्त्री संयुक्त परिवार में अपने समस्त अधिकारों का बलिदान करके शोषण में रहने के लिए तैयार नहीं है बल्कि वह एक स्वतन्त्र एकाकी परिवार की स्थापना करके अपने अधिकारों का पूर्ण उपयोग, संस्कारों का प्रबन्ध और पारिवारिक योजनाओं के रूप का निर्धारण करने में स्त्री की इच्छा का महत्व निरन्तर बढ़ता जा रहा है। अनेक स्त्रियाँ तो अपने पारिवारिक अधिकारों के लिए अन्तर्जातीय और प्रेम विवाह को भी प्राथमिकता देने लगी हैं। विलम्ब विवाह (late marriage) स्त्रियों में निरन्तर लोकप्रिय होता जा रहा है। कुछ व्यक्ति परिवार में स्त्रियों के बढ़ते हुए अधिकारों से इतने चिन्तित हो उठे हैं कि उन्हें पारिवारिक जीवन के विघटित हो जाने का भय हो गया है, जबकि वास्तविकता यह है कि उनकी यह चिन्ता

अपने एकाधिकार में होती हुई कमी के कारण ही उत्पन्न हुई है। आज की नयी पीढ़ी तो स्वयं स्त्रियों को उनके पारिवारिक अधिकार देने के पक्ष में है और यदि किसी कारण उन्हें इन अधिकारों से वंचित रखा भी गया, तब आने वाले समय में वे इन्हें अपनी शक्ति से स्वयं ही प्राप्त कर लेंगी।

राजनीनिक चेतना में वृद्धि– राजनीतिक क्षेत्र में स्त्रियों की स्थिति जिस गति से ऊँची उठ रही है, वह वास्तव में एक आश्चर्य का विषय है। सन् 1937 के चुनाव में स्त्रियों के लिए 41 सीटें सुरक्षित होने पर केवल 10 स्त्रियाँ ही चुनाव के लिए सामने आयी थीं जबकि आज केवल राज्य सभा और लोक सभा में स्त्री–सदस्य की संख्या 62 तक पहुँच चुकी है।[2] भारत में अनेक राज्यों में स्त्रियों का मुख्यमन्त्री बनना सम्पूर्ण संसार के लिए आश्चर्य की बात थी। सन् 1984 में स्वर्गीय इन्दिरा गाँधी ने जिस तरह के साहसपूर्ण निर्णय लेकर विदेशी चुनौतियों का सामना किया, उससे तथाकथित सभ्य समाजों की स्त्रियाँ जैसे हतप्रभ रह गयीं। उन्हें पहली बार यह महसूस हुआ कि उनकी राजनीतिक जागरूकता अभी बहुत पीछे है। श्री पणिक्कर का कथन है कि ''जब स्वतन्त्रता ने पहली अँगड़ाई ली तब भारत के राजनीतिक जीवन में स्त्रियों को पद प्राप्त हुआ, उसे देखकर बाहरी दुनिया चौंक पड़ी क्योंकि वह तो हिन्दू स्त्रियों को पिछड़ी हुई, अशिक्षित और प्रति क्रियावादी सामाजिक व्यवस्था में जकड़ी हुई समझने की अभ्यस्त थी।''[3] स्त्रियों ने अपनी राजनीतिक शक्ति का पूर्ण सदुपयोग करके मध्य–काल की रूढ़ियों को समाप्त करने तथा स्त्रियों को प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए प्रशंसनीय कार्य किये हैं।

सामाजिक जागरूकता– हिन्दू स्त्रियों का सामाजिक जीवन आज स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले के समय से बिल्कुल भिन्न है। जिन परिवारों में कुछ ही वर्ष पहले तक स्त्रियों के लिए पर्दे में रहना अनिवार्य था, उन्हीं परिवारों की स्त्रियाँ आज खुली हवा में साँस ले रही हैं। जिन रूढ़ियों को स्त्रियों ने ही अपनी अज्ञानता के कारण अपने जीवन का 'आदर्श' बना रखा था, उन रूढ़ियों के प्रति स्त्रियों की उदासीनता बराबर बढ़ती जा रही है। हिन्दू स्त्रियाँ आज अनेक प्रगतिशील संघों की स्थापना कर रही हैं और ऐसे संगठनों की सदस्यता दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। पणिक्कर के अनुसार, ''कुछ मेधावी स्त्रियों ने जो उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की है, वह भारत के लिए उतने महत्व की बात नहीं है जितनी कि यह बात कि कट्टरपन्थी और पिछड़े समझे जाने वाले ग्रामीण व्यक्तियों के विचार भी करवट लेने लगे हैं। यहाँ स्त्रियाँ उन सामाजिक बन्धनों से बहुत कुछ मुक्त हो चुकी हैं जिन्होंने उन्हें रूढ़ियों और 'बाबावाक्यं प्रमाण' की विचारधारा के द्वारा जकड़ रखा था।''[1] निश्चित ही भारतीय स्त्रियों की स्थिति में होने वाले ये परिवर्तन सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं।

इन सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त सभी परिवर्तन प्रमुख रूप से लिंगभेद से ही सम्बन्धित हैं। ग्रामीण स्त्रियों के जीवन में कुछ सुधार अवश्य हुआ लेकिन अभी उनमें शिक्षा का बहुत अभाव होने के कारण वे परम्परागत रूढ़ियों के बन्धन को तोड़ने में अधिक सफल नहीं हो सकी हैं लेकिन यह भी सच है कि नगरीकरण की प्रक्रिया में वृद्धि होने से उनके विचारों में भी परिवर्तन होना आरम्भ हो चुका है। कुछ व्यक्ति आज भी स्त्रियों की स्थिति में होने वाले इन परिवर्तनों को उनका सुधार नहीं मानते। उनका विचार है कि स्त्रियों की समानता और स्वतन्त्रता का अधिकार मिलने से समाज में अन्तर्जातीय विवाह, विलम्ब विवाह, विवाह–विच्छेद, अनैतिकता और शिक्षित लड़कियों के विवाह की समस्या में वृद्धि हुई है। इससे समाज के विघटित हो जाने का डर है। यह भ्रमपूर्ण धारणा है। ये सभी परिस्थितियाँ पुरुषों के 'अहम्' के विरुद्ध हो सकती हैं लेकिन स्त्री–जाति का वास्तविक हित तो इन्हीं परिवर्तनों में निहित है।

वास्तविकता यह है कि ''वर्तमान समय में स्त्रियों द्वारा हिन्दू जीवन में सिद्धान्तों का पुनरीक्षण हिन्दू समाज के लिए सबसे बड़ी चुनौती है। समाज की बदलती हुई आवश्यकताओं के प्रति उनकी जागरूकता, धर्म की आड़ में उन्हें समस्त अधिकारों से वंचित कर देने वाले असन्तोषजनक आदर्शों के प्रति क्षोभ, शिक्षा से उत्पन्न होने वाली महत्वाकांक्षाएँ और राष्ट्रीय संघर्ष के समय विकसित होने वाले अनुभवों ने उन्हें हिन्दू जीवन के आदर्शों का पुनर्विवेचन करने की प्रेरणा दी है।'' जब भारतीय समाज के सबसे अधिक सहनशील और शान्ति–प्रिय स्त्री–वर्ग ने ही अपनी स्थिति में सुधार करने के लिए व्यापक अधिकारों की माँग करना आरम्भ कर दिया है, तब इस माँग को अब दबाया नहीं जा सकता। स्त्रियों में उत्पन्न होने वाली चेतना को देखते हुए यह आवश्यक हो गया है कि हिन्दू भविष्यवाणी की है कि ''स्त्रियों को सम्पत्ति और विवाह के क्षेत्र मिलने वाले अधिकार हिन्दू समाज में एक क्रान्ति उत्पन्न कर देंगे और उनके लिए एक ऐसी कानूनी संहिता, नयी नैतिकता और सामाजिक सम्पर्क के सिद्धान्तों की रचना करेंगे जिनके फलस्वरूप स्मृतिकारों की व्यवस्थाओं को स्थान नये विवेकपूर्ण शास्त्र ग्रहण कर लेंगे तथा धर्म की पोल में घुसी हुई प्रतिक्रियावादी रूढ़ियों और लोकाचारों को दूध में पड़ी मक्खी के समान निकालकर फेंक दिया जायेगा। इस प्रकार हिन्दू स्त्रियों ने सामाजिक समानता का जो दावा आज किया है, उसे देखते हुए यह न्यायपूर्वक कहा जा सकता है कि हिन्दू समाज का पुनर्जीवन इन न्यायसंगत अधिकारों को मान लेने से ही सम्भव है।''

1.4. जाति व्यवस्था

भारतीय जाति–प्रथा एक अत्यन्त जटिल संस्था है ; और प्रायः एक शताब्दी के परिश्रम और सावधानीपूर्वक अनुसन्धान के पश्चात् भी हम निश्चित रूप यह नहीं कह सकते कि यह अनोखी सामाजिक संस्था अपने निर्माण और विकास में किन–किन अवस्थाओं की देन रहीं है। परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इस संस्था के सम्बन्ध में विभिन्न दृष्टिकोणों से अध्ययन भी सबसे अधिक हुआ है। वेद, महाकाव्य, पुराण आदि के लेखकों से लेकर अनेक यूरोपीय और भारतीय विद्वानों तक ने इसके बारे में अध्ययन किए हैं।

निश्चित अर्थ में भारत जाति प्रथा का आगार है और यहाँ शायद ही कोई सामाजिक समूह ऐसा हो जो इसके प्रभाव से अपने को मुक्त रख सका हो। मुसलमान और ईसाई तक भी इसके पंजे में फँस चुके हैं; चाहे उसका स्वरूप ठीक वैसा न हो जैसा हिन्दुओं में है। दूसरी बात यह है कि प्रारम्भ में जाति–प्रथा इतनी जटिल न थी जितनी बाद में हुई। समय के परिवर्तन के साथ इसका स्वरूप भी परिवर्तित होता गया और अन्त में यह न केवल जटिल बल्कि विचित्र भी हो गई। आज भारत में लगभग 3,000 जातियाँ और उपजातियाँ हैं और उनके अध्ययन के लिए, जैसा हट्टन का कथन है, विशेषज्ञों की एक सेना की आवश्यकता होगी। यही कारण है कि असंख्य विद्वानों ने इस जाति–प्रथा के सम्बन्ध में अनेक गम्भीर विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। समाजशास्त्रियों और मानवशास्त्रियों ने इस जाति–प्रथा का विभिन्न दृष्टिकोणों से अध्ययन करने का प्रयत्न किया है। कुछ विद्वनों ने जाति–प्रथा की उत्पत्ति को समझाया है तो कुछ ने जाति–प्रथा की गतिशीलता की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए आधुनिक समय में जाति–प्रथा में होने वाले परिवर्तनों का विश्लेषण किया है। ऐसे भी अनेक विद्वान हैं जिन्होंने हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में जाति–प्रथा के महत्व या कार्यों का निरूपण किया है, फिर भी सम्पूर्ण भारतीय जाति–प्रथा का पूर्ण विश्लेषण व निरूपण पूर्ण रूप से आज भी प्रस्तुत किया जा रहा है या नहीं, इस विषय में अब भी सन्देह है। अतः इस अध्याय में हम जाति–प्रथा के सम्बन्ध में अधिक–से–अधिक एक विनम्र रूपरेखा ही प्रस्तुत कर सकेंगे।

1.4.1. ब्रिटिश कालीन जाति व्यवस्था

उपरोक्त तथ्यों में कुछ भी सत्यता नहीं है, यह कहना गलत होगा। हाँ, इतना कहा जा सकता है कि जाति–प्रथा अपने चरम स्तर पर जिस भाँति पूर्णतया जन्म पर आधारित थी और इसके नियत व निषेध जितने कठोर थे, वह रूप वर्ण–व्यवस्था के अन्तर्गत उतना कटु न था। जन्म के साथ–साथ कर्म और गुण का भी ध्यान रखा जाता था। कुछ विद्वान वर्ण–व्यवस्था के अन्तर्गत पाए जाने वाले अन्तर्जातीय विवाह, जाति–परिवर्तन आदि के दो–चार उदाहरण प्रस्तुत करके यह प्रमाणित करने का प्रयत्न करते हैं कि वर्ण–व्यवस्था वर्ग–व्यवस्था के ही समान थी और उसमें पूर्ण खुलापन (Openness) भी था। दस–पन्द्रह उदाहरण जो इस मत के पक्ष में प्रस्तुत किए जाते हैं, वे अपवाद (exceptions) भी हो सकते हैं और अपवाद सामान्य नियम कदापि नहीं हो सकता। स्मरण रहे कि अन्तर्जातीय विवाह या जाति–परिवर्तन के दस, पन्द्रह या बीस उदाहरण जाति–प्रथा के इतिहास के किसी भी युग में ढूँढ़े जा सकते हैं, चाहे वह भगवान् श्रीकृष्ण का युग हो या राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन का युग। इसका कारण भी स्पष्ट है। कोई भी सामाजिक व्यवस्था चाहे वह जाति–प्रथा हो या वर्ग–व्यवस्था (Class system), पूर्णतया बन्द या पूर्णतया खुली हो ही नहीं सकती है। पूर्णतया बन्द जाति–प्रथा भी भारत में कभी थी, इसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है। उसी प्रकार पूर्णतया खुली वर्ग–व्यवस्था दुनिया के किसी समाज में है यह सोचा भी नहीं जा सकता। अतः यदि यह मान भी लिया जाए कि वर्ण–व्यवस्था कर्म और गुण पर आधारित थी तो हम कह सकते हैं कि कर्म और गुण पर आधारित वर्ण–व्यवस्था का जन्म से कोई भी सम्बन्ध नहीं था। यह सोचना अवैज्ञानिक होगा और साथ ही जन्म पर आधारित जाति–प्रथा में आज गुण और कर्म का कोई भी महत्व नहीं है यह निष्कर्ष भी अनुचित और सत्यता से परे है।

कुछ भी हो, इतना तो स्वीकार करना ही होगा कि वर्ण–व्यवस्था ने समाज को विभिन्न समूहों में बाँट दिया था और इन समूहों में ऊँच–नीच का एक संस्तरण भी था। इस दृष्टिकोण से वर्ण–व्यवस्था जाति–प्रथा का एक प्रारम्भिक या प्राथमिक रूप था। इसी वर्ण–व्यवस्था के तत्त्वों के साथ जब विभिन्न प्रजातियों और संस्कृतियों का एक ओर मिलन और दूसरी ओर संघर्ष हुआ और रक्त की शुद्धता, धार्मिक पवित्रता व अपवित्रता आदि के विचारों को सामाजिक विभाजन में छढ़तापूर्वक लागू किया गया तो उसी वर्ण–व्यवस्था का स्वरूप दिन–प्रतिदिन बदलता रहा और काफी समय के पश्चात् ही भारतीय जाति–प्रथा के सभी लक्षण स्पष्ट हो सके। इस अर्थ में, भारतीय जाति–प्रथा का विकास हुआ है, जन्म या उत्पत्ति नहीं।

1.4.2. जाति–व्यवस्था में वर्तमान परिवर्तन व विघटन

अंग्रेजी राज्यकाल से लेकर अब तक पाश्चात्य शिक्षा और सभ्यता के प्रभाव से और साथ ही नई आर्थिक व्यवस्था, यातायात और संचार से साधनों में उन्नति, नगरों का प्रभाव, राजनीतिक और धार्मिक आन्दोलनों के फलस्वरूप जाति–प्रथा में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। प्रारम्भ में अंग्रेजों ने जाति–पाँति के मामले में हस्तक्षेप नहीं किया, परन्तु वारेन हेस्टिंग्ज महला गवर्नर जनरल था जिसने इस विषय को भी नहीं छोड़ा। सन् 1850 में 'जाति–अनर्हता उन्मूलन अधिनियम' (Caste Disabilities Removal Act, 1850) जाति–प्रथा के प्रभावों को रोकने के लिए सरकार का पहला कदम था। सन् 1829 में राजा राममोहन राय के प्रयत्नों से बंगाल में 'बंगाल सती नियम' (Bengal Sati Regulation, 1829) पारित हुआ था। सन् 1860 में बाल विवाह को रोकने के लिए सबसे पहला अधिनियम पारित किया गया, जिसमें लड़कियों के विवाह की आयु कम–से–कम 10 वर्ष रखी गई।

सन् 1872 के 'विशेष विवाह अधिनियम' (Special Marriage Act, 1872) के द्वारा अन्तर्जातीय विवाहों की अनुमति दे दी गई। सन् 1955 में 'हिन्दू विवाह अधिनियम' (The Hindu Marriage Act, 1955) पारित हुआ, जिसके अनुसार विवाह–सम्बन्धी अनेक प्रतिबन्ध उठा लिए गए।

1.4.3. स्वतन्त्रता पश्चात् जाति व्यवस्था का स्वरूप

स्वतन्त्र भारत के संविधान ने जाति–पाँति के भेद और छुआछूत को बिल्कुल ही समाप्त कर दिया, जिससे जाति–प्रथा के परम्परागत स्वरूप में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे हैं। इस सम्बन्ध में गाँधीजी के हरिजन आन्दोलन और काँग्रेस सरकार की नीति ने काफी योगदान दिया। शिक्षा और यातायात के साधनों में उन्नति, औद्योगीकरण और नगरीकरण ने पेशा, खाने–पीने और विवाह–सम्बन्धी सभी प्रबन्धों को अत्यधिक निर्बल कर दिया है। इस सम्बन्ध में उन कारकों की विस्तृत विवेचना आवश्यक है जिनके कारण आधुनिक युग में जाति–प्रथा निर्बल हो रही है और इसके स्वरूप में अनेक परिवर्तन हो रहे हैं।

1.4.4. स्वतन्त्रता पश्चात् जाति व्यवस्था का विघटन के कारण

जाति–प्रथा को निर्बल या विघटित करने वाल तत्व या जाति–प्रथा में आधुनिक परिवर्तन के कारक (Causes of Modern Changes in Caste System)

- **पाश्चात्य शिक्षा–** अंग्रेजों के आने से पहले भारत में शिक्षा का आधार मूल रूप से धार्मिक था और वह भी केवल ऊँची जातियों तक ही सीमित था। इससे जाति–प्रथा को बल ही मिलता रहा, परन्तु अंग्रेजों ने भारत में ऐसी शिक्षा का प्रचलन किया जो पूर्ण रूप से धर्म–निरपेक्ष थी और जिसके माध्यम से हमारा सम्पर्क दुनिया से बढ़ता ही गया। परिणामस्वरूप समानता, मित्रता और स्वतन्त्रता की विचारधाराएँ पनपीं और जाति–प्रथा दिन–प्रतिदिन निर्बल होती गई।

- **प्रोद्योगिक उन्नति–** औद्योगिक उन्नति के साथ ही अधिकाधिक नगरों का विकास हुआ तथा विविध प्रकार के व्यवसाय तथा अनेक मिल, कारखाने आदि स्थापित हो गए। इन मिल, कारखानों तथा दफ्तरों में सभी जाति के लोगों को एक साथ मिलकर काम करना होता है। इनमें जाति–प्रथा के अनुसार न तो श्रम–विभाजन या पेशों का विभाजन होता है और न ही ऐसा होना सम्भव है। इससे एक ओर छुआछूत की भावना और दूसरी ओर पेशा–सम्बन्धी प्रतिबन्ध दिन–प्रतिदिन दूर हटते जा रहे हैं। साथ ही नगरों की जनसंख्या की बहुलता के बीच, जहाँ न तो पड़ोसी, न परिवार, न पंचायत का दबाव होता है, जाति–प्रथा का शिथिल पड़ना स्वाभाविक ही है।

- **धन का महत्व–** आज जाति से कहीं ज्यादा धन का महत्व है। एक निर्धन ब्राह्मण से एक चर्मकार पूँजीपति या मन्त्री का सम्मान हीं अधिक है। आधुनिक युग में जन्म के आधार पर नहीं, धन या व्यक्तिगत गुणों और विशेषताओं के आधार पर सामाजिक पद और प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। इस कारण स्वभावतः ही हम जाति–प्रथा से दूर होते जाते हैं।

- **स्त्रियों की शिक्षा और अधिकार–** पहले बाल–विवाह के कारण स्त्रियों के व्यक्तित्व की जड़ ही कट जाती थी। पर्दा–प्रथा, विधवा–विवाह पर प्रतिबन्ध आदि प्रथाएँ भी व्यक्तित्व के विकास में भारी रुकावट थीं, परन्तु आज महिला आन्दोलन का विस्तृत रूप हमारे सामने है। वे आज शिक्षित हो रही हैं, पर्दे का त्याग हो रहा है, विधवाओं को पुनर्विवाह का अधिकार है, प्रत्येक क्षेत्र में उन्हें पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त हैं और पुरुषों के साथ ही वे आज प्रत्येक क्षेत्र में मिलकर काम कर रही हैं।

इससे देर से विवाह, अन्तर्जातीय विवाह और प्रेम–विवाह की ओर मनोवृत्ति बढ़ती जा रही है जो जाति–प्रथा को अति निर्बल करती है।

- **यातायात और संचार के साधनों में उन्नति–** यातायात के साधनों मे उन्नति होने से सामाजिक गतिशीलता ही नहीं बढ़ती, बल्कि नए–नए नगरों, उद्योगों, व्यवसायों, मिल और कारखानों की भी उत्पत्ति और विकास होता है। इससे विभिन्न प्रकार के जाति, धर्म, प्रदेश और देश के लोगों के साथ सम्पर्क स्थापित होता है और परस्पर विचार–विनिमय होता है। लोग दुनिया की पृष्ठभूमि पर आलोचना करते हैं, उनमें समानता की भावना जाग्रत होती है, उनकी संकुचित विचारधारा और दृष्टिकोण का अन्त होता है और उसी के साथ जाति–पाँति की कठोरता का भी। साथ ही ट्रेन, बस आदि मे सब जाति के लोगों का एक साथ यात्रा करना भी खाने–पीने के बन्धनों और छुआछूत से मुक्त करने में सहायक होता है।

- **प्रजातन्त्रीय सिद्धान्त और वैज्ञानिक ज्ञान–** आज प्रजातन्त्रीय सिद्धान्तों की लोकप्रियता दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। ये सिद्धान्त इस बात पर बल देते हैं कि जन्म और परिवार के आधार पर ऊँच–नीच का विभाजन उचित नहीं है। इससे जाति–प्रथा की असमानता और शोषण नीति को भारी धक्का पहुँचता है। साथ ही, विभिन्न प्रजाति, समूह आदि के सम्बन्ध में आधुनिक ज्ञान के आधार पर आज हमें यह विश्वास होता जा रहा है कि विभिन्न समूहों में ऊँच–नीच का भेद–भाव, शुद्धता–अशुद्धता की धारणा मनुष्य का अपना मनगढ़न्त विचार था और उसका कोई भी वैज्ञानिक आधार नहीं है। इस ज्ञान ने भी जाति–प्रथा को निर्बल बनाने में काफी योग दिया है।

- **धार्मिक आन्दोलन–** कुछ धार्मिक आन्दोलनों ने भी जाति–प्रथा को काफी धक्का पहुँचाया है। इसमें बंगाल में ब्रह्म समाज, बम्बई में प्रार्थना–समाज और पंजाब तथा उत्तर प्रदेश में आर्य–समाज द्वारा आयोजित आन्दोलन या प्रचार कार्य उल्लेखनीय हैं। ये सभी पाश्चात्य सामाजिक मूल्यों और ईसाई धर्म की समानता के सिद्धान्त से प्रभावित थे। इन समाजों ने जाति–प्रथा के अन्तर्गत छुआछूत, भेद–भाव और ब्राह्मणों की कट्टरता का घोर विरोध किया, जिससे जाति–प्रथा की दृढ़ता कम होती गई। बाद में रामकृष्ण मिशन ने भी इस आन्दोलन में योग दिया। आज भी वह इस ओर प्रयत्नशील है।

- **राजनीतिक आन्दोलन–** राजनीतिक आन्दोलन के क्षेत्र में भी, विशेषकर जब से उसमें महात्मा गाँधी ने प्रवेश किया, जाति–पाँति के भेद–भाव को दूर करने का एक सचेत प्रयत्न होता रहा। राजनीतिक आधार पर गाँधीजी का हरिजन आन्दोलन इस सम्बन्ध में विशेष उल्लेखनीय है। राजनीतिक नेताओं के आह्वान से विभिन्न भाषा–भाषी, धर्म और जाति के लोग एक ही तिरंगे झण्डे के नीचे एकत्रित हुए, हाथ से हाथ और कन्धे से कन्धा मिलाकर सत्याग्रह किया, जुलूस निकाला, पुलिस के अत्याचार सहे और जेल गए। इनमें से किसी में भी न तो ऊँच–नीच का प्रश्न था और न ही जाति–पाँति के आधार पर भेद–भाव। जेल में एक साथ रहते हुए भोजन सम्बन्धी जातीय नियमों का भी पालन सम्भव न था।

- **सरकारी प्रयत्न–** जाति–प्रथा के दुष्परिणाम से जनता की रक्षा करने के लिए सरकार की ओर से भी अनेक प्रयत्नह ुए हैं। जाति–प्रथा विरोधी अनेक अधिनियम, जिनके विषय में ऊपर बताया जा चुका है, बनाये गए। 'हिन्दू–विवाह वैधकरण अधिनियम' (Hindu Marriage Validating Act, 1949) सन् 1949 में पारित हुआ। इसने इस अधिनियम के पारित होने के पहले और बाद में होने वाले विभिन्न धर्मों, जातियों और उपजातियों एवं सम्प्रदायों के व्यक्तियों में होने वाले विवाह को वैध कर दिया है। सन् 1954 के 'विशेष विवाह अधिनियम' (The Special Marriage Act of

1954) ने अन्तर्जातीय विवाहों की वैधानिक अड़चनों को दूर कर दिया है। यह अधिनियम सन् 1872 के अधिनियम का ही विस्तृत रूप है। अस्पृश्यता दूर करने के लिए सन् 1955 का 'अस्पृश्यता अपराध अधिनियम' (Untouchability Offences Act, 1955) सबसे पहला कानूनी कदम है, जिसके द्वारा हरिजनों की मरम्मत निर्योग्यताओं को दूर करने का प्रयत्न किया गया है। संविधान के अनुच्छेद 15 के अनुसार, राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म–स्थान इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा। अनुच्छेद 17 के अनुसार, अस्पृश्यता का अन्त कर दिया गया है। इन समस्त सरकारी प्रयत्नों ने जाति–प्रथा की दृढ़ता को कितना दुर्बल बना दिया है, इस बात को समझाने की शायद आवश्यकता नहीं। नागरिक संरक्षण अधिनियम, 1989 ने भी जाति–प्रथा के बन्धनों को काफी सीमा तक समाप्त कर दिया है।

1.5. सारांश

आधुनिक भारत के सामाजिक पुनर्रचना प्रयासों के लिए सामाजिक–सांस्कृतिक बुराईयों का सम्यक बोध एक महत्वपूर्ण प्रस्थान बिन्दु था। लिंगभेद की पतित स्थिति एवं जाति प्रथा समाज में व्याप्त अंधविश्वास एवं वाह्य आडम्बर को दर्शाता है।

वर्तमान बुराईयों के बोध के प्रयास से जुड़ा हुआ था, समाज व्यवस्था के पुनर्विन का प्रयास। लिंगभेद जैसी बुराईयों के पश्चात् महिलाओं की स्थिति में सुधार, बाल विवाह का उन्मूलन, एक विवाह, विधवा विवाह, जातिगत भेदभाव की समाप्ति इत्यादि इसके सुखद परिणाम थे। यद्यपि इस कार्य हेतु कई कठिनाइयाँ भी आई। परन्तु सन्निहित सरोकार या एक सुधरी हुई सामाजिक सांस्कृतिक व्यवस्था के आधार पर भारतीय समाज की सर्वांगीण प्रगति का।

2.8. संदर्भ – ग्रंथ

(1) बी. डी. महाजन – आधुनिक भारत का इतिहास
(2) वी. एल. ग्रोवर – आधुनिक भारत का इतिहास
(3) डॉ. संजीव जैन – आधुनिक भारत का आर्थिक एवं राजनैतिक इतिहास
(4) डॉ. एस. आर. वर्मा – भारत का इतिहास
(5) डॉ. ए. के. मित्तल – आधुनिक भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास
(6) आर. एल. शुक्ल – आधुनिक भारत का इतिहास
(7) हरीश कुमार खत्री – आधुनिक भारत का इतिहास
(8) पी. एल. गौतम – आधुनिक भारत
(9) एल. पी. शर्मा – आधुनिक भारत
(10) सूमित सरकार – आधुनिक भारत
(11) पुखराज जैन – स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास

2.9. अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) लिंगभेद के कारण एवं परिणामों की विवेचना करें?
(2) लिंगभेद को समाप्त करने में गैर–सरकारी संगठनों की भूमिका की विवेचना करें?
(3) भारत में जाति–प्रथा के विकास के कारणों की विवेचना करें?
(4) भारत में प्रचलित जाति–प्रथा के कुप्रभावों की विवेचना करें?

इकाई दोः आधुनिक भारत में प्रिन्ट मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और संचार क्रान्ति

2.1 परिचय
2.2 उद्देश्य
2.3 प्रिन्ट मीडिया
2.3.1 इलेक्ट्रॉनिक न्यूज मीडिया
2.3.2 सामाजिक जागरूकता पैदा करने और शिक्षा के लिए मीडिया का उपयोग
2.4 इलेक्ट्रॉनिक मीडिया
2.4.1 रेडियो
2.4.2 सिनेमा
2.4.3 सिनेमा और समाज
2.4.4 टेलीविजन
2.4.5. इन्टरनेट
2.4.6 मीडिया में महिलाओं का चित्रण
2.4.7 सोशल मीडिया
2.5 प्रसारण मीडिया
2.6 सूचना और प्रसारण मंत्रालय की मीडिया इकाइयाँ
2.7 सूचना क्रान्ति
2.7 संदर्भ ग्रन्थ
2.8 अनुशंसित पुस्तकें
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 परिचय

मीडिया (प्रचार माध्यम) किसी भी समाज में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में त्वरित विकास के चलते मीडिया की भूमिका और भी ज्यादा अहम हो गई है। मीडिया की ताकत में बेहद इजाफा हुआ है और यह सर्वव्यापी हो गया है। इस यूनिट का उद्देश्य आधुनिक भारत के संदर्भ में प्रिन्ट मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के बारे में चर्चा करना है। ये दोनों मीडिया समय बीतने के साथ–साथ किस तरह बदले हैं, इसका भी विश्लेषण किया जायेगा। मीडिया में महिलाओं को किस तरह चित्रित किया गया है, इसकी भी जाँच की जायेगी। रेडियो, टेलीविजन और फिल्मों में विकासक्रम पर भी विचार–विमर्श किया जायेगा। प्रसारण मीडिया की श्रेणियों का भी उल्लेख किया जायेगा।

सोशल मीडिया वर्तमान समय में सबसे अहम मीडिया है, अतः इसकी भूमिका और पहुँच पर भी परिचर्चा की जायेगी। प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में तीव्र विकास ने भारत में सूचना क्रान्ति को जन्म दिया है। अतः, सूचना क्रान्ति से जुड़े मुद्दों तथा भारतीय समाज पर इसके प्रभाव की भी पड़ताल की जायेगी। मीडिया के विकास की प्रक्रिया को समझने का ही नहीं, बल्कि इनके ऐतिहासिक संदर्भ में भी इन्हें अवस्थित करने का प्रयास किया गया है।

आपको आधुनिक भारत की तथा समकालीन भारत की सामान्य समझ से भी इस जानकारी को विशिष्ट तरीके से अवस्थित करने में मदद मिलेगी। भारतीय समाज में प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विकास क्रम पर भी चर्चा की गयी है ताकि आपके ज्ञान को एक सैद्धान्तिक और व्यावहारिक फ्रेमवर्क उपलब्ध कराया जा सके।

मुझे उम्मीद है कि छात्र समकालीन परिस्थितियों से इन मुद्दों का सह–सम्बन्ध स्थापित कर सकेंगे, क्योंकि इनमें से अनेक मुद्दे प्रिन्ट और इलेक्ट्रॉनिक दोनों मीडिया में दृष्टिगोचर हैं और छात्र स्वयं भारत में सूचना क्रान्ति के गवाह और अंग हैं।

2.2 उद्देश्य

इस यूनिट के बाद आप

- वर्तमान भारत में प्रन्टि मीडिया के महत्व को समझ सकेंगे।
- वर्तमान समय में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के महत्व को समझ सकेंगे।
- भारत में सूचना क्रान्ति के अर्थ और महत्व को परिभाषित कर सकेंगे और इस पर चर्चा कर सकेंगे।
- संचार माध्यम के रूप में फिल्मों की भूमिका को समझ सकेंगे।
- फिल्मों को इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के ऐसे औजार के रूप में देख सकेंगे, जो समाज के सामाजार्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिदृश्य को दर्शाता है।
- मीडिया में महिलाओं के चित्रण को समझ सकेंगे।
- प्रसारण मीडिया कितने प्रकार के हैं, यह जान सकेंगे।

2.3 प्रिन्ट मीडिया

छापेखाने (प्रिन्टिंग प्रेस) के आविष्कार से पहले हस्तलिखित पुस्तकें काफी महंगी होती थीं और अमीर लोग ही किताबें खरीद पाते थे। छपाई से पुस्तकें सस्ती हो गईं और आम आदमी की पहुँच में आ गईं। छपी हुई मूल पाठ्य–सामग्री को तेजी से दोहरे पन्नों में फोल्ड करने की सुविधा ने समकालीन समाचार पत्रों को जन्म दिया। प्रिन्ट मीडिया में समाचार पत्र, पत्रिकायें, पुस्तकें तथा अन्य लिखित दस्तावेज शामिल हैं। सूचना क्रान्ति के इस युग में भी समाचार पत्रों की महत्ता कम नहीं हुई है। अधिसंख्य लोगों को सुबह–सुबह सबसे पहली चीज यदि कोई चाहिये, तो वह समाचार पत्र (अखबार) ही है। समाचार पत्र–पत्रिकाओं के साथ लिखित सामग्री की प्रामाणिकता और पवित्रता जुड़ी हुई है। समाचार पत्रों के महत्व को इस संदर्भ में समझा जा सकता है कि इसने 19वीं सदी में छपाई को सस्ता बनाया और साहित्य का प्रचार–प्रसार किया। सन् 1890 के दशक में यूरोप में अल्फ्रेड हेम्सवर्थ (लॉर्ड नॉर्थक्लिफ) ने लागत से कम कीमत पर अपना अखबार बेचना शुरू किया और विज्ञापन से आय की बजाय बिक्री से आय का रास्ता अपनाया। उन्होंने महसूस किया कि कारोबारी लोग समाचार पत्रों

के पाठकों (जन–साधारण) तक अपने विज्ञापन पहुँचाने के लिए भारी भरकम पैसा देने को तैयार हैं, लेकिन कुलीन लोगों तक पहुँच वाले इन समाचार पत्रों को जनसाधारण तक पहुँचाना एक क्रमिक प्रक्रिया है।

औपनिवेशिक भारत में भारतीय प्रिन्ट मीडिया ने देश के राष्ट्रीय आन्दोलन की विचारधारा से जुड़कर और अपने समाचार पत्रों के द्वारा इसे जन–जन तक पहुँचा कर अपनी भूमिका निभायी है। भारतीय राष्ट्रवादियों के द्वारा प्रकाशित अंग्रेजी और देशी भाषाओं के बहुत से समाचार पत्रों ने राष्ट्रीय आन्दोलन के मुद्दों को प्रमुखता से उभारा। भारत की स्वतंत्रता के बाद भी समाचार पत्रों ने राष्ट्रीय महत्व के विभिन्न मुद्दों को प्रमुखता देकर समाज के स्वस्थ विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसी प्रकार पुस्तकों ने भी ज्ञान और विचारों के प्रचार–प्रसार में अहम योगदान दिया है। भारत के विशाल और जीवन्त प्रकाशन उद्योग ने शिक्षा, दर्शन, विज्ञान और कानून जैसे विभिन्न क्षेत्रों में पुस्तकें प्रकाशित कर के जन–साधारण की आवश्यकता पूरी की है। पुस्तकों ने पठन–पाठन में अभिरुचि रखने वाले लोगों में अध्ययन की संस्कृति को बनाये रखा है। पुस्तकें अपने आप में एक दुनिया हैं। सूचना और ज्ञान उपलब्ध कराने के अलावा वे एक आजीवन अनुभव भी प्रदान करती हैं। आजकल ऑनलाइन पुस्तकों ने युवा पीढ़ी में अच्छी पैठ बना ली है। अपने लैपटॉप, टेबलेट और मोबाइल पर पुस्तकें पढ़ते हैं। आजकल सोशल मीडिया गलत जानकारी और अफवाहों का एक विशाल मंच बन गया है। सभी वर्गों और रंगों के प्रचारक इसका इस्तेमाल करते हैं। इसलिये आज की दुनिया में पुस्तकों का महत्व और भी बढ़ गया है।

2.3.1 इलेक्ट्रॉनिक न्यूज मीडिया

इन्टरनेट के माध्यम से अधिकांश भारतीय समाचार पत्रों, पत्रिकाओं और मीडिया आउटलेट तक आसानी से पहुँचा जा सकता है। इंटरनेट पब्लिक लायब्रेरी (आईपीएल), भारतीय समाचार पत्रों के बारे में जानकारी हासिल करने का एक संक्षिप्त स्रोत है। onlinenewspapers.com वेबसाईट पर भारत के ऑनलाइन न्यूजपेपर्स की सूची उपलब्ध है। यहीं से प्रत्येक समाचार पत्र पढ़ा भी जा सकता है। इंटरनेट पब्लिक लायब्रेरी पर समकालीन समाचार पत्रों की सूची मौजूद है और यहाँ से सूचना के प्रचलित स्रोतों तक तत्काल पहुँचा जा सकता है।

2.3.2 सामाजिक जागरूकता पैदा करने और शिक्षा के लिए मीडिया का उपयोग

भारत में सामाजिक बदलावों में तेजी लाने और जागरूकता पैदा करने के लिए संचार और विकास में जन–सम्पर्क माध्यमों का उपयोग किया गया है। परिवार नियोजन, साम्प्रदायिक सद्भाव जैसे सामाजिक महत्व के मुद्दों, मलेरिया तथा मच्छरों से होने वाली अन्य बीमारियों, पोलियो टीकाकरण आदि जैसे स्वास्थ्य के मुद्दों के बारे में जागरूकता पैदा करने के लिए समाचार पत्रों, रेडियो और टेलीविजन का उपयोग किया जाता है। इसके अलावा थिएटर आदि रंगमंचों का भी जागरूकता के लिए उपयोग किया जाता है। भारतीय समाज में कला मंच का विशेष महत्व है। कला मंचन का यह स्वरूप दर्शकों का केवल मनोरंजन ही नहीं करता, बल्कि उन्हें कई प्रकार के संदेश भी देता है। भारत में थिएटर आर्ट के जन्म का श्रेय संस्कृत को दिया जाता है। बाद में लोक कला मंचों को प्रमुखता मिलने लगी। अपनी एक अलग पहचान वाले क्षेत्रीय स्वरूप के रंगमंचों ने भारत के रंगमंचों को विविधता प्रदान की। लोक कला मंच दर्शकों के मनोरंजन के लिए है, इसलिए इनकी प्रस्तुतियों में वास्तविकता का पुट होता है, ये स्थानीय दर्शकों से जुड़ने में सक्षम होते हैं, क्योंकि ये स्थानीय भाषाओं में होते हैं और

संस्कृति–विशिष्ट से जुड़े प्रतीकों की इन प्रस्तुतियों में प्रधानता होती है। इनका प्रभाव ज्यादा गहरा होता है, मंचन के लिए ज्यादा बजट की आवश्यकता नहीं होती है, लचीलापन बहुत अधिक होता है और इनकी साख तथा पहचान भी बहुत होती है। इसके अलावा, समकालीन प्रासंगिकता वाले विभिन्न मुद्दों के बारे में जागरूकता पैदा करने के लिए नुक्कड़ नाटकों (स्ट्रीट थिएटर) का ज्यादा उपयोग किया जा रहा है। हालिया वर्षों में शिक्षा के क्षेत्र से जुड़ा गम्भीर चिंता का विषय छात्रों पर पढ़ाई का चरम बोझ है। इसका छात्रों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। रंगमंच इस सम्बन्ध में काफी उपयोगी हो सकता है। नाट्यकला के माध्यम से कक्षा–कक्षों में पढ़ाई की औपचारिक प्रथा को बदल कर इसकी खामियों को दूर किया जा सकता है। विचार–विमर्श और संवाद इसमें काफी सहायक होंगे। अध्यापक और छात्र के बीच की सामाजिक दूरी को कुछ हद कम कर के छात्रों का अध्यापकों पर विश्वास बढ़ाया जा सकता है, इससे उनमें परस्पर विचार–विमर्श को बढ़ावा मिल सकता है। परस्पर चर्चा के अलावा वर्णन या कथन की योग्यता छात्रों को और ज्यादा अभिव्यक्तिशील बनाने में सहायक होगी और इससे उनके स्व–विकास तथा सृजनशीलता में वृद्धि होगी।

अभ्यास – सही अथवा गलत

1. प्रिन्ट मीडिया में समाचार पत्र, पत्रिकायें, पुस्तकें तथा अन्य लिखित दस्तावेज शामिल हैं।
2. औपनिवेशिक भारत में भारतीय प्रिन्ट मीडिया ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की विचारधारा से जुड़ने और इन्हें अपने समाचार पत्रों में प्रसारित करने, ताकि ये जन–जन तक पहुँच सकें, में अपनी भूमिका नहीं निभाई।
3. onlinenewspapers.com वेबसाइट पर भारतीय समाचार पत्रों की सूची उपलब्ध है और यहीं से समाचार पत्र पढ़ने के लिए भी उपलब्ध है।
4. समकालीन प्रासंगिकता वाले विभिन्न मुद्दों के बारे में जागरूकता पैदा करने के लिए नुक्कड़ नाटक (स्ट्रीट थिएटर) का ज्यादा उपयोग किया जा रहा है।

उत्तर : 1. सही 2. गलत 3. सही 4. सही

2.4 इलेक्ट्रॉनिक मीडिया

20वीं शताब्दी में जनसंचार के तीन माध्यमों – रेडियो, फिल्म और टेलीविजन के उदय और प्रसार ने संचार उद्योग में क्रान्ति ला दी। एक ही समय में लाखों लोगों को एकसाथ सम्बोधित करने और इनके माध्यम से उन्हें प्रभावित करने की इनकी क्षमता का सभी ने फायदा उठाया। दर्शकों को तत्काल मोहित करने की इनकी क्षमता ने कुछ ही वर्षों में रेडियो, फिल्म और टेलीविजन को समय व्यतीत करने का पसंदीदा माध्यम बना दिया। मारकोनी द्वारा रेडियो का आविष्कार इलेक्ट्रॉनिक जनसंचार माध्यम के लिए वरदान साबित हुआ। मीडिया के इतिहास में सिनेमा का आविष्कार इलेक्ट्रॉनिक जनसम्पर्क की एक सबसे महत्वपूर्ण घटना थी। पश्चिमी देशों में बीसवीं सदी के पहले दशक में फिल्मों का निर्माण शुरू हुआ। भारत भी ज्यादा पीछे नहीं रहा और आर.जी. टोर्नी ने सन् 1912 में **पुण्डलीक** और दादा साहेब फाल्के ने सन् 1913 में **राजा हरिश्चन्द्र** फिल्म बनाई। दादा साहेब फाल्के को भारतीय सिनेमा का जनक कहा जाता है। अमरीका में सन् 1920 के दशक के दौरान परीक्षण के तौर पर टेलीविजन प्रसारण प्रारम्भ हुआ, लेकिन जनसम्पर्क माध्यम के रूप में इसका गहन प्रभाव सन् 1950 के दशक से ही प्रारम्भ हो पाया। साथ ही पश्चिम के देशों में ध्वन्यांकन उद्योग (रिकॉर्डिंग इण्डस्ट्री) का विकास हुआ। अब इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का दायरा काफी व्यापक हो गया है। इसमें रेडियो, सिनेमा, टेलीविजन, श्रव्य एवं दृश्य रिकॉर्ड (ऑडियो एण्ड विजुअल रिकॉर्ड) और न्यू मीडिया

ऑनलाइन (डिजीटल तरीके से संदेशों का निर्माण, प्रसारण और अधिग्रहण (रिसीविंग) को न्यू मीडिया ऑनलाइन कहा जाता है। इसमें कम्प्यूटर की सहायता से संचार ज्ञान शामिल है) सभी कुछ समा गया है। इसने डेस्कटॉप और लैपटॉप तथा टेलबेट, वायरलैस मोबाइल जैसे उपकरणों का उपयोग अनिवार्य बना दिया है। जनसंचार की इस दुनिया में सीडी–रोम, डीवीडी, पेन ड्राइव, इंटरनेट सुविधा जैसे कि वर्ल्ड वाइड वैब *(www)*, बुलेटिन बोर्ड, ई–मेल, आदि तथा सोशल मीडिया शामिल है।

2.4.1 रेडियो

यूरोप में, सन् 1901 में इटली के इंजीनियर गुग्लिएल्मो मारकोनी ने बिना किसी तार के रेडियो तरंगों द्वारा इंगलैण्ड से कनाडा को संदेश भेजा। सन् 1906 के बाद अमरीका में निर्वात ट्यूबों (वैक्यूम ट्यूब) के विकास ने मनुष्यों की आवाज का प्रसारण आसान बना दिया। अमरीका, यूरोप और जापान में सन् 1920 के दशक में स्थाई प्रसारण स्टेशनों की स्थापना हुई। और ज्यादा स्पष्ट तौर पर कहा जाये, तो पिट्सबर्ग, न्यूयॉर्क और शिकागो में सन् 1920 में रेडियो स्टेशनों की स्थापना हुई। इसके अलावा ब्रिटेन और फ्रान्स ने बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में एशियाई और अफ्रीकी देशों में रेडियो स्टेशन शुरू किये। रेडियो सेटों का बड़े पैमाने पर उत्पादन शुरू हुआ। आशा बिग्ज बताती हैं कि सन् 1926 में ब्रिटिश ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन (बीबीसी) का जब एक सार्वजनिक निगम के रूप में गठन किया गया था, उस समय यू.के. में 21,78,259 रेडियो रिसीवर थे। सन् 1930 के दशक के अन्त में, इनकी संख्या 90 लाख तक पहुँच गई। यानि ब्रिटेन में प्रत्येक चार परिवारों में से तीन के पास रेडियो था। सन् 1938 तक जर्मनी में 90 लाख से ज्यादा और फ्रान्स में 40 लाख से ज्यादा रेडियो सेट, रूस में 45 लाख रेडियो सेट और चेकोस्लोवाकिया, स्वीडन तथा नीदरलैण्ड प्रत्येक में 10 लाख से ज्यादा रेडियो सेट थे।

यूरोप में मध्यम वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति के बैठक (लीविंग रूम) में रेडियो सेट का होना गर्व की बात बन गया था। बाद में श्रमिक वर्ग भी भारी संख्या में रेडियो के ग्राहक बन गए। यहाँ तक कि राज्य भी, उदाहरण के लिए प्रचार पसंद नाज़ियों ने सन् 1930 के दशक में लोगों को रेडियो सेट खरीदने के लिए प्रेरित किया। नाजी शासन ने ऐसे कम खर्चीले रेडियो सेट्स बनाने के लिए राज–सहायता दी, जो केवल जर्मन स्टेशन रिसीव कर सकते हों। हिटलर ने राजनैतिक इस्तेमाल के लिए रेडियो का खूब इस्तेमाल किया और सत्ता में अपने पहले वर्ष के दौरन ही उसने 50 से ज्यादा रेडियो भाषण दिये। सस्ते रेडियो सेटों के निर्माण के अलावा सन् 1942 में फैक्ट्रियों में, बैरकों में तथा युवा शिविरों में सामूहिक अनुश्रवण (ग्रुप लिसनिंग) का आयोजन किया गया। जर्मनी के दो करोड़ तीस लाख परिवारों में से एक करोड़ साठ लाख परिवारों के पास रेडियो सेट थे। मुसोलिनी ने भी रेडियो का कारगरता से उपयोग किया। इथोपिया पर आक्रमण के बारे में 02 अक्टूबर, 1935 को उसका रेडियो प्रसारण तथा 9 मई, 1936 को इथोपिया पर जीत के बारे में रेडियो पर उद्घोषणा और कुछ नहीं बस राजनीतिक रेडियो प्रसारण था। भारत में औपनिवेशिक शासन के दौरान अंग्रेजों ने रेडियो सेवा आरम्भ की। ऑल इण्डिया रेडियो (ए.आई.आर.), जिसे सन् 1956 में आकाशवाणी नाम दिया गया, भारत का राष्ट्रीय लोक प्रसारक है। दो सदियों के औपनिवेशिक शासन ने जनता को गरीब बना दिया था। ज्यादातर भारतीय रेडियो सेट खरीदने में अक्षम थे। रेडियो सेट केवल अमीरों और कुलीनों के पास थे। आजादी के बाद रेडियो सेवा ने गति पकड़ी। समाचारों के अलावा रेडियो सीलोन द्वारा अमीन सायानी की आवाज में प्रसारित बिनाका गीतमाला (फिल्मी गानों पर आधारित एक प्रकरण) ने रेडियो को अत्यंत लोकप्रिय बना दिया।

2.4.2 सिनेमा

सिने जगत से भारत का सम्बन्ध 07 जुलाई, 1896 को जुड़ा। इस दिन बम्बई के वाट्सन होटल में मॉरिस सेस्टियर ने पहली चलती–फिरती (मोशन) फिल्म का प्रदर्शन किया। मॉरिस सेस्टियर ल्यूमिए ब्रदर्स (ऑगस्ट और लुई) के एजेंट थे। ल्यूमिए ब्रदर्स को चलचित्र की (सिनेमेटोग्राफ) का संस्थापक माना जाता है। सिनेमा केवल मनोरंजन का साधन ही नहीं, बल्कि शिक्षा, सूचना और संचार का माध्यम भी है। सिनेमा की श्रव्य–दृश्य विशेषता इसे संचार के अन्य माध्यमों से अलग करती है। संचार के पारम्परिक माध्यमों में चलते–फिरते छायाचित्र जैसी विशेषताएं नहीं थीं और यही विशेषता दुनिया भर के दर्शकों को मोहित करती है। साथ ही भारतीय सिनेमा ने गीत और नृत्य की विरासत को भी फिल्मों में समायोजित किया और यह भारतीय फिल्मों की मुख्य विशेषता बन गई। आज की दुनिया में टेक्नोलॉजी ने फिल्मों को हमारे टेबलेटनुमा मोबाइल फोनों तक पहुँचा दिया है। फैशन, जीवन शैली और संस्कृतियों के संवर्धन पर फिल्मों का जबर्दस्त प्रभाव पड़ा है। इसके अलावा, फिल्में किसी समाज की सामाजार्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक वास्तविकताओं को भी दर्शाती है। आधुनिक विश्व में संस्कृति और पहचान के सामाजिक महत्व ने सिनेमा के अध्ययन के लिए नये गलियारे खोल दिये हैं। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने सिनेमा को ''आधुनिक विश्व में सबसे ज्यादा प्रभावशाली'' माध्यम के रूप में व्यक्त किया है। सिनेमा केवल संचार का ही शक्तिशाली साधन नहीं है, बल्कि यह समाज का दर्पण है, बदलाव का सांस्कृतिक अभिकर्ता (एजेंट) है और फैशन तथा व्यवहार का संवर्धक है। केबल टेलीविजन तथा डायरेक्ट टू होम (डीटीएच) के आगमन और कॉम्पैक्ट डिस्क (सी.डी.), डिजिटल वर्सेटाइल डिस्क (डी.वी.डी.), पेन ड्राइव, मोबाइल, टेबलेट के व्यापक उपयोग तथा ऑनलाइन फिल्में देखने की सुलभता से, जनसाधारण तक इसकी पहुंच में बेहद वृद्धि हुई है। इस संदर्भ में सांस्कृतिक संचार के माध्यम के रूप में फिल्मों का अध्ययन महत्वपूर्ण होगा।

डी. डब्ल्यू. ग्रिफिथ की फिल्म **'दी बर्थ ऑफ ए नेशन'** (1915) ने इस पूर्वधारणा के लिए साझा जमीन तैयार की कि फिल्म एक युग के इतिहास को दर्शाती है। इसका सीधा–सादा कारण यह है कि यह अपने समय की देन है और उस समाज की वास्तविक छवि प्रस्तुत करने का सांस्कृतिक बोझ इसके कंधों पर होता है।

किशोर वलेचा कहते हैं, ''सिनेमा की कुंजी संस्कृति में निहित है।'' संस्कृति शब्द इतिहासकारों और प्राणी–विज्ञानियों के बीच अभी भी वाद–विवाद का मुद्दा बना हुआ है। यानि वे इस बारे में एकमत नहीं हैं। ई.वी. टेलर ने इसे एक जटिल समग्रता के रूप में परिभाषित किया है, जिसमें ज्ञान, मत, कला, विधि (कानून), नैतिकता, प्रथा तथा समाज के एक सदस्य के रूप में मनुष्य द्वारा प्राप्त की गई अन्य क्षमतायें और आचार–व्यवहार (आदतें) शामिल हैं। दूसरे शब्दों में मानवीय संस्कृति उन सभी चीजों का मिश्रण है, जिनका हमें ज्ञान है, जिनसे हम युक्त हैं और जो हम करते हैं। मैलिनोवस्की के अनुसार संस्कृति में विरासत में प्राप्त कौशल, वस्तएँ, विचार, मूल्य, आचार–व्यवहार और तकनीकी प्रक्रिया शामिल है। संस्कृति की अपनी एक भौतिक विषय–वस्तु, ज्ञान का एक समूह तथा एक सामाजिक संगठन होता है। इसके अलावा इसका स्वरूप स्थिर नहीं बल्कि परिवर्तनशील (गतिशील) होता है। रेमण्ड विलियम्स ने संस्कृति को ''जीवन का एक समग्र तौर–तरीका'' कहा है। सिनेमेटिक मीडिया में इस्तेमाल होने वाले कोड, प्रतीक और परम्परायें संस्कृति–विशिष्ट होती हैं। बार्नोव और कृष्णास्वामी का तर्क है कि भारतीय फिल्में रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों, मिथकों और कहानियों से कथानक उठाती हैं। **रामायण** और **महाभारत** पश्चिमी जगत के **इलियाद** और **ओडिसी** हैं और साथ ही लोक गाथाओं, गीतों और ज्ञान का सार–संग्रह भी हैं।

किसी क्षेत्र की संस्कृति और इसकी बारीकियों के ज्ञान से उस क्षेत्र के सिनेमा को समझने में सहायता मिलती है। तेजस्विनी निरंजना का तर्क है कि जब इण्डियन कैटेगरी (संवर्ग या श्रेणी) की बात करते हैं, तो यह केवल देश की सीमाओं तक ही सीमित नहीं है और जब भारतीय दर्शकों की बात होती है, तो ''पश्चिम'' और ''तीसरी दुनिया के देशों'' दोनों के वे दर्शक समूह हैं, जो भारतीय फिल्में देखते हैं, भले ही वे भारतीय मूल के हों या न हों। यहाँ वे उन भारतीय प्रवासियों तथा उन व्यक्तियों का जिक्र कर रही हैं जो भारतीय फिल्में देखते और समझते हैं। आज दुनिया के देशों के बीच सीमायें ज्यादा तेजी से सिकुड़ रही हैं और इसका कारण संचार, प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विकास तथा वैश्वीकरण की तेज गति है। ऐसे समय में सिनेमा और भी ज्यादा प्रासंगिक हो गया है।

2.4.3 सिनेमा और समाज

सिनेमा संस्कृति के सामान्य स्वरूप (पैटर्न) का अभिन्न अंग है और सामाजार्थिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक ताकतें इसे आकार देती हैं तथा अनुकूल बनाती हैं। आज जब ज्ञान की प्रत्येक शाखा की उपयोगिता पर जोर दिया जा रहा है, अनुसंधान के क्षेत्र में भी अन्तर–विषयी नजरिये का अनुप्रयोग बढ़ रहा है। कहना यह है कि एक काल–विशेष की सामाजार्थिक और राजनीतिक वास्तविकताओं के साथ सह–सम्पर्क से सिनेमा इन्हें प्रभावित करता है और इनसे स्वयं भी प्रभावित होता है। इस समझ के चलते इतिहासविद, समाजशास्त्री और राजनीतिक पण्डित सिनेमा के माध्यम से सामाजिक–आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक वास्तविकताओं को समझने के लिए फिल्मों पर शोध कर रहे हैं। मार्क फैरो जैसे विद्वान फिल्मों को इतिहास का 'स्रोत' और 'अभिकर्ता' के रूप में देखते हैं। इतिहास के 'स्रोत' के रूप में फिल्म उस समाज के साथ रिश्तों को दर्शाती है, जो ये फिल्में बनाता है और इसका आनन्द लेता है और फिल्म बनाने की सामाजिक प्रक्रिया का भी प्रदर्शन करती है। इतिहास के एक अभिकर्ता (एजेण्ट) के रूप में फिल्म उस संस्कृति के विशेष मूल्यों, सिद्धान्तों और आचार–व्यवहार का प्रदर्शन करती है। सिनेमा ने आर्ट मीडिया की इस विकास यात्रा में अपनी एक खास पहचान बनाई है। तात्पर्य यह है कि बारीक से बारीक विशेषताओं को अभिव्यक्त करते समय भी यह दर्शकों को बांधे रखती है। इसको इस तथ्य द्वारा समझा जा सकता है कि जनसाधारण आमतौर पर शास्त्रीय साहित्य कम पढ़ता है, लेकिन इन पर आधारित फिल्में बहुत से लोग देखते हैं। देश के बंटवारे के दौरान घटी घटनाओं पर भीष्म साहनी के लिखे उपन्यास **तमस** को बहुत से लोगों ने नहीं पढ़ा होगा, लेकिन इस पर बने टेलीविजन धारावाहिक को पर्दे पर ज्यादातर लोगों ने देखा है।

कभी–कभी कुछ फिल्मों को कटु आलोचनाओं का सामना करना पड़ता है। इसका कारण यह है कि वे तत्कालीन समाज के ताने–बाने की कुछ कमजोरियों को उजागर करती हैं। **देवदास** (1935) तत्कालीन युवाओं में अत्यंत निराशा पैदा करने का कारण बनी। इसी प्रकार कहा जाता है कि **रत्तन** (1944) फिल्म से प्रेरित होकर कई युवक युवा लड़कियों को भगा ले गए या उन्होंने आत्महत्या कर ली और अपना जीवनसाथी चुनने तथा अपना जीवन खुद संवारने को लेकर बच्चों और उनके माता–पिता के बीच विवाद होने लगे। मशहूर फिल्म निर्देशक वी. शान्ताराम ने सामाजिक बदलाव के एक साधन के रूप में फिल्मों की कारगरता को समझा था। उन्होंने मानवता का समर्थन करने, कट्टरता और अन्याय का भाण्डा फोड़ने और सामाजिक सुधारों को प्रकाशित करने के लिए फिल्मों का सफलतापूर्वक उपयोग किया। उनकी फिल्म **'दुनिया ना माने'** (1935) समाज में बे–मेल विवाह, यानि कम उम्र की बालिका का वृद्ध व्यक्ति से विवाह की समस्या पर आधारित थी। **'पड़ोसी'** (1939) हिन्दू–मुस्लिम एकता का समर्थन करती है और **'दहेज'** (1950) भारतीय समाज की एक बुराई दहेज को उजागर करती है। चन्दूलाल साह की फिल्म **'अछूत'** (1940) समाज में अछूतों के दमन पर एक अत्यंत मर्मस्पर्शी और

सार्थक कथानक है। बिमल रॉय की **'दो बीघा जमीन'** (1953) भारतीय किसानों की समस्या का चित्रण करती है। सत्यजीत रे की फिल्म **'पाथेर पांचाली'** (1955) भारतीय गाँवों का सजीव चित्रण है। फिल्म को इसकी वास्तविकता, संगीतमयता और सौन्दर्यपरक अभिव्यंजना के लिए खूब सराहा गया है। बिमल रॉय की फिल्म **'सुजाता'** (1959) भारतीय समाज में छुआछूत के खिलाफ आवाज उठाती है। अमिताभ बच्चन की **'जंजीर'** (1973), **'दीवार'** (1975) और **'शोले'** (1975) व्यवस्था के खिलाफ बगावत का चित्रण थी और इन फिल्में ने उन्हें एंग्री यंग मैन के नाम से प्रसिद्ध कर दिया। श्याम बेनेगल की **'अंकुर'** (1974) भारत की जाति व्यवस्था के विकृत स्वरूप के अन्दर झांकती नजर आती है, तो वहीं उनकी फिल्म **'निशांत'** (1975) समाज के सामन्ती और पितृसत्तात्मक ढांचे को अनावृत करती नजर आती है। गोविन्द निहलानी ने अपनी फिल्म **'अर्धसत्य'** (1983) में पुलिस बल और सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार को विषय वस्तु बनाया है। **'दिलवाले दुल्हनियाँ ले जायेंगे'** (1995) और **'कुछ कुछ होता है'** (1997) अप्रवासी भारतीयों (एन.आर.आई.) को ध्यान में रख कर बनाई गई तड़क–भड़क वाली साफ–सुथरी फिल्में हैं। फिल्म **'लगान'** (2002) में क्रिकेट के खेल के माध्यम से औपनिवेशिक व्यवस्था के शोषणात्मक चरित्र का चित्रण यह बताता है कि सिनेमा शासक और शासित वर्ग के अन्तर को किस प्रकार दर्शाता है।

हाल के वर्षों में डिसलैक्सिया (वाचन–वैकल्प) पर **'तारे जमीन पर'** (2007), महानगरों के एकाकी जीवन पर **'लाइफ इन ए मेट्रो'** (2007), प्रोजेरिया (सन्तति या नई पीढ़ी) पर **'पा'** (2009) और इच्छा–मृत्यु (यूथेनेशिया) पर **'गुजारिश'** (2010) जैसी प्रासंगिक फिल्में का निर्माण हुआ है। राजकुमार संतोषी की **'लज्जा'** (2001) भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति का चित्रण है। प्रकाश झा की फिल्म **'गंगाजल'** (2003) अपराधियों, नौकरशाहों और राजनेताओं की सांठ–गांठ का खुलासा करती है। नीरज पाण्डे की फिल्म **'ए वेडनस डे'** (2008) और **'बेबी'** (2015) आतंकवाद के मुद्दे को सामने लाती है। राजकुमार हीरानी की **'थ्री ईडियट्स'** (2008) भारत की शिक्षा प्रणाली में सुधार का आग्रह करती नज़र आती है, जबकि इसी निर्देशक की **'पीके'** (2014) लोगों से अपने आचार व्यवहार में समझदार और विवेकशील बनने तथा समाज में व्याप्त अंधविश्वासों को नकारने का अनुरोध करती है।

सेंसरशिप का फिल्मों के प्रदर्शन से नज़दीकी रिश्ता है। कभी–कभी कुछ देशों के राजनेताओं ने सिनेमा की शक्ति और प्रभाव को देखते हुए इस पर सेंसरशिप के माध्यम से अंकुश लगाने की कोशिश की और अपने फायदे के लिए इसका उपयोग करने का प्रयास किया है। इसलिए सेंसरशिप की प्रणाली और प्रथा कुछ विशेष विचारधाराओं के प्रचार तथा कुछ अन्य विचारधाराओं की नकारने का भी एक महत्वपूर्ण साधन है।

अभ्यास :

क. सही अथवा गलत

1. मार्क फैरों फिल्मों को इतिहास का 'स्रोत' और 'अभिकर्ता' दोनों मानते हैं।
2. भीष्म साहनी की **'तमस'** भारत के बंटवारे के दौरान घटी घटनाओं पर आधारित है।
3. भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने सिनेमा को ''आधुनिक विश्व में एक सर्वाधिक प्रभावकारी माध्यम'' कहा है।
4. बिमल रॉय की फिल्म **'सुजाता'** (1959) भारतीय समाज में छुआछूत के मुद्दे के खिलाफ थी।
5. **सिनेमा** केवल मनोरंजन का साधन ही नहीं, बल्कि शिक्षा, सूचना और संचार का माध्यम भी है।

उत्तर : 1. सही 2. सही 3. सही 4. सही 5. सही

ख. हिन्दू–मुस्लिम एकता का समर्थन करने वाली फिल्म **पड़ोसी** (1939) का निर्देशन किसने किया था ?

क. वी. शान्ताराम ख. के.ए. अब्बास

ग. विमल रॉय घ. राज कपूर

उत्तर क

ग. संक्षिप्त प्रश्न

1. सिनेमा और समाज के बीच सम्बन्ध पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।
2. फिल्मों को संचार के सांस्कृतिक माध्यम के रूप में देखा जाना चाहिये, चर्चा करें।

घ. रिक्त स्थान भरें।

1. हाल के वर्षों में प्रासंगिक मुद्दों पर कुछ फिल्में बनी हैं, जैसे कि .....पर **'तारे जमीन पर'** (2007) ..... पर **'लाइफ इन ए मेट्रो'** (2007), ...पर **'पा'** (2009) और ....पर 'गुजारिश' (2010)।
2. प्रकाश झा की फिल्म ..... (2003) अपराधियों, नौकरशाहों और राजनेताओं की मिली–भगत का खुलासा करती है।
3. नीरज पाण्डे की **'ए वेडनस डे'** (2008) और **'बेबी'** (2015) ..... के मुद्दों पर बनी है।
4. राजकुमार ..... की फिल्म **'थ्री ईडियट्स'** (2008) भारत की शिक्षा प्रणाली में सुधार का आग्रह करती है, जबकि इसी निर्देशक की फिल्म ..... (2014) लोगों में अपने आचार–व्यवहार में और अधिक समझदार तथा विवेकशील बनने तथा समाज में व्याप्त अंधविश्वासों को नकारने का अनुरोध करती है।

2.4.4 टेलीविजन

टेलीविजन का उपयोग घर बैठे आनन्द लेने के लिए किया जाता है, इसलिए इसे ईडियट बॉक्स भी कहते हैं। आमतौर पर यह माना जाता है कि लोगों को टेलीविजन देखने से कुछ नहीं मिलता। प्रतिदिन के मनोरंजन का एक अच्छा साधन होने के अलावा टेलीविजन की पहुँच बहुत ज्यादा है। आप हर घर में एक टेलीविजन सेट देख सकते हैं। भारत में टेलीविजन कार्यक्रम सबसे पहले सरकार ने शुरू किये थे और केवल दूरदर्शन चैनल ही दर्शकों को उपलब्ध था। सरकार ने खेती पर आधारित **कृषि दर्शन** जैसे कार्यक्रम शुरू किये। लोकप्रिय गीतों पर आधारित कार्यक्रम **चित्रहार** का प्रसारण भी सरकार ने ही शुरू किया। सन् 1980 और 1990 के दशक में **'रामायण'** और **'महाभारत'** जैसे लोकप्रिय धारावाहिकों ने टेलीविजन के दर्शकों की संख्या में भारी वृद्धि की। सरकार ने मेट्रो चैनल भी शुरू किये, जो महानगरों के लिए थे। इन चैनलों पर मनोरंजन के ज्यादा कार्यक्रम उपलब्ध कराये गए। 1990 के दशक में केबल टीवी के आगमन ने दर्शकों के लिए और ज्यादा चैनल शुरू किये। डायरेक्ट टू होम (डी.टी.एच.) के पदार्पण ने तो टेलीविजन उद्योग में क्रान्ति ही ला दी। इस प्रौद्योगिकी प्रसार से देश के प्रत्येक घर की छत पर डिश एन्टीना नजर आने लगे। जहाँ कहीं केबल टीवी नहीं पहुंच सकता था, वहां डी.टी.एच. आसानी से पहुँच गया, क्योंकि यह सीधे उपग्रह के माध्यम से प्रसारण करता थ। इसके अलावा पौराणिक, खेल–कूद, मनोरंजन, फिल्म, समाचार, फैशन, कार्टून, लाइफस्टाइल, संगीत, रोमांच, इतिहास, वन्य–जीवन आदि से चैनलों ने अपने दर्शकों के लिए विविधता भरे अनेक कार्यक्रम परोस दिये। विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों के चलते चैनलों के बीच प्रतिस्पर्धा भी बढ़ी और चैनलों में टेलीविजन रेटिंग प्वाइन्ट (टी.आर.पी.) के लिए होड़ मच गई। टी.आर.पी. कार्यक्रम

की लोकप्रियता और दर्शक संख्या का पैमाना है। टेलीविजन से अनेक लोगों को विभिन्न सैक्टरों में रोजगार मिला। इसके अलावा टेलीविजन ने नए अभिनेताओं और अभिनेत्रियों की ऐसी जमात पैदा की, जो अपने आपको फिल्मी सितारों से कम नहीं समझती है और उन्हीं की तर्ज पर ढल गई हैं। टेलीविजन उद्योग फिल्म उद्योग का रूप ले रहा है। टेलीविजन उद्योग भी फिल्म उद्योग की तरह पुरस्कार समारोहों का आयोजन करने लगा है, जिनमें टेलीविजन सीरियल और इनके निर्माताओं के बीच प्रतिस्पर्धा होती है। अनेक फिल्मी सितारे अपनी फिल्मों के प्रमोशन के लिए टी.वी. प्रोडक्शन कम्पनियों में आते रहते हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि टेलीविजन दर्शकों की संख्या बहुत ज्यादा है। कई फिल्मी सितारे टेलीविजन पर चलने वाले कुछ कार्यक्रमों से भी जुड़ चुके हैं। यह भी कहा जा सकता है कि फिल्म उद्योग से बाहर हो चुकी कुछ फिल्मी हस्तियों या फिल्मों में अपनी जगह न बना सकने वाले कलाकारों को टेलीविजन ने छोटे पर्दे पर अपनी कला दर्शाने का मौका दिया है। एक प्रश्नोत्तरी (क्विज) कार्यक्रम की फिल्मों के महानायक श्री अमिताभ बच्चन द्वारा एन्करिंग ने टेलीविजन उद्योग के कार्यक्रमों में क्रान्ति ला दी। इसने उस प्रश्नोत्तरी कार्यक्रम की टी.आर.पी. में ही इजाफा नहीं किया, बल्कि बाद में अनेक फिल्मी सितारों के लिए भी टेलीविजन की दुनिया के दरवाजे खोल दिये।

इस उद्योग से जुड़ा दूसरा महत्वपूर्ण पहलू है इस माध्यम का जबर्दस्त व्यवसायीकरण। यह केवल मनोरंजन से जुड़े कार्यक्रमों में ही नजर नहीं आता, आप समाचार चैनलों पर भी ब्रेक के दौरान विज्ञापनों की भरमार देख सकते हैं। यही नहीं, समाचारों के दौरान कार्यक्रम के नीचे विज्ञापनों की एक पट्टी चलती रहती है। सभी चैनल अपनी आमदनी बढ़ाने के लिए टी.आर.पी. की होड़ में शामिल हैं, ताकि उन्हें ज्यादा से ज्यादा विज्ञापन मिलें। भारत में क्रिकेट ने धर्म के बराबर का दर्जा हासिल कर लिया है। भारत में इसके असंख्या दर्शक हैं। भारत 1970 के दशक में एक दिवसीय क्रिकेट की अच्छी लोकप्रियता के बाद टी–20 क्रिकेट और इण्डियन प्रीमियर लीग (आई.पी.एल.) खेलों का बादशाह बन चुका है। आई.पी.एल. प्रसारकों की शानदार आमदनी का अच्छा जरिया भी है। इसलिए इन मैचों के प्रसारण अधिकार हासिल करने के लिए कम्पनियों में होड़ लगी रहती है और वो इसके लिए कितनी भी कीमत चुकाने के लिए तैयार रहते हैं। भारत में टेलीविजन ऐसे खेलों के प्रसार और लोकप्रियता का वाहक बन गया है।

टेलीविजन पर कई बार फिल्मों का भी प्रसारण किया जाता है। अब तो फिल्मों के लिए अलग से चैनल भी बन गए हैं, जो चौबीसों घंटे फिल्मों का प्रसारण करते हैं। ये चैनल केवल पुरानी फिल्में ही नहीं दिखाते, बल्कि कई बार नई फिल्मों का प्रसारण भी करते हैं। आमतौर पर नई फिल्में सिनेमाघरों में रिलीज होने के काफी समय बाद टेलीविजन पर प्रसारित की जा सकती थीं, लेकिन अब इस समय अन्तराल में काफी कमी आई है और कई बार तो सिनेमाघरों में रिलीज होने के एक माह बाद ही फिल्मों का टेलीविजन पर प्रसारण हो जाता है। इससे टेलीविजन की लोकप्रियता और ज्यादा बढ़ गयी है। डी.टी.एच. और हाई डेफिनिशन (एच.डी.) क्वालिटी ने टेलीविजन पर फिल्म देखने का आनन्द बढ़ा दिया है। इसके अलावा टेलीविजन का स्क्रीन साइज बढ़ने से भी फिल्म देखने का आनन्द और भी बढ़ गया है। कई परिवार अब अपने घरों पर ही होम थियेटर बनवा रहे हैं ताकि घर बैठे सिनेमाघर का आनन्द लिया जा सके।

सांस्कृतिक तौर पर देखा जाए तो टेलीविजन वास्तव में दिन–प्रतिदिन बढ़ते वैश्विक संयोजन (जुड़ाव) को दिखा रहा है। इसने दुनिया को समेट कर एक वैश्विक गाँव बना दिया है। एक न्यूज चैनल द्वारा 1990 में खाड़ी युद्ध का सीधा प्रसारण किया गया था, तब से चौबीसों घण्टे चलने वाले समाचार चैनलों की बाढ़ आ गई है। ये चैनल आमतौर पर समाचारों को सनसनीखेज बनाने में विश्वास रखते हैं। अब तो भारतीय टेलीविजन के धारावाहिक भी कई देशों में देखे और पसंद किये जाने लगे हैं।

उपग्रह (सेटेलाइट) टेलीविजन अनेक प्रकार के चैनल और सेवायें प्रदान करते हैं। ये टेलीविजन उन क्षेत्रों को सेवायें प्रदान करते हैं, जहाँ स्थलीय अथवा केबल टीवी सेवायें उपलब्ध नहीं हैं। सैटेलाइट टेलीविजन के समर्थक और आलोचक दोनों हैं। समाज पर इनका सृजनात्मक तथा साथ ही खराब प्रभाव भी पड़ता है। जहाँ तक सकारात्मक प्रभाव का सम्बन्ध है, ये अनुदेशात्मक समाचार देकर दर्शकों को अपने बचाव के लिए तैयार रहने की चेतावनी देता है। साथ ही यह व्यावहारिक शिक्षा, सूचना और संचार के एक साधन के रूप में भी कार्य करता है। इसके फलस्वरूप हम जीवनकाल के दौरान स्मरणीय घटनाक्रमों से सीख ले सकते हैं। जीवन की अनेक बातों के बारे में बेहतर जानकारी से जिन्दगी अच्छी गुजरती है। टेलीविजन जनसाधारण के मनोरंजन का भी साधन है। भागम–भाग तथा तनाव से भरी जिन्दगी में मनोरंजक कार्यक्रम लोगों के लिए विरेचक (मन को शान्ति देने वाला पदार्थ) का काम करते हैं। जहाँ तक इसके नकारात्मक प्रभाव का सम्बन्ध है, टेलीविजन पर दिखाया जाने वाला अनावश्यक सेक्स और हिंसा युवाओं के संवेदनशील मन पर अनैतिक प्रभाव डालती है। विज्ञापनदाताओं और प्रायोजकों का उद्देश्य अधिक से अधिक मुनाफा कमाना होता है और टेलीविजन की पहुंच और प्रभाव उन्हें इसका पूरा उपयोग करने का लालच देता है, इसलिए टेलीविजन निरंकुश व्यवसायीकरण का औजार बन गया है। इसके अलावा हमें काल्पनिक दुनिया की सैर कराने वाले इस मीडिया को, विज्ञापन तथा प्रायोजकता की दुनिया और कारोबारी घराने अपने इशारों पर नचाते हैं।

सार–संक्षेप यह है कि टेलीविजन ने समाज में अनेक तरह के बदलाव ला दिये हैं।

अभ्यास : सही अथवा गलत

1. प्रारम्भ में केवल दूरदर्शन चैनल ही लोगों को उपलब्ध था।
2. टी.आर.पी. से तात्पर्य टेलीविजन रेटिंग प्वाइंट है।
3. 1980 और 1990 के दशक में **रामायण** और **महाभारत** दो लोकप्रिय धारावाहिकों के प्रसारण ने टेलीविजन दर्शकों की संख्या में अत्यन्त वृद्धि की।
4. एक प्रश्नोत्तरी कार्यक्रम की महानायक श्री अमिताभ बच्चन द्वारा की गई एन्करिंग ने टेलीविजन उद्योग के कार्यक्रम तैयार करने के तरीकों में क्रान्ति ला दी।

उत्तर : 1. सही 2. गलत 3. सही 4. सही

2.4.5. इन्टरनेट

इन्टर–कनेक्टेड (परस्पर जुड़े) कम्प्यूटर नेटवर्कों की वैश्विक प्रणाली को इन्टरनेट कहते हैं। यह दुनिया के अरबों लोगों की जरूरत पूरी करता है। यह असंख्य सूचना स्रोतों और सेवाओं, जैसे कि वर्ल्ड वाइड वैब *(www)* का वाहक ही नहीं है, बल्कि इसके पास ई–मेल सेवा प्रदान करने की बुनियादी सुविधा भी उपलब्ध है। वॉयस ओवर इन्टरनेट प्रोटोकॉल (VOIP) और इन्टरनेट प्रोटोकॉल टेलीविजन (आई.पी.टी.वी.) के आगमन से संचार व्यवस्था में आमूल परिवर्तन आ गया है। इसने तत्काल संदेश भेजने (इन्स्टैन्ट मैसेजिंग) इन्टरनेट फोरम और सोशल नेटवर्क की सुविधा के जरिये परस्पर–सम्पर्क का एक कारगर साधन उपलब्ध कराया है। ऑनलाइन शॉपिंग ने कारोबारी क्षेत्र को एक नया आयाम दिया है। हालांकि 1960 के दशक में अमरीका में इन्टरनेट की शुरूआत हुई थी, लेकिन 1990 के दशक में इस नेटवर्क के व्यावसायिक उपयोग से इसकी पहुंच और लोकप्रियता में वृद्धि हुई। आज अरबों लोग इन्टरनेट सेवा का उपयोग कर रहे हैं। पूरे विश्व में संस्कृति को एक नया रूप देने में इन्टरनेट का अपना योगदान रहा है। मानव समाज के प्रत्येक पहलू के बारे में इन्टरनेट पर सूचना का अपार भण्डार है। यह विभिन्न लोगों को अनेक जानकारियाँ प्रसारित करके शिक्षित

करता है। ई–मेल, स्काइप, याहू मैसेन्जर आदि के आगमन ने दूरियों को इस कदर घटा दिया है कि दो अलग–अलग महाद्वीपों पर बसे लोग एक दूसरे से बात कर सकते हैं, उन्हें देख सकते हैं। इन्टरनेट ने अध्यापन और अधिगम (लर्निंग) के तरीकों में नए पहलू जोड़े हैं। उच्च स्तर की शिक्षा के लिए अध्ययन सामग्री, आभासी विश्वविद्यालय (वर्चुअल युनिवर्सिटी) और इन्टरनेट ट्यूशन जैसे साधन इस मीडिया पर उपलब्ध हैं। फैशन, संगीत, फूड आइटम, पोशाक तथा विभिन्न देशों की संस्कृतियों के बारे में व्यापक जानकारी की उपलब्धता के चलते विभिन्न संस्कृतियों के बीच सहनशीलता बढ़ी है। इन्टरनेट पर विचारों का, ज्ञान का और विभिन्न प्रकार के कौशल का आनन–फानन में लेन–देन किया जा सकता है और इस पर लागत भी मामूली सी आती है। इस सुविधा से मिल–जुल कर काम करना अत्यंत आसान हो गया है।

रिक्त स्थान भरें।

1. दुनिया के अरबों उपयोगकर्ताओं की जरूरतों को पूरा करने के लिए इन्टरनेट इन्टरकनेक्टेड (परस्पर जुड़े) ..... नेटवर्क्स की वैश्विक प्रणाली है।
2. ..... असंख्य प्रकार की सूचनाओं के स्रोतों का वाहक है और इस पर ई–मेल का समर्थन करने वाली बुनियादी सुविधा उपलब्ध है।
3. वॉयस ओवर इन्टरनेट ..... (VOIP) तथा इन्टरनेट ..... टेलीविजन (आई.पी.टी. वी.) ने संचार के क्षेत्र में क्रान्ति ला दी है।
4. इन्टरनेट ने तत्काल संदेश भेजने (इंस्टैन्ट मैसेजिंग), इन्टरनेट फोरम और ..... नेटवर्किंग की सुविधा के जरिये परस्पर–सम्पर्क का एक कारगर साधन उपलब्ध कराया है।
5. ऑनलाइन ..... ने व्यवसाय क्षेत्र को एक नया आयाम दिया है।

2.4.6 मीडिया में महिलाओं का चित्रण

मीडिया में महिलाओं का चित्रण एक सर्वाधिक उल्लेखनीय पहलू रहा है। यह पहलू समाज में महिलाओं के दर्जे से जुड़ा है। फिल्मों, टेलीविजन धारावाहिकों, विज्ञापनों और यहाँ तक कि प्रिन्ट मीडिया में महिलाओं का जिस तरीके से चित्रण किया जाता है, उससे समाज में महिलाओं को उपभाग की वस्तु समझने के बारे में बुनियादी सवाल पैदा होते हैं। फिल्मों में महिलाओं का चित्रण फिल्म की विषय–वस्तु के आधार पर बदलता रहता है और यह फिल्म की शैली पर निर्भर करता है। पौराणिक फिल्मों में महिला का चित्रण एक ऐसी नारी के रूप में किया जाता है, जो कर्तव्यपरायण है, धार्मिक है, आज्ञाकारी है और परिवार की सम्मानजनक छवि की संरक्षक है, साथ ही पालन–पोषण करने वाली माँ और पत्नी है, वहीं दूसरी तरफ जब उसके परिवार पर खतरा मंडराये तो वह दुर्गा या काली है। उसका व्यवहार और सोच सामाजिक संदर्भ में पितृसत्तात्मक अपेक्षाओं के अनुरूप होना चाहिये। फिल्मों और टेलीविजन धारावाहिकों में आमतौर पर महिलाओं का चित्रण दो प्रकार का होता है, पहला – एक ऐसी आदर्श हिन्दू महिला, जो आज्ञाकारी है, दब्बू है, घर की देखभाल के प्रति समर्पित है, प्रथाओं और परम्पराओं की वाहक है। दूसरा – एक ऐसी महिला जो केवल अपना हित देखती है, स्वार्थी है, मोहिनी है, खुली सोच वाली और परिवार की स्थिरता के लिए खतरा है, पाश्चात्य शैली में सजती–धजती है और पुरुषों के सैक्सुअल वर्चस्व के लिए खतरा है। उसे इस तरह से चित्रित किया जाता है कि वह एक आदर्श महिला नहीं है, बल्कि एक ऐसी महिला है जो पथ–भ्रष्ट है। मध्यम वर्गीय राष्ट्रीय स्थिरता के प्रतीक के रूप में पारिवारिक स्थिरता के लिए, महिलाओं के इस प्रकार के चित्रण का मूल भाव अब भी बना हुआ है। परिवार के सम्मान को भी महिलाओं के आचरण से जोड़ा जाता है। टी.वी. धारावाहिकों में महिलाओं के

चित्रण पर नजर डालें, तो हम पाते हैं कि उन्हें षड़यंत्रों, विवाह पूर्व, विवाहेत्तर, गैर–कानूनी रिश्तों में शामिल दिखाया जा रहा है, वे सोने और हीरों से बने महंगे आभूषण पहनती हैं, अपने धार्मिक विश्वासों का प्रचार करती हैं, पारिवारिक विवादों में लिप्त रहती हैं, बड़ी–बड़ी पार्टियों में शामिल होती हैं, आलीशान घरों में रहती हैं, महंगी कारों में सैर करती हैं, कीमती मोबाइल रखती हैं, स्टाइलिश मेकअप करती हैं और केवल अपनी जिन्दगी और लाइफस्टाइल के अलावा किसी की चिन्ता नहीं करती। विज्ञापनों में महिलाओं का अश्लील चित्रण आम बात हो गई है। उन्हें उपभोग की वस्तु के रूप में परोसा जाता है या फिर उन्हें एक ऐसी गृहणी के रूप में चित्रित किया जाता है, जो कपड़े धोने, खाना बनाने, बर्तन मांजने तथा घर के अन्य कार्य करने जैसे कर्तव्य निभाती हैं। परिवार में उसका दर्जा दासी जैसा है। विभिन्न मीडिया में महिलाओं का इस प्रकार का चित्रण उनके अस्तित्व और सामाजिक स्तर, पुरुष प्रधान सत्ता के नियमों के अनुसार परिवार के पदानुक्रम में उनके दर्जे को दर्शाता है। उन्हें आपत्तिजनक रूप में चित्रित करना भी समाज की इस अयोग्यता का परिचायक है कि वह महिलाओं के हित में ऐसे मुद्दों का हल नहीं तलाश सका है।

समाचार पत्र बलात्कार, अपराध, राजनीतिक कार्यकलाप, किशोर अपराध, गप–शप, अर्थव्यवस्था, खेलकूद से जुड़े समाचारों को जगह देते हैं। महिलाओं से जुड़े मुद्दों पर विवेकपूर्ण चर्चा लगभग नदारद रहती है। समाचार पत्रों में महिला स्तम्भकार बहुत कम हैं। समाचार पत्रों में जगह पाने वाली ज्यादातर महिलायें या तो राजनीतिक अभियानों से जुड़ी हैं, या फिर रईस घरानों (सोशलाइट्स) हैं। अनेक स्थानीय समाचार पत्रों में केवल रंगीन पृष्ठों पर ही महिलाओं का चित्रण होता है। ये पृष्ठ फिल्मी अभिनेत्रियों और टी.वी. नायिकाओं के बारे में गपशप से भरे होते हैं और साथ ही इन फिल्मी, टी.वी. सितारों के चमकदार अश्लील छायाचित्र छपे होते हैं। अंग्रेजी के अखबारों में अलग से एक ऐसा परिशिष्ट होता है, जिसमें पेज–3 सेलिब्रिटीज़ द्वारा होटलों या विशाल बंगलों पर आयोजित पार्टियों के अश्लील चित्र और इन पार्टियों में शामिल युवक–युवतियों के फोटो होते हैं। यहाँ तक कि खिलाड़ियों के फोटो भी इस तरह चित्रित किये जाते हैं कि उनमें उनका शारीरिक आकर्षण नजर आए। इन हालातों में महिलाओं का अश्लील चित्रण और बढ़ता है।

लेकिन इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि भारत में जीवन के प्रत्येक पहलू में महिलाओं की सहभागिता और फैसले लेने की क्षमता विगत की तुलना में बढ़ी है, लेकिन महिलाओं की स्थिति के बारे में आम–धारणा में बहुत ज्यादा सुधार की आवश्यकता है। भारतीय मीडिया में महिलाओं का चित्रण मूलतः लापरवाही भरा और अभद्र है। ऐसी सोच और व्यवहार को बदलने की जरूरत है। इस प्रकार की प्रस्तुति को बदलने के सामूहिक प्रयासों की आवश्यकता है। महिलाओं के चित्रण से जुड़े बेसुरेपन पर फिर से विचार करने की आवयकता है, ताकि एक समतावादी और सभ्य समाज का निर्माण किया जा सके।

अभ्यास : रिक्त स्थान भरें।

1. अनेक स्थानीय समाचार पत्रों में महिलाओं का ..... केवल रंगीन पृष्ठों पर किया जाता है, जो फिल्मी अभिनेत्रियों और टी.वी. नायिकाओं के बारे में गपशप से भरे होते हैं और साथ ही इनमें कुछ चमकदार और ..... छायाचित्र छपे होते हैं।
2. अंग्रेजी ..... होटलों और विशाल बंगलों में ..... सेलेब्रिटीज़ द्वारा आयोजित पार्टियों के उत्तेजक चित्र तथा इन पार्टियों में शामिल युवक–युवतियों के छायाचित्र उपलब्ध कराते हैं।
3. यहाँ तक कि ..... के छायाचित्र भी इस तरीके से प्रस्तुत किये जाते हैं कि उनमें इन खिलाड़ियों का शारीरिक आकर्षण नजर आये।

4. महिलाओं के चित्रण से जुड़े ..... पर गम्भीरता से पुनः विचार करने की आवश्यकता है ताकि एक समतावादी और सभ्य समाज का निर्माण किया जा सके।

2.4.7 सोशल मीडिया

मरियम वेबस्टर डिक्शनरी के अनुसार ''अनेक प्रकार के इलेक्ट्रॉनिक कम्यूनिकशेन'' (सोशल नेटवर्किंग की वेबसाइट और माइक्रो–ब्लॉगिंग) को सोशल मीडिया कहते हैं। इसके द्वारा यूजर सूचनाओं, विचारों, व्यक्तिगत संदेशों और अन्य विषय–वस्तुओं (जैसे कि वीडियो) के आदान–प्रदान के लिए ऑनलाइन समुदाय (कम्यूनिटी) बनाते हैं। हालिया वर्षों ने सोशल मीडिया या सोशल नेटवर्किंग मीडिया अत्यन्त लोकप्रिय हो चला है। संदेश प्राप्त करने और संदेश भेजने के तौर पर यह बहुत बड़ा बदलाव लाया है।

सोशल मीडिया ने जनसंचार की मौजूदा लहर को पूरी तरह नया स्वरूप दे दिया है। अब यह 'गिने–चुने की बजाय अनेक' कम्यूनिकेशन बन चुका है। यह अब ''एक साथ अनेकों से अनेकों को'' वाली संचार प्रणाली बन गया है। यदि आपका मीडिया एकाउण्ट है, तो आप पूरी दुनिया से बात कर सकते हैं। चूंकि बातचीत मोबाइल या स्मार्ट फोन से होनी है, आप पूरे विश्व में कहीं भी सम्पर्क कर सकते है और ये मोबाइल या स्मार्ट फोन तो हमेशा आपके पास रहता है। यह एक ऐसा सर्वाधिक समतावादी मीडिया है, जिसमें कोई भी व्यक्ति दुनिया से सम्पर्क कर सकता है और उसे उत्तर भी तुरन्त मिलेगा। लेकिन संचार विशेषज्ञ इसमें पहरेदारी (गेट–कीपिंग) की कमी को एक समस्या मानते हैं, और यह सोशल मीडिया के लिए एक चुनौती है। फेसबुक, यू–ट्यूब, ट्विटर, इन्स्टाग्राम, माइस्पेस, लिंकेडिन आदि जैसी सोशल नेटवर्किंग साइट्स तथा ब्लॉग और वर्डप्रेस जैसी ब्लॉगिंग साइट्स तथा व्हट्सएप जैसे सोशल मीडिया एप्लीकेशन सोशल नेटवर्किंग मीडिया के उदाहरण हैं।

2.5 प्रसारण मीडिया

सूचना और प्रसारण मंत्रालय प्रेस, प्रकाशन, रेडियो, फिल्म, टेलीविजन, विज्ञापन मीडिया तथा नृत्य एवं नाटक जैसे पारम्परिक मोड के माध्यम से सूचना के प्रचार–प्रसार में अहम भूमिका निभाता है। यह समाज के सभी क्षेत्रों में ज्ञान तथा मनोरंजन के प्रसार को बढ़ावा देता है। सूचना और प्रसारण मंत्रालय सूचना, प्रसारण, प्रिंट मीडिया तथा सिनेमा से सम्बन्धित नियम, दिशा–निर्देश और कानून बनाने वाला और इन्हें लागू करने वाला सर्वोच्च संगठन है। सूचना और प्रसारण मंत्रालय निम्नलिखित सेवायें प्रदान करता है –

- आकाशवाणी (एआईआर) और दूरदर्शन (डीडी) के माध्यम से समाचार सेवायें।
- भारत सरकार की कार्यनीतियाँ प्रस्तुत करने के लिए प्रेस से सम्बन्धों की व्यवस्था।
- प्रसारण और टेलीविजन का विकास।
- फिल्मों का आयात–निर्यात।
- फिल्म उद्योग का विस्तार और प्रगति।
- फिल्म समारोहों और सांस्कृतिक आदान–प्रदान का आयोजन।
- भारत सरकार की तरफ से विज्ञापन एवं दृश्य प्रचार।
- लोकहित से जुड़े मुद्दों के बारे में सूचना/प्रचार अभियान चलाने के लिए

परस्पर–सम्पर्क की संचार प्रणाली और पारम्परिक लोक कलाओं का उपयोग।

- राष्ट्रीय महत्व से सम्बन्धित मुद्दों पर पुस्तक–पुस्तिकाओं के प्रकाशन द्वारा देश में तथा देश के बाहर सूचनाओं का प्रसार।
- मंत्रालय की मीडिया इकाइयों की सहायता के लिए अनुसंधान, संदर्भ और प्रशिक्षण, ताकि वे अपने कर्तव्य निभा सकें।

2.6 सूचना और प्रसारण मंत्रालय की मीडिया इकाइयाँ

1. प्रकाशन प्रभाग
2. इलेक्ट्रॉनिक मीडिया अनुश्रवण केन्द्र
3. फोटो प्रभाग
4. फिल्म प्रभाग
5. फिल्म समारोह निदेशालय
6. पत्र सूचना कार्यालय
7. ब्यूरो ऑफ आउटरीच कम्यूनिकेशन
8. भारत के समाचार पत्रों के पंजीयक
9. न्यू मीडिया विंग

2.7 सूचना क्रान्ति

भारत में सही मायनों में तकनीकी रूप से सूचना क्रान्ति हाल ही की देन है। उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण (एलपीजी) के पदार्पण ने भारत के आर्थिक ढांचे में बहुत से बदलाव किये हैं। इनसे अनेक क्षेत्रों में निजी निवेश का रास्ता साफ हुआ है। सरकार ने पिछले कुछ वर्षों में सार्वजनिक क्षेत्र की अनेक कम्पनियों में विनिवेश कर इन्हें निजी हाथों में सौंपा है।

ऑक्सफोर्ड लिविंग डिक्शनरी के अनुसार– ''प्रचुर मात्रा में सूचना की उपलब्धता और कम्प्यूटर के उपयोग के चलते इसके भण्डारण और प्रसारण में आए बदलाव'' ही सूचना क्रान्ति है।

इस नजरिये से देखा जाय तो हमारे दैनिक कार्यों में कम्प्यूटर के बहुत से अनुप्रयोग हैं। साथ ही कम्प्यूटर के अनुप्रयोग द्वारा अनेक तरीकों से अनेक सूचनाओं का प्रसारण किया जाता है। कुशलता, समय की बचत और आसानी से कार्य–निष्पादन के मामले में इस क्रान्ति से बहुत से बदलाव आये हैं। शॉपिंग मॉल, रेस्तराँ, डिपार्टमेंटल स्टोर आदि में बिल बनाने, ट्रेन, बस और हवाई यात्रा के लिए टिकट बुक कराने, सिनेमा हॉल के टिकट बुक कराने और ऑनलाइन शॉपिंग में कम्प्यूटरों का इस्तेमाल होता है। आमतौर पर देखा जाय, तो ये हमारे जीवन के हर पहलू से जुड़ा है। स्कूल और कॉलेजों के छात्रों को शिक्षा प्रदान करने में इनका उपयोग होता है। भारत के अनेक कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में कम्प्यूटर शिक्षा से जुड़े अनेक पाठ्यक्रम पढ़ाए जाते हैं। भारत सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अग्रणी देशों की गिनती में शुमार है।

अस्पतालों में मरीजों और अन्य सेवाओं के आंकड़े रखने, सर्विस वर्कशॉप में भेजे गए वाहनों का रिकॉर्ड रखने, कैमिस्ट शॉप में दवाइयों के बारे में सूचना रखने, इन्टरनेट बैंकिंग, मोबाइल बैंकिंग और फोन बैंकिंग से जुड़ी सेवायें उपलब्ध कराने के लिए भी कम्प्यूटरों का उपयोगा होता है। शेयर बाजार में शेयरों की ऑनलाइन खरीद–फरोख्त और साथ ही विज्ञापन उद्योग में एनीमेशन तथा ग्राफिक्स के लिए कम्प्यूटर इस्तेमाल होते हैं। सरकार के परिवहन कार्यालयों में रिकॉर्ड रखने तथा ड्राइविंग

लाइसेंस आसानी से तैयार करने में इनका प्रयोग होता है। लाइब्रेरी में पुस्तकों का कैटेलॉग तैयार करने में भी इनका उपयोग होता है। इससे पाठकों को पुस्तक चुनने में आसानी होती है।

सार संक्षेप यह है कि हमारे जीवन का कोई भी पहलू इनसे अछूता नहीं है। मोबाइल फोनों के आगमन और इस क्षेत्र में व्यापक सुधार ने इस सैक्टर को पूरी तरह आन्दोलित कर दिया है। आजकल मोबाइल केवल टेलीफोन ही नहीं है, यह कैमरा, कैलकुलेटर, घड़ी, राइटिंग पैड, सोशल मीडिया हैण्डलर, ई–मेल भेजने वाला कम्प्यूटर, आदि सब कुछ है। मोबाइल फोन अथवा सभी प्रकार के एप्लीकेशन और तकनीकी विशेषताओं से युक्त स्मार्ट फोन ने सूचना प्रौद्योगिकी में क्रान्ति ला दी है।

भारत के संदर्भ में सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आई क्रान्ति का उपयोग ग्रामीण क्षेत्रों में भी किया जाना चाहिये, ताकि गाँव भी इस क्रान्ति की तर्ज पर स्वयं को ढाल सकें। इसके उपयोग की गाँवों में बहुत गुंजाइश है और साथ ही औद्योगिक तथा सेवा क्षेत्रों को और ज्यादा पेशेवर तरीके से सम्भालने की भी जरूरत है।

अंत में हम कह सकते हैं कि सूचना प्रसारण, मनोरंजन और शिक्षा प्रदान करने के मामले में प्रिंट और इलैक्ट्रॉनिक मीडिया ने जबर्दस्त योगदान दिया है। मीडिया को आमूल बदलने में प्रौद्योगिकी ने उल्लेखनीय और अहम भूमिका निभाई है। अर्थव्यवस्था के उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण (एलपीजी) ने भी अर्थव्यवस्था के अनेक कारोबारों और सैक्टरों के लिए नये रास्ते खोले हैं। कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी में प्रगति ने भारत में सूचना क्रान्ति को सहज बनाया है। अभिनव फीचरों से युक्त स्मार्ट फोन, आई–पैड, विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म उपकरणों (नैनों–डिवाइसेज़) का आगमन एक ऐसी घटना है, जो प्रौद्योगिकी क्षेत्र में निरन्तर घटित हो रही है।

अभ्यास : सही अथवा गलत

1. ऑक्सफोर्ड लिविंग डिक्शनरी के अनुसार ''प्रचुर मात्रा में सूचना की उपलब्धता और कम्प्यूटरों के उपयोग के चलते इसके भण्डारण और प्रसारण में आए बदलाव'' ही सूचना क्रान्ति है।
2. भारत के कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में कम्प्यूटर शिक्षा के बारे में कोई पाठ्यक्रम नहीं पढ़ाया जाता है।
3. पुस्तकालयों में पुस्तकों के कैटलॉग तैयार करने के लिए कम्प्यूटरों का उपयोग किया जाता है, ताकि पाठकों के लिए पुस्तक चुनना आसान हो सके।

उत्तर : 1. सही 2. गलत 3. सही

2.7 संदर्भ ग्रन्थ

- कुमार, केवल जे, **मास कम्यूनिकेशन इन इण्डिया,** सेगे, नई दिल्ली
- जोशी, उमा, **टैक्स्ट बुक ऑफ मास कम्यूनिकेशन एण्ड मीडिया स्टडीज,** अनमोल पब्लिकेशन्स प्रा0लि0।
- देशपाण्डे, अनिरूद्ध एड., **बीसवीं सदी के इतिहास में कुछ प्रमुख मुद्दे,** हिन्दी माध्यम, निदेशालय द्वारा प्रकाशित, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2013।
- इण्ट्रोडक्शन टू इलेक्ट्रॉनिक मीडिया कम्पलीमेंट्री कोर्स ऑफ बी.ए. इंग्लिश फर्स्ट सेमेस्टर (सी.यू.सी.बी.सी.एस.एस.–2014 एडमीशन) यूनिवर्सिटी ऑफ कालीकट, स्कूल ऑफ डिस्टेंस एजूकेशन, कालीकट यूनिवर्सिटी, पो.ऑ. मल्लपुरम, केरल, भारत।

- रंगूनवाला, फिरोज, **75 इयर्स ऑफ इण्डियन सिनेमा,** इण्डियन बुक कम्पनी, दिल्ली, 1975।
- **योजना,** नवम्बर, 1995।
- मिश्रा, दीपांजलि, **पोर्टेयल ऑफ वूमन इन मीडिया,** जर्नल ऑफ हायर एजूकेशन एण्ड रिसर्च सोसायटी : ए रेफरीड इन्टरनेशनल आई.एस.एस.एन. 2349–0209 वॉल्यूम्स/इश्यू–2, अक्टूबर, 2015।

2.8 अनुशंसित पुस्तकें

- फैरो इन **"फिल्म ऐज ऐन एजेंट, प्रोडक्ट एण्ड सोर्स ऑफ हिस्ट्री"** (जर्नल ऑफ कन्टैम्परेरी हिस्ट्री), 18, 1983।
- बलवंत गार्गी, **थिएटर इन इण्डिया,** थियेटर आर्ट बुक द्वारा प्रकाशित, 1962।
- ब्रिग्स आसा एण्ड कैल्विन, पैट्रिशिया–**मॉडर्न यूरोप, 1789**–प्रेसेन्ट, पीयरसन एजूकेशन लिमिटेड, दिल्ली, 2003।

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत में प्रिन्ट मीडिया पर एक टिप्पणी लिखें।
2. भारत में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया पर निबन्ध लिखें।
3. फिल्मों को संचार के माध्यम के रूप में किस प्रकार देखा जा सकता है, चर्चा करें।
4. भारत में सूचना क्रान्ति से आप क्या समझते हैं ?
5. मीडिया में महिलाओं के चित्रण पर एक टिप्पणी लिखें।
6. प्रसारण मीडिया के विभिन्न प्रकारों का विवरण दें।
7. सोशल मीडिया पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।

ब्लॉक तीन

इकाई तीनः समकालीन भारत की चुनौतियाँ

3.1 परिचय

3.2 उद्देश्य

3.3 आर्थिक चुनौतियाँ

3.4 महिलाओं की स्थिति

3.5 भारतीय लोकतंत्र

3.6 पर्यावरण अवक्रमण और प्रदूषण

3.7 आतंकवाद

3.8 भ्रष्टाचार

3.9 राष्ट्रीय एकता

3.10 साम्प्रदायिकता

3.11 नशे की लत

3.12 उपसंहार

3.13 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.14 अनुशंसित साहित्य

3.15 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 परिचय

इस यूनिट का उद्देश्य समकालीन भारत में उभरी कुछेक महत्वपूर्ण चुनौतियों पर चर्चा करना है। इस यूनिट में न केवल इन चुनौतियों का वर्णन करने बल्कि इन्हें इनके ऐतिहासिक संदर्भ में स्थापित करने का भी प्रयास किया गया है। ये चुनौतियाँ और इनसे निपटने के तरीके इस यूनिट के केन्द्र बिन्दु रहेंगे।

समकालीन भारत की सामान्य समझ से भी आपको इस जानकारी को एक खास तरीके से प्रमाणित करने में सहायता मिलेगी। ऐतिहासिक घटनाक्रमों के बारे में आपकी पूर्व–समझ को, एक सैद्धान्तिक और व्यावहारिक फ्रेमवर्क प्रदान करने के लिए इन चुनौतियों पर विचार–विमर्श किया गया है।

चूंकि इनमें से अनेक चुनौतियाँ समकालीन राजनीति, अर्थनीति, समाज और संस्कृति के लिए प्रासंगिक मुद्दों से जुड़ी है, अतः उम्मीद है कि विद्यार्थीगण इन चुनौतियों को तत्कालीन परिस्थितियों से जोड़ सकेगें। इसके अलावा, संसाधनों और अवसरों की अत्यन्त कमी के बावजूद भारत में सकारात्मक घटनाक्रमों पर भी प्रकाश डालने का प्रयास किया जाएगा। यह समझना होगा कि लगभग 200 वर्षों के औपनिवेशिक शासन की वजह से भारतीय समाज, अर्थव्यवस्था, राजनीति तथा संस्कृति का अपस्रजन और अपकर्ष हुआ। यह ध्यान रखें, कि भारत को आजाद हुए अभी केवल 70 वर्ष हुए हैं और उसने अनेक क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति की है।

3.2 उद्देश्य

- समसामयिक या समकालीन भारत में गरीबी, बेरोजगारी, सूखा, भुखमरी, कुपोषण और किसानों की आत्महत्या जैसे आर्थिक मुद्दों पर विमर्श करना। समाज में विषमताओं पर चर्चा करना और समानता तथा सामाजिक न्याय के साथ विकास लक्ष्य हासिल करने की आवश्यकता बताना। साथ ही, एक चुनौती के रूप में निरक्षता के मुद्दे तथा हमारे देश के विकास में शिक्षा एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है, इस मुद्दे पर चर्चा करना।
- महिलाओं की सुरक्षा, घरेलू हिंसा, दहेज, महिलाओं के खिलाफ अपराध, महिलाओं अश्लील रूप से प्रदर्शित करने से जुड़ी समस्याओं आदि जैसे सर्वोच्च मुद्दों पर चर्चा करना। बच्चे तथा वृद्ध लोग जैसे कमजोर समूहों से जुड़े मुद्दों पर परिचर्चा करना।
- भारत में लोकतंत्र की भूमिका और संकटकालीन परिस्थितियों में देश के अस्तित्व को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले लोकतांत्रिक साधनों पर विचान–विमर्श करना।
- चूंकि ग्लोबल वार्मिंग या जलवायु परिवर्तन, नदियों में प्रदूषण, वनों की कटाई, जैसे मुद्दे न केवल वनस्पतियों और वन्य–प्राणियों की अनेक प्रजातियों के लिए बल्कि मानव–अस्तित्व के लिए भी खतरा बन गए हैं, अतः वर्तमान में पर्यावरण से जुड़ी समस्याओं का उल्लेख करना। हवा, पानी और ध्वनि प्रदूषण पर विचार–विमर्श करना। साथ ही, ऐसे मुद्दों की व्यापकता और इनके प्रति मानवीय संवेदनहीनता पर विचार करना।
- आतंकवाद और आतंकवादी गतिविधियों से जुड़े मुद्दों की व्याख्या करना। ऐसी गतिविधियों से निपटने और ऐसी परिस्थितियों में जनसाधारण की दुर्बलता पर चर्चा करना।
- भ्रष्ट व्यवहार से जुड़े अनियंत्रित भ्रष्टाचार और समस्याओं का विश्लेषण करना।
- वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में राष्ट्रीय एकता के मुद्दे और राष्ट्रीय एकता के लिए यह किस प्रकार एक चुनौती है, इस पर प्रकाश डालना।
- साम्प्रदायिकता तथा धार्मिक असहिष्णुता और यह प्रवृत्ति किस प्रकार समाज का समाधान–हीन विभाजन कर सकती है, इस पर चर्चा करना।
- नशे की लत से जुड़ी समस्याओं और समाज को इससे होने वाले नुक्सान के बारे में बताना।

3.3 आर्थिक चुनौतियाँ

भारत लगभम 200 वर्षों तक औपनिवेशिक शासन के आधीन रहा। औपनिवेशिक नीतियों ने भारतीय अर्थव्यवस्था की कमर तोड़ कर रख दी थी। इस शासन ने अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों, कृषि, उद्योग आदि के विकास को बाधित किया। इसने बेरोजगारी और बेकारी को जन्म दिया। बढ़ती गरीबी तथा अमीर और गरीब के बीच दिन पर दिन चौड़ी होती खाई, भूखमारी और कुपोषण का कारण बनी।

भारत में, बच्चों में कुपोषण खतरनाक स्तर पर है। यह भी पता लगा है कि किशोर आबादी भी कुपोषण का शिकार हो रही है।

किसानों के सामने एक और बड़ी चुनौती सूखा है। किसानों की मेहनत की कमाई कृषि कार्यों में खर्च हो जाना और फसल खराब हो जाने की वजह से खुद का पेट पालना भी मुश्किल हो जाना, भारतीय कृषि की एक और दुखद गाथा है। किसानों द्वारा आत्महत्या की बढ़ती संख्या कृषि क्षेत्र में खराब कार्य–योजना को दर्शाता है। हालांकि सरकार ने किसानों को ऋण उपलब्ध कराने के लिए अनेक स्कीमें शुरू की हैं। लेकिन इन कदमों का कार्यान्वयन एक ऐसा पहलू है, जिसकी गहराई से पड़ताल होनी चाहिए।

बढ़ती जनसंख्या से कृषि, खनिज, प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव बढ़ा है। इन संसाधनों को हासिल करने की होड़ में खींचा–तानी इसका उदाहरण है। संसाधनों की बरबादी तथा कुप्रबंधन भी काफी दबाव डालता है और तनाव तथा विवादों का कारण बनता है। संसाधनों का इष्टतम उपयोग सुनिश्चित करना, ताकि विवादों से बचा जा सके, एक बड़ी चुनौती है।

भारत की आजादी के समय देश में साक्षरता स्तर काफी कम था। शोषणकारी औपनिवेशिक सत्ता ने शिक्षा के ढांचे को तहस–नहस कर दिया था। आजादी के समय देश में गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा के संस्थानों की भारी कमी थी। भारत सरकार द्वारा तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आईआईटी) और भारतीय प्रबंध संस्थान (आईआईएम) खोले जाने से इन क्षेत्रों में थोड़ा सुधार हुआ। लेकिन ऐसे संस्थानों में दाखिले की मांग हमेशा अपेक्षाकृत ज्यादा बनी रही। सरकार ने और भी कई संस्थान खोले और यहाँ तक कि निजी क्षेत्र को भी शिक्षा में सहभागिता की अनुमति दी गई। पिछले कुछ समय से, चिकित्सा, अभियांत्रिकी (इंजीनियरिंग) और प्रबंधन (मैनेजमेंट) जैसे व्यावसायिक क्षेत्रों में निजी संस्थानों की भरमार से शिक्षा के स्तर में गिरावट आई। हद तो तब हुई जब इन संस्थानों से शिक्षा प्राप्त पेशेवर रोजगार पाने में असफल रहे। भारतीय उद्योगों की हमेशा शिकायत रही है कि उन्हें कुशल या हुनरमंद कामगार नहीं मिलते हैं, इसके बावजूद इन डिग्री–धारकों को उद्योगों में काम के काबिल नहीं माना गया। हांलिया वर्षों में, स्थिति इतनी खराब हो गई है कि इन संस्थानों को छात्र ही नहीं मिल रहे हैं। स्थिति सुधारने के लिए सुधारात्मक उपायों की जरूरत है। नीति–निर्माताओं और सरकार को चाहिए कि वह इस मुद्दे पर गम्भीरता से पुनर्विचार करे।

अभ्यास : सही या गलत।

1. भारत में, बच्चों में कुपोषण खतरनाक स्तर पर है।
2. किसानों में आत्महत्या की संख्या में वृद्धि, कृषि क्षेत्र में अच्छी कार्य–योजनाओं को दर्शाती है।
3. भारत की आजादी के समय देश में साक्षरता का स्तर काफी कम था।
4. भारत सरकार द्वारा व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आईआईटी) तथा भारतीय प्रबंध संस्थान (आईआईएम) खोले जाने के बाद कोई प्रगति नहीं हुई।

उत्तर : 1. सही 2. गलत 3. सही 4. गलत

3.4 महिलाओं की स्थिति

समाज में महिलाओं की स्थिति और सुरक्षा भी सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है। हालांकि, संविधान द्वारा महिलाओं को मताधिकार और मूल अधिकारों तथा दिशा निर्देशी सिद्धान्तों द्वारा समानता और स्वतंत्रता का अधिकार दिया गया है, इसके बावजूद समाज में उनकी स्थिति और ज्यादा सुधार की अपेक्षा

रखती है। आजादी के 70 वर्ष बाद भी वे सड़कों पर सुरक्षित नहीं हैं। दहेज की मांग और मांग पूरी न होने पर उनके खिलाफ हिंसा अनेक भारतीय महिलाओं के लिए एक दुखद कहानी है। पति और ससुराल पक्ष द्वारा महिलाओं के साथ हिंसा एक और मुद्दा है। जिस पर मनन करना आवश्यक है।

सिनेमा, टेलीविजन तथा मीडिया में महिलाओं को अभद्ररूप से प्रस्तुत करना, स्पष्ट नजर आता है। महिलाओं को पुरूषों के उपभोग की वस्तु के रूप प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार की प्रस्तुति और प्रदर्शन में तत्काल बदलाव लाने की जरूरत है, तभी जनसाधारण की सोच में बदलाव आयेगा।

नवजात कन्या की हत्या की कुप्रथा विगत में प्रचलित थी, इसकी जगह अब कन्या–भ्रूण हत्या ने ले ली है। प्रौद्योगिकी ने महिला हत्यारों को एक ऐसा हथियार दे दिया है, जिससे वे गर्भ में ही कन्या की हत्या कर देते है। इस संवेदनहीनता और नृशंसता के परिणाम–स्वरूप भारत के कई राज्यों में महिला–पुरूष अनुपात विकृत हो गया है। महिला–पुरूष अनुपात में गिरावट की वजह से पुरूषों को विवाह के लिए वधू नहीं मिल रही हैं। सरकार ने अस्पतालों और डिस्पेंसरियों में भ्रूण का लिंग बताने पर प्रतिबंध लगा कर इस दिशा में प्रयास किए हैं। इसे एक दण्डात्मक अपराध घोषित कर दिया गया है। इसके बावजूद, समाज में अनेक तत्व ऐसे शर्मनाक कृत्य में अभी भी शामिल हैं। एक दूसरी चुनौती, बच्चों और वृद्धों जैसे कमजोर समूहों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना है। भारत में बहुत से अनाथ बच्चे है। अनाथ बच्चे अपराधियों और असामाजिक तत्वों का आसानी से शिकार बन जाते हैं। उन्हें बहुत से अमानवीय कार्य करने के लिए मजबूर किया जाता है। गरीबी से ग्रस्त इन बच्चों से कम मजदूरी पर लम्बे समय तक काम कराया जाता है। इन बच्चों को प्यार, देखभाल, शिक्षा तथा फलने–फूलने के लिए बेहतर सुविधाओं की आवश्यकता है। हालांकि सरकार ने अनेक अनाथालय खोले है, लेकिन इससे समस्या का समाधान नहीं हुआ है। अनेक गैर–सरकारी संगठनों (एनजीओ) ने भी इस दिशा में शानदार कार्य किया है। कैलाश सत्यार्थी को ''बच्चों और किशोरों के दमन के खिलाफ संघर्ष तथा बच्चों के लिए शिक्षा के अधिकार'' हेतु 2014 में नोबेल पुरस्कार से सम्मनित किया गया है। बच्चों के अधिकार सुरक्षित करने में उनके उत्कृष्ट योगदान के लिए दिया गया यह सम्मान, इस क्षेत्र में कार्यरत असंख्य कार्यकर्ताओं के लिए प्रेरणा का स्रोत है। उनका बचपन बचाओ आन्दोलन प्रत्येक बच्चे का बचपन सुरक्षित करने की दिशा में एक कदम है।

एक दूसरी चुनौती है, वृद्धजनों की सुरक्षा सुनिश्चित करना। स्व–केन्द्रित परिवारों (न्यूक्लीयर फैमिलीज) के बढ़ते प्रचलन के कारण परिवार के वयोवृद्ध अपने आपको हाशिये पर पड़ा पाते है। कई बार, उन्हें अपना जीवन–बोझ स्वयं उठाना पड़ता है, क्योंकि उनके बच्चे उनके साथ नहीं रहते। इससे उनकी स्थित और ज्यादा नाजुक हो जाती है, क्योंकि उनमें अपनी रक्षा की क्षमता कम होती है। पुलिस तथा कुछ अन्य एजेंसियों ने ऐसे कार्यक्रम शुरू करने के प्रयास किए हैं, जिनके तहत इन वृद्धजनों पर किसी–न–किसी रूप में कुछ ध्यान दिया जाएगा नेबर–हुड वाच (पड़ोसी की निगरानी) ऐसा ही एक कार्यक्रम है। वृद्धजनों को आपराधिक तत्वों से बचाने के लिए, विभिन्न बस्तियों में क्लोज सर्किट टेलीविजन कैमरा (सीसीटीवी) लगाना भी इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

अभ्यास : सही या गलत।

1. दहेज की मांग और मांग पूरी न होने पर महिलाओं के खिलाफ हिंसा, अनेक भारतीय महिलाओं के लिए एक दुखद कहानी है।
2. सिनेमा, टेलीविजन तथा मीडिया में महिलाओं को अभद्र रूप से प्रस्तुत करना स्पष्ट नजर आता है।
3. नवजात कन्या की हत्या की कुप्रथा विगत में प्रचलित थी, इसकी जगह अब कन्या–भ्रूण हत्या ने ले ली है।

4. कैलाश सत्यार्थी को ''बच्चों और किशोरों के दमन के खिलाफ संघर्ष तथा बच्चों के लिए शिक्षा के अधिकार'' के लिए वर्ष 2014 में नोबेल पुरस्कार से सम्भावित किया गया था।

उत्तर : 1. सही 2. सही 3. सही 4. सही

3.5 भारतीय लोकतंत्र

भारतीय राजनीति का एक सबसे उल्लेखनीय पहलू इसकी लोकतांत्रिक व्यवस्था रहा है। इसलिए, भारतीय संदर्भ में, सबसे अधिक चुनौतीपूर्ण कार्य लोकतंत्र तथा लोकतांत्रिक परम्पराओं का संरक्षण है। अभी तक, इस संदर्भ में, शासन के सभी स्तरों पर भारत ने काफी परिपक्वता का परिचय दिया है। इसके वावजूद, स्वतंत्र सोच और अभिव्यक्ति के शत्रुओं द्वारा इन परम्पराओं को समाप्त करने का खतरा हमेशा बना रहा है। समाज के प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आवाज उठाने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में गहरा विश्वास और सभी को समान अवसर प्रदान करना लोकतांत्रिक परम्पराओं की आधारशिला है। लोकतंत्र को अमरीका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने नागरिकों की उस सरकार के रूप में व्यक्त किया था जो उस देश के नागरिकों द्वारा नागरिकों के लिए चुनी जाती है (ऑफ दी पीपुल, बाई दी पीपुल, फॉर दी पीपुल) लोकतांत्रिक परम्पराओं की आकांक्षा उस राष्ट्रीय आन्दोलन में देखी जा सकती है, जिसमें स्वतंत्रता सेनानियों ने औपनिवेशिक सत्ता से आजादी पाने के लिए संघर्ष किया था। संविधान में भारत को लोकतांत्रिक देश घोषित किया गया है। भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है। यह इस प्रकार की सरकार है जिसमें जनता द्वारा चुने गए जनप्रतिनिधि जनता पर शासन करते है और जहाँ जनता ही सर्वोच्च और सम्प्रभु है। चयन की आजादी लोकतंत्र की धुरी है।

लोकतंत्र निम्नलिखित परिस्थितियों पर निर्भर करता है (क) सभी विचारधाराओं और पार्टियों (दलों) का सह–अस्तित्व (ख) सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार (ग) स्वतंत्र संवाद और विचार–विमर्श का अधिकार तथा (घ) मुक्त और निष्पक्ष समयबद्ध (साइक्लिक) निर्वाचन,(ड) नागरिकों के लिए मूल–अधिकार होना।

भारतीय संविधान द्वारा देश को लोकतांत्रिक राष्ट्र घोषित किया गया है। भारत न्याय, उदारता, समानता तथा भ्रातृत्व की भावना से ओतप्रोत एक सम्प्रभु, समाजवादी धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणतंत्र बना। संविधान की प्रस्तावना, राज्य–नीति के दिशा निर्देशी सिद्धान्त, मूलभूत अधिकार और सार्वभौमिक (सभी को) मताधिकार संविधान निर्माताओं के आदर्शों तथा आकांक्षाओं को दर्शाते है। सभी को मताधिकार के आधार पर चुनाव कराए जाते है। सार्वभौमिक मताधिकार के अन्तर्गत, जाति, वर्ग, लिंग, नस्ल और धर्म के आधार पर बिना किसी भेदभाव के 18 वर्ष से अधिक आयु वाले सभी वयस्कों को मत (वोट) देने का अधिकार दिया गया है।

प्रचलन में लोकतंत्र

वयस्क मताधिकार पर आधारित सरकार के प्रतिनिध्यात्मक ढांचे की शुरूआत भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के लोकतंत्रीकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था। भारत की राजनीतिक प्रणाली एक बहुदलीय प्रणाली है। चुनावी मुकाबले में अनेक राजनीतिक दल भाग लेते हैं। ''पहले लक्ष्य पार करो'' (फर्स्ट पास्ट द पोस्ट) वाले इस चुनाव में वह प्रत्याशी जीवता है जिसे अन्य प्रत्याशियों की तुलना में ज्यादा वोट मिलते हैं। दूसरे शब्दों में, जिस प्रत्याशी को निर्वाचन क्षेत्र में सबसे ज्यादा वोट मिलते हैं, उसे विजेता घोषित किया जाता है, भले ही उस निर्वाचन क्षेत्र में कुल मतदान का प्रतिशत कुछ भी रहा हो। लेकिन, पिछले अनेक वर्षो से राजनीतिक दलों के कुछ प्रत्याशी (उम्मीदवार) भ्रष्टाचार और

अवसरवादिता में लिप्त हो गए हैं, इससे राजनीति का अपराधीकरण हुआ है। इससे कानून और व्यवस्था के लिए समस्या पैदा हुई है क्योंकि कानून तोड़ने वाले संसद और विधान सभाओं की सीटों के लिए चुनाव लड़ते है और इनके चुने जाने से प्रशासन और राजनीति को नुक्सान होता है।

सैद्धान्तिक रूप से, प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार और सुविधाऐं प्राप्त है लेकिन व्यवहार में ऐसा नहीं है क्योंकि सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में बहुत ज्यादा असमानता व्याप्त है। समाज में असमानता का एक प्रमुख कारण निरक्षरता है। अमीर ओर गरीब के बीच बहुत बड़ी खाई है। अर्थव्यवस्था उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण से जनसमुदाय में आर्थिक असमानता और बढ़ी है। अमीरों द्वारा गरीबों का शोषण एक वास्तविकता है। जहाँ सभी से समानता का व्यवहार हो, ऐसे सर्वनिहित लोकतंत्र के लिए, इन खामियों को दुरूस्त करना होगा।

निरक्षरता, संसाधनों का अभाव, गरीबी और पिछड़ेपन के बावजूद, भारत की राजनीतिक व्यवस्था ने सभी प्रकार के संकटों से निपटने और लोकतांत्रिक परम्पराओं के अनुरक्षण में असाधारण प्रतिकार क्षमता और लचीलेपन का परिचय दिया है।

राजनीतिक स्थिरता बनाए रखना, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की एक और अहम विशेषता रही है। 1970 के दशक के उथल–पुथल भरे वर्ष और 1989 से गठबंधन सरकारों का सिल–सिला भारतीय लोकतंत्र के लिए खतरे के संकेत दे रहा था। इस प्रकार के संकटों के बावजूद, राजनीतिक स्थिरता बनी रही है। भारत के नागरिकों ने संविधान और निर्वाचित सरकारों पर अपना विश्वास कायम रखा है।

सभी ने संविधान के बुनियादी सिद्धान्तों को स्वीकार किया है। साम्यवाद और सम्प्रदायवाद जैसी विभिन्न राजनीतिक विचाराधाराओं द्वारा भारतीय संविधान को दी गई चुनौतियों से भी संविधान की ताकत से निपटा गया है संविधान के बुनियादी ढांचे : सम्प्रभु, समाजवादी, धर्मनिर्पेक्ष, लोकतांत्रिक गणतंत्र की पुष्टि करने वाली प्रस्तावना (प्रीएम्बल) पर दृण विश्वास ही संविधान की ताकत है। भारतीय संविधान की सर्वोच्चता बनाए रखने में भारतीय न्याय पालिका की भूमिका और विशेषताएं भी प्रशंसनीय हैं।

अभ्यास : सही अथवा गलत।

1. अमरीकी राष्ट्रपति जॉर्ज वांशिगटन ने लोकतंत्र को नागरिकों की उस सरकार के रूप में व्यक्त किया था जो उस देश के नागरिकों द्वारा नागरिकों क लिए चुनी जाती है।
2. भारतीय राजनीतिक प्रणाली बहु–दलीय प्रणाली है।
3. संसद और विधान सभाओं के सदस्य ''पहले लक्ष्य पार करो'' प्रणाली के द्वारा चुने जाते हैं।
4. भारत हरित क्रान्ति के फलस्वरूप खाद्यान्न में आत्मनिर्भर बना।

उत्तर : 1. गलत 2. सही 3. सही 4. सही

अभ्यास : रिक्त स्थान भरें।

1. भारतीय राजनीति का एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहल, इसकी ..... व्यवस्था रहा है।
2. भारतीय ..... व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण विशेषता राजनीतिक स्थिरता बनाए रखना रहा है।
3. संविधान की प्रस्तावना इसके बुनियादी ढ़ांचे : सम्प्रभु, ..., धर्मनिर्पेक्ष .... गणतंत्र की पुष्टि करता है।

3.6 पर्यावरण अवक्रमण और प्रदूषण

भारत के संदर्भ में, पर्यावरण अवक्रमण एक ज्वलंत मुद्दा है। गर्मियों में बढ़ता तापमान इस बात का संकेत है कि जलवायु परिवर्तन तथा ग्लोबल वार्मिंग एक वास्तविकता है, इससे पृथ्वी गर्म हो रही है। भारत में वनों की कटाई भी पर्यावरण के प्रति भारत की उदासीनता का संकेत है। वनों की कटाई के खिलाफ 1973 में चिपको आन्दोलन की शुरूआत, भारत में पर्यावरण से जुड़ी प्रमुख चिन्ताओं की ओर ध्यान खीचने का एक प्रयास था। स्वतंत्र भारत में, सुन्दरलाल बहुगुणा, चण्डीप्रसाद भट्ट, मेघा पाटकर आदि जैसे अनेक कार्यकर्ता पर्यावरणीय सरोकारों का चेहरा बने है। पर्यावरण से सम्बन्धित विभिन्न विश्व–स्तरीय सम्मेलनों में भारत की सहभागिता लगातार बढ़ रही है। इसके वावजूद, पर्यावरण संरक्षण में संतोषजनक स्तर प्राप्त करने के लिए अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है।

प्रदूषण का बढ़ता स्तर, जिसमें वायु, जल, ध्वनि सब कुछ शामिल है, एक प्रमुख समकालीन चुनौती है। सभी जानते है ये सभी प्रकार के प्रदूषण बेताशा बढ़ रहे हैं। अनेक औद्योगिक शहरों और महानगरों में वायु की गुणवत्ता इस हद तक खराब हो गई है कि ऐसे क्षेत्रों में रहना अभिशाप बन गया है। युवाओं और वृद्धों के लिए यह जहरीली हवा स्वास्थ्य के लिए जोखिम बन गई है। अस्थमा जैसी सांस की बीमारी से ग्रस्त लोगों का जीना दूभर हो गया है। दिल्ली जैसे शहरों में, सड़कों पर वाहनों की संख्या कम करने के लिए सरकार को वाहनों की विषम–सम नम्बर प्लेट (ऑड–ईवन नम्बर प्लेट) स्कीम की शुरूआत करनी पड़ी। इससे पहले वायु प्रदूषण को रोकने के लिए शहर में चलने वाली कई फैक्ट्रियों को हटा दिया गया था। इन सबके बावजूद स्थिति नियंत्रण में नहीं है। 2017 में, वायु प्रदूषण इतने खतरनाक स्तर पर पहुँच गया था कि स्कूल बंद करने पड़े थे ताकि स्कूली बच्चे घरों से न निकलें। पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश में सर्दियों में फसल–अपशिष्ट को जलाने तथा वाहनों के प्रदूषित धूंए की वजह से हर वर्ष यह हालात बनते हैं।

वर्तमान भारत में जल प्रदूषण एक और बड़ी समस्या है। हमारे समाज में नदियों को पवित्र माना जाता है, लेकिन जनसाधारण और औद्योगिक इकाइयाँ जिस प्रकार इनका उपयोग करती है, उस पर पुनः गहराई से विचार करने की आवश्यकता है। भारत अपने बहुत से नागरिकों को स्वच्छ एवं शुद्ध पेयजल उपलब्ध नहीं करा पा रहा है। इन हालातों में, प्रत्येक नागरिक और सरकार का यह कर्तव्य हो जाता है कि इस मुद्दे के लिए कुछ सुनिश्चित कदम उठाए जाएं।

औद्योगिक इकाइयां अपना कचरा जल–निकायों (तालाबों, नदियों, झीलों आदि) में फेंक कर इन्हें प्रदूषित कर रही हैं। हालांकि, सरकार ने ''स्वच्छ यमुना'' और ''स्वच्छ गंगा'' जैसे अभियान शुरू करके इस समस्या से निपटने के लिए विविध कदम उठाए है, लेकिन इनके कोई बहुत उत्साहवर्धक परिणाम नहीं मिले है।

ध्वनि प्रदूषण एक अन्य प्रकार का प्रदूषण है। आम लोगों को इस पर भी गम्भीरता से विचार करना चाहिए। वाहनों द्वारा व्यग्रता से और बेवजह हॉर्न बजाना, लाउडस्पीकरों का बेतहाशा उपयोग और ध्वनि–स्तर के प्रति उदासीनता, चिन्ता के ऐसे ही कुछ विषय है, जिनसे निपटा जाना चाहिए।

अभ्यास : सही अथवा गलत।

1. दिल्ली जैसे शहर में, सड़कों पर वाहनों की संख्या कम करने के लिए वाहनों की विषम–सम नम्बर प्लेट (ऑड–ईवन नम्बर प्लेट) स्कीम की शुरूआत करनी पड़ी थी।
2. समकालीन भारत में जल–प्रदूषण कोई चुनौती नहीं हैं।
3. औद्योगिक इकाइयाँ अपना कचरा जल–निकायों (तालाब, नदियाँ, झील आदि) में फेंक कर इन्हें प्रदूषित करती हैं।

उत्तर : 1. सही 2. गलत 3. सही

3.7 आतंकवाद

वर्तमान समय में, आतंकवाद एक ऐसा मुद्दे है, जिसने सभी का ध्यान खींचा है। भारत और साथ ही पूरे विश्व में आतंकवादी हिंसा की बढ़ती घटनाओं ने सर्व–साधारण में असुरक्षा की भावना पैदा कर दी है। भारत में, आबादी तथा इसका घनत्व बहुत अधिक होने से, हालात कुछ ज्यादा ही जटिल हैं। सुरक्षा में ढ़ील, गरीबी तथा सुरक्षा अभियानों में टैक्नॉलॉजी का कम इस्तेमाल भी इस जटिलता के कारणों में शामिल हैं।

आतंकवादी हिंसा में अनेक सुरक्षा कर्मियों और नागरिकों को अपनी जान गंवानी पड़ी है। अलग–अलग समय में मुम्बई बम धमाके (1991), दिल्ली में बम विस्फोट, भारतीय संसद पर आतंकवादी हमला, मुम्बई के विक्टोरिया टर्मिनले स्टेशन, ताज होटल में आतंकवादी हिंसा जैसी हालिया आतंकवादी घटनाओं ने ऐसे कृत्यों से स्वयं देश की रक्षा करने में सरकार की क्षमताओं पर जनता के विश्वास को हिला दिया है।

सुरक्षा के मुद्दे के अलावा, अपने प्रियजनों की मृत्यु ने आतंकवादी हिंसा से पीड़ित परिवारों के जीवन में एक स्थाई शून्यता पैदा कर दी है। ऐसे भी कई मामले हैं, जहाँ आतंकवादी हिंसा में मारे गए लोग, अपने परिवार के एकमात्र कमाऊ सदस्य थे और अब इन परिवारों का भरण–पोषण कठिन हो गया है। संकट की इस घड़ी में इन परिवारों को सरकार द्वारा राहत न पहुँचा पाना भी आम होता जा रहा है। इन परिस्थितियों तथा इनसे उत्पन्न विपत्तियों से निपटने में नौकरशाही और पूरी प्रशासनिक व्यवस्था की अक्षमता, नागरिकों की सुरक्षा और कल्याण के संदर्भ में कार्यप्रणाली की लचर हालत दर्शाती है।

आतंकवादी हिंसा विषय पर आधारित अनेक फिल्मों का निर्माण हुआ है। **ए वेडनस डे (2008), बेबी (2015), फिज़ा (2000), ज़मीन (2008)** आदि ऐसी ही कुछ फिल्में हैं, जिन्हें लोगों ने खूब पसंद किया है। ये फिल्में आतंकवादियों और भारत को अस्थिर करने में जुटे उनके विदेशी आकाओं के बीच रिश्तों को उजागर करती हैं। आजकल यूरोप और अमरीका सहित दुनियाँ के अन्य हिस्सों में आतंकवादी हिंसा भी प्रमुख चिन्ता का कारण बनी है।

अभ्यास : रिक्त स्थान भरें।

1. भारत में, अधिक आबादी, आबादी का उच्च ..... सुरक्षा में ढील, गरीबी तथा सुरक्षा अभियानों में टैक्नॉलॉजी का ..... इस्तेमाल के कारण हालात अपेक्षाकृत जटिल हैं।
2. अलग–अलग समय पर ..... में बम धमाके (1993), दिल्ली में बम विस्फोट, भारतीय संसद पर आतंकवादी हमला और मुम्बई में ..... टर्मिनस स्टेशन तथा ताज होटल में आतंकवादी हिंसा आदि आतंकवादी कृत्यों के कुछ ताजा उदाहरण है।
3. ..... हिंसा विषय–वस्तु पर बनी कुछ फिल्में है **ए वेडनस डे (2008), बेबी (2015), फिजा (2000), ज़मीन (2003)** आदि।

3.8 भ्रष्टाचार

वर्तमान भारत में, सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार समाज के लिए एक और बड़ी चुनौती है। यह दलील दी जाती है कि भ्रष्टाचार की वजह से सबसे ज्यादा नुक्सान विकास को पहुँचता है। भारत के एक भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्व0 श्री राजीव गाँधी ने यह स्वीकार किया था कि सरकार द्वारा विकास पर व्यय किए गए एक रूपये में से सरकारी मशीनरी में भ्रष्टाचार की वजह से केवल रंच मात्र ही लक्षित

बिन्दु तक पहुँचता है। यह भारतीय सामाजिक जीवन का एक अभिशाप है। भ्रष्टाचार की वजह से भारत में कारोबार करना भी कठिन हो गया है। भारत में कारोबारी उद्यम शुरू करने में विलम्ब और बाधायें भी भ्रष्टाचार के मुद्दे से जुड़ी है। सरकारी एजेंसियों और दलालों के बीच मिली–भगत पारदर्शी और स्वच्छ प्रशासन के लिए खतरा है।

इसके अलावा, एजेंसियों द्वारा नागरिकों को बनी सेवाएं, इस प्रकार दी जाती हैं, जैसे उन पर एहसान किया जा रहा हो और इस अहसान का बदला लेना उनका हक है, जबकि ये सेवाएं प्राप्त करना नागरिक का हक है। ऐसे माहौल में भ्रष्टाचार पनपता है। इसके अलावा विभिन्न घोटालों और अपकृत्यों में राजनेताओं की संलिप्तता राजनीतिक प्रतिष्ठानों की कलंकित तस्वीर पेश करती है। न्यायपालिका के स्तर पर फैसलों में विलम्ब इस समस्या को और भी विकराल बना देता है। कहावत है – न्याय में विलम्ब भी न्याय वंचन के समान है।

अभ्यास : रिक्त स्थान भरें।

1. भारत के एक भूतपर्व प्रधानमंत्री ..... ने स्वीकार किया था कि, विकास पर व्यय किए गए एक रूपये का रंचमात्र ही लक्षित बिन्दु तक पहुँचता है और इसका कारण सरकारी एजेंसियों में व्याप्त भ्रष्टाचार है।
2. विभिन्न ..... और अपकृत्यों में राजनेताओं की संलिप्तता .... प्रतिष्ठानों की कलंकित तस्वीर पेश करती है।

3.0 राष्ट्रीय एकता

राष्ट्रीय एकता बनाए रखना एक महत्वपूर्ण चुनौती है। जैसा कि हम सभी जानने हैं, भारत अनेक–भाषाओं, अनेक–क्षेत्रों, अनेक–धर्मों, अनेक–जातियों, अनेक–संस्कृतियों वाला समाज है, इसलिए हर समय एकजुटता बनाए रखना थोड़ा कठिन हो जाता है। राष्ट्रीय एकता के लिए जाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा और संस्कृति के नाम पर विवादों के रूप में अनेक खतरे विद्यमान हैं।

इन सबके बावजूद भारत ने अभी तक अपनी राष्ट्रीय एकता को बनाए रखा है। विभिन्न राज्यों के बीच विषमताओं के बावजूद स्थिति हमेशा नियंत्रण में रही है। अनेक क्षेत्रीय पार्टियों अथवा किसी एक राज्य पार्टी का राज्य में दबदबा रहा है। इन दलों ने अनेक बार राष्ट्रीय स्तर की पार्टियों के साथ गठबंधन से केन्द्र में भी सत्ता का आनन्द लिया है। अनेक बार ये दल अखिल भारतीय स्तर पर राष्ट्रीय दलों के साथ गठबंधन के भी अंग रहे है।

साम्प्रदायिकता राष्ट्रीय एकता के लिए सबसे बड़ा खतरा है। भारत एक धार्मिक विविधता वाला देश है। यदि विभिन्न धार्मिक मान्यताओं वाले लोग शान्ति और सद्भाव के साथ मिल कर रहेंगे, तब ही भारत विकास करेगा और समृद्ध बनेगा। अनन्तकाल से मिली–जुली संस्कृति भारतीय सभ्यता की पहचान रही है। भारत की सांस्कृतिक विरासत तभी संरक्षित रह सकती है, जब हमारी सभ्यता की धर्मनिरपेक्ष परम्परा को विकसित और पल्लवित होने का अवसर दिया जाय। इसके अलावा जनसाधारण में यह विश्वास पैदा करना होगा कि धार्मिक सहनशीलता और एक दूसरे के धर्म के प्रति सम्मान के द्वारा ही भारत के बहुलवाद को बनाए रखा जा सकता है।

अभ्यास : सही अथवा गलत।

1. भारत अनेक भाषा, क्षेत्र, धर्म, जाति एवं संस्कृतियों वाला समाज है।
2. भारत की राष्ट्रीय एकता को जाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा, और संस्कृति के नाम पर विवाद के रूप में अनेक खतरे हैं।
3. राष्ट्रीय एकता के लिए सबसे बड़ा खतरा साम्प्रदायिकता है।

उत्तर : 1. सही 2. सही 3. सही

3.10 साम्प्रदायिकता

साम्प्रदायिकता शब्द का बहुधा उपयोग होता है। यह शब्द बड़ा आसान या निश्छल प्रतीत होता है, लेकिन यह अत्यन्त विरोधाभाषी शब्द है। यह 20वीं शताब्दी में विभाजन का सबसे बड़ा कारण बना और इसी की वजह से सन् 1947 में भारत का विभाजन हुआ। विपिन चन्द्र (1993) का कहना है कि सम्प्रदायवाद एक ऐसा मत या विचारधारा है, जो एक के बाद एक चरण में तीन मूलभूत तत्वों या सिद्धान्तों पर कार्य करता है।

1. पहले चरण में यह इस दृष्टिकोण का प्रचार करता है कि एक ही धर्म के अनुयायी एक समान धर्मनिरपेक्ष हित रखते हैं। दूसरे शब्दों में, किसी भी एक धार्मिक समुदाय के सामाजार्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक हित एक जैसे होते हैं। उदाहरण के लिए एक हिन्दू जमींदार और एक हिन्दू भूमिहीन श्रमिक दोनों के हित एक जैसे होते हैं, क्योंकि दोनों हिन्दू (अथवा मुस्लिम या सिख, जैसा भी मामला हो) हैं। यह इस विचारधारा पर जोर देता है कि सामाजिक–राजनीतिक समुदाय धर्म पर आधारित होते हैं।

2. साम्प्रदायिक विचारधारा का दूसरा चरण इस विचार पर आधारित होता है कि एक ही धार्मिक समुदाय के अनुयायी के धर्मनिरपेक्ष हित यानि सामाजार्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक हित दूसरे धर्म के अनुयायियों के हितों से भिन्न होते हैं। दूसरे शब्दों में इसका तात्पर्य यह है कि मुस्लिमों के हित हिन्दुओं के हितों के समान और हिन्दुओं के हित मुस्लिमों के हितों के समान नहीं होते हैं।

3. साम्प्रदायिकता के तीसरे और अन्तिम चरण में यह तर्क दिया जाता है कि विभिन्न धार्मिक अनुयायियों के धर्मनिरपेक्ष हित परस्पर मेल नहीं खाते हैं और विद्वेषी होते हैं। इस चरण में साम्प्रदायिकतावादियों का तर्क होता है कि हिन्दू और मुस्लिम एक दूसरे के साथ सद्भावपूर्ण तरीके से मिल–जुल कर नहीं रह सकते हैं, क्योंकि उनके साम्प्रदायिक हित एक दूसरे के प्रतिकूल हैं। इस प्रकार धर्म को किसी समुदाय विशेष या धार्मिक समूह के धर्म निरपेक्ष हितों को तय करने का कारक माना जाता है। धर्म व्यक्ति विशेष की पहचान में निर्धारक कारक बन जाता है। इस तथ्य को नकारा जाता है कि इस दुनिया में मनुष्य की अनेक पहचान होती हैं और उसका धर्म उसकी पहचान तथा धर्म निरपेक्ष हितों का मानक (बैंचमार्क) बन जाता है। किसी मनुष्य की उसकी जाति, क्षेत्र, देश, महाद्वीप आदि के रूप में भी पहचान हो सकती है। उदाहरण के लिए, एक राजस्थानी ब्राह्मण राजस्थान में ब्राह्मण कहा जायेगा, भारत के किसी अन्य राज्य में राजस्थानी कहा जाएगा, किसी अन्य एशियाई देश में भारतीय और यूरोप या अमरीका में एशियाई कहा जाएगा। इस तरह स्थान बदलने के साथ–साथ व्यक्ति विशेष की पहचान बदलती रहती है।

हम कह सकते हैं कि ये तीन चरण हितों की गलत अवधारणा पर आधारित थे और वास्तविकता से कोसों दूर थे। साम्प्रदायिक चश्मे से चीजों को देखने से धार्मिक पहचान अन्य प्रकार की पहचानों पर हावी हो जाती है और यहीं से साम्प्रदायिकता की शुरूआत होती है।

भारत में सम्प्रदायवाद धार्मिक नहीं बल्कि राजनैतिक मुद्दा था, औपनिवेशिक ताकतों के बल पर साम्प्रदायिकता का शैतान टिका हुआ था। ''बाँटो और राज करो'' की ब्रिटिश नीति की आधारशिला पर साम्प्रदायिकता के सिद्धान्त को प्राधान्यता मिली। सन् 1857 के विद्रोह के बाद अंग्रेजों ने महसूस किया कि अपने लक्ष्यों को हासिल करने में उन्हें सबसे बड़ा खतरा हिन्दू–मुस्लिम एकता से होगा। इसलिए सन् 1857 के विद्रोह के बाद के शुरूआती वर्षों में उन्होंने हिन्दुओं को संरक्षण दिया और उसके बाद उन्होंने मुस्लिमों को संरक्षण देना शुरू कर दिया, ताकि दोनों समुदायों के बीच दरार पैदा

की जा सके। इसके बाद ''बाँटो और राज करो'' की साम्राज्यवादी नीति को कारगर तरीके से लागू किया गया ताकि सन् 1857 जैसे विशाल विद्रोह की पुनरावृत्ति न हो।

विपिन चन्द्र (1993) का तर्क है कि साम्प्रदायिक विचारधारा पहले चरण से शुरू होती है। इस चरण में लोगों ने स्वयं को राष्ट्रवादी हिन्दू या राष्ट्रवादी मुस्लिम आदि के रूप में, न कि केवल राष्ट्रवादी के रूप में अभिव्यक्त किया। हालांकि उन्होंने साम्प्रदायिकता के दूसरे और तीसरे चरण का बहिष्कार किया। दूसरे चरण अथवा मध्यमार्गी या उदार सम्प्रदायवाद में, हालांकि व्यक्ति साम्प्रदायिकता में विश्वास रखता था और इसका पालन करता था, लेकिन वह अब भी कुछेक लोकतांत्रिक, राष्ट्रवादी, उदार एवं मानवतावादी मूल्यों का समर्थन करता था। हालांकि वह धर्म आधारित समुदायों में मतभेदों को महत्व देता था, लेकिन सार्वजनिक तौर पर वह यह मानता और स्वीकार करता था कि इन अलग–अलग साम्प्रदायिक हितों को राष्ट्र के सर्वांगीण हितों तथा भारत को एक राष्ट्र के रूप में निर्मित करने के हितों के अन्तर्गत धीरे–धीरे समायोजित किया जा सकता है। सन् 1937 से पहले अधिकांश सम्प्रदायवादी मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा, सन् 1925 के बाद अली ब्रदर्स, मदन मोहन मालवीय, मोहम्मद अली जिन्ना, लाला लाजपत राय और सन् 1922 के बाद एन.सी. केलकर, इन सभी ने उदारवादी साम्प्रदायिक ढाँचे के अन्तर्गत कार्य किया।

तीसरे चरण में भय और नफरत पर आधारित चरम साम्प्रदायिकता नजर आती है, जो अपने राजनीतिक विरोधियों के खिलाफ आक्रामक और वैमनस्य की भाषा का उपयोग करती है। इस चरण में साम्प्रदायिकतावादियों ने उद्घोषित किया कि हिन्दू–हिन्दू संस्कृति, पहचान, धर्म, सम्मान और मुस्लिम–मुस्लिम संस्कृति, इस्लाम और पहचान को एक दूसरे के धर्म के द्वारा समूल नष्ट किये जाने का खतरा है। इसके अलावा साम्प्रदायिकतावादियों का तर्क था कि हिन्दू और मुस्लिम दो राष्ट्र (दो राष्ट्र का सिद्धान्त) हैं और इनके विराधाभासों को नहीं सुलझाया जा सकता तथा दो अलग–अलग राष्ट्रों के रूप में रहना ही इनकी नियति है। सन् 1937 के बाद हिन्दू महासभा और मुस्लिम लीग दोनों ने इस नजरिये पर विश्वास व्यक्त किया।

साम्प्रदायिकता और इसके उपस्कर (उपकरण)

एक विचारधारा के रूप में साम्प्रदायिकता ''साम्प्रदायिक भावना'' और तनाव को जन्म देती है और जब इसमें साम्प्रदायिक राजनीति मिला दी जाती है, तो इसका परिणाम होता है – साम्प्रदायिक हिंसा। अतः हम देखते हैं कि साम्प्रदायिकता से फायदा उठाने वाले लोग, अपना हित साधने वाले लोग, अपेक्षित राजनीतिक लक्ष्य हासिल करने की मंशा रखने वाले लोग इसे हथियार की तरह इस्तेमाल करते हैं।

सम्प्रदायवाद उन लोगों के लिए भी एक जीवन ''मूल्य'' की तरह था, जो धर्म पर विश्वास रखते थे तथा जिन्होंने धर्म के आदर्शों को अपने जीवन में शामिल और आत्मसात कर लिया था। साम्प्रदायिक विचारधारा और प्रचार से ऐसे लोगों को कोई लाभ नहीं हुआ, बल्कि साम्प्रदायिकता के एजेंटों ने इन्हें अपनी कठपुतली बना कर अपने हितों के लिए इनका इस्तेमाल किया।

सभी समुदायों के सामाजार्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक हित एक समान थे। वे अपने धर्म के सह–अनुयायियों से भाषा, सामाजिक स्तर, वर्ग, क्षेत्र, सामाजिक सांस्कृतिक प्रथाओं, भोजन और पहनावे के आधार पर अलग थे और इन पहलुओं के नजरिये से अन्य धर्मों के अनुयायियों से सम्बद्ध थे। एक ऊँची जाति के हिन्दू और उच्च वर्ग के मुस्लिम में ज्यादा समानता थी। यहाँ तक कि सांस्कृतिक तौर पर भी समानता थी। साथ ही पंजाबी हिन्दू, सांस्कृतिक रूप से गुजराती हिन्दू की

तुलना में पंजाबी मुस्लिम के ज्यादा नज़दीक था। इसी प्रकार गुजराती मुस्लिम, पंजाबी मुस्लिम की तुलना में गुजराती मुस्लिम के ज्यादा नज़दीक था।

साम्प्रदायिकता के बारे में मिथक

साम्प्रदायिकता एक विरोधाभाषी शब्द है, इसलिए इसके साथ अनेक मिथक जुड़े हैं –

1. साम्प्रदायिकता धार्मिक मुद्दा नहीं है। साम्प्रदायिकता धार्मिक मतभेदों का परिणाम है। हिन्दू और मुसलमानों के बीच धार्मिक मतभेद मध्यकाल के दौरान भी मौजूद थे, लेकिन औपनिवेशिक काल में ही इन पर साम्प्रदायिकता का रंग चढ़ा।
2. साम्प्रदायिकता भारतीय समाज में अन्तर्निहित नहीं थी। आधुनिक काल में कुछ विशेष परिस्थितियों और ताकतों के प्रसार (परम्यूटेशन) ने साम्प्रदायिकता को जन्म दिया। यह औपनिवेशिक शासन के दौरान राजनीतिक और आर्थिक घटनाक्रमों का फायदा उठाने का प्रयास करने वाली साम्राज्यवादी सोच और विचारधारा का परिणाम है। दूसरे शब्दों में, यह अनेक कारकों के समूहीकरण (मिल कर एक होने) का परिणाम है। अतः साम्प्रदायिकता का प्रादुर्भाव और पोषण समकालीन सामाजार्थिक ढांचे ने किया।

साम्प्रदायिकता और धार्मिक असहिष्णुता से निपटना

वर्तमान समय में एक महत्वपूर्ण कार्य साम्प्रदायिकता की अमिट बुराई से निपटना है। इस मुद्दे से तत्काल ऐसे तरीके से निपटने की आवश्यकता है ताकि इससे भारतीय समाज के धर्मनिरपेक्ष ताने–बाने को नुकसान न पहुँचे। प्रत्येक भारतीय की व्यक्तिगत रूप से और सामूहिक रूप से यह जिम्मेदारी है कि वह अपने साथी भारतीयों का विश्वास करे और किसी भी आधार पर भेदभाव पैदा न करे। राज्य का भी यह दायित्व है कि वह ऐसी नीतियों और कार्यक्रमों का अनुकरण करे जो देश में साम्प्रदायिक सद्भाव को बढ़ावा देती हैं। साथ ही मीडिया, प्रिंट मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया भी समाज में साम्प्रदायिक सद्भाव का माहौल पैदा करने में अपनी भूमिका निभाए और सहयोग दे। वर्तमान काल में सोशल मीडिया की भी अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका है, क्योंकि बहुत से संदेश इसी मंच पर परिचालित (सर्क्यूलेट) होते हैं और यह मीडिया समाज में सभी स्तरों पर समरसता (सद्भाव) लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

अभ्यास : सही अथवा गलत

1. आधुनिक काल में कुछ विशिष्ट परिस्थितियों और ताकतों के संयोजन की वजह से साम्प्रदायिकता का जन्म हुआ।
2. साम्प्रदायिकता एक धार्मिक मुद्दा है।
3. ''बाँटो और राज करो'' की ब्रिटिश नीति साम्प्रदायिकता के सिद्धान्त के लिए प्रासंगिक नहीं थी।
4. सभी धार्मिक समुदायों के सामाजार्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक हित अलग–अलग होते है।

उत्तर : 1. सही 2. गलत 3. गलत 4. गलत

3.11 नशे की लत

नशीले पदार्थों का सेवन समकालीन समाज की सबसे गम्भीर चुनौती है। युवा राष्ट्र की जीवन रेखा होते हैं। यदि वे ऐसे कृत्यों में लिप्त होंगे, तो इससे न केवल देश का नैतिक ताना–बाना कमजोर होगा, बल्कि युवाओं की पीढ़ी दर पीढ़ियाँ हमेशा के लिए बर्बाद हो जायेंगी। इसका समाज पर

नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। यह असामाजिक व्यवहार, भ्रष्टाचार, चोरी, हिंसा, नैतिक उदासीनता और आपराधिक घटनाओं में वृद्धि का कारण बन सकता है। हाल ही में **उड़ता पंजाब** नामक फिल्म (2016) में इस मुद्दे को प्रभावशाली तरीके से दर्शाया गया था। देश के युवाओं को विभिन्न मीडिया माध्यमों के जरिये नशे की लत के दुष्परिणामों के बारे में जागरूक बनाया जा सकता है। नशे की लत से लोगों को बचाने के लिए देश के कानूनों को सख्त बनाया जाना चाहिये। साथ ही इन कानूनों को कारगरता से लागू भी किया जाना चाहिये ताकि वे समाज को अपना सकारात्मक योगदान दे सकें।

3.12 उपसंहार

आजादी के इतने दशकों के बाद भी गरीबी, बेरोजगारी, असमानता, सुरक्षित एवं स्वच्छ पेयजल की उपलब्धता, अरोग्यता अथवा समुचित स्वास्थ्य सुविधायें लोगों के लिए बुनियादी मुद्दा बनी हुई हैं। जाति के मुद्दे को वोट–बैंक की राजनीति से जोड़ना आम हो गया है। 21वीं सदी के स्वतंत्र भारत में दलितों पर अत्याचार चिंता का विषय बना हुआ है। देश में आतंकवाद के रूप में हिंसा का नया चेहरा गम्भीरतम हो गया है। समकालीन भारत में आतंकी हमलों और आतंकी कृत्यों में जनहानि चिन्ता का विषय है। पर्यावरण क्षरण तथा जलवायु परिवर्तन अथवा ग्लोबल वॉर्मिंग का मुद्दा मानव सहित सभी प्राणियों और वनस्पतियों के अस्तित्व के लिए खतरा बनता जा रहा है। दहेज और घरेलू हिंसा की खबरें लगातार आ रही हैं, इसलिए आज भी समाज में महिलाओं की स्थिति पर प्रश्नवाचक चिन्ह मौजूद हैं। कन्या भ्रूण हत्या भारतीय समाज के लिए एक दूसरा बड़ा खतरा है। बलात्कार के अनेक मामले, पीड़िताओं के साथ अमानवीय कृत्य करने वाले अपराधियों की ''बीमार मानसिक सोच'' की ओर इशारा कर रहे हैं। दिल्ली में 2012 में 'निर्भया केस' नाम से प्रसिद्ध जघन्य कृत्य से पैदा हुई जागरूकता फिर कम होती जा रही है, क्योंकि आज भी भारत में ऐसी ही प्रकृति के अनेक अपराधों की खबरें अब भी प्राप्त हो रही हैं। लोगों की मानसिक सोच बदलने की आवश्यकता है।

लेकिन साथ ही भारत ने कई मामलों में अच्छी प्रगति की है। देश ने 'हरित क्रान्ति' के द्वारा खाद्यान्न में आत्म–निर्भरता हासिल की है। हालांकि इससे कीटनाशकों तथा पानी के जरूरत से ज्यादा उपभोग और मिट्टी में क्षार तत्व की वृद्धि यानि उर्वरकता कम होना, स्वास्थ्य समस्यायें, भू–जल स्तर में गिरावट तथा अमीर और गरीब किसानों के बीच असमानता में वृद्धि के रूप में इसके पर्यावरणीय नुकसान भी नजर आए हैं। इसके अलावा चुनावों में लोगों की सक्रिय भागीदारी से वे अपनी सरकार चुनने में और ज्यादा सक्षम हुए हैं। पिछले दशक में आर्थिक वृद्धि दर भी अच्छी रही है, लेकिन इस वृद्धि दर को साक्षरता, स्वास्थ्य और आरोग्यता से सम्बन्धित मानव विकास सूचकांक में वृद्धि के साथ संतुलित करना होगा। इसके अलावा, पर्यावरण क्षरण को कम करने के लिए पर्यावरण के बारे में जागरूकता पैदा की गई है। भविष्य को ध्यान में रखते हुए विकास केन्द्रित स्थायी विकास के मॉडल का अनुकरण किया जाना चाहिये। व्यवस्थित जागरूकता अभियानों के द्वारा लोगों को नशे की लत के दुष्परिणामों से अवगत कराया गया है।

साम्प्रदायिकता, जातिवाद, अलगाववाद, आतंकवाद तथा कोई भी विभाजनकारी प्रवृत्ति लोकतांत्रिक परम्पराओं के लिए खतरा है और लोकतांत्रिक आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए इन पर लगाम लगाना जरूरी है। सरकारी, गैर–सरकारी संगठनों (एन.जी.ओ.) तथा नागरिकों को चाहिये कि वे देश के समग्र विकास के लिए मिलकर काम करें। यह बदलाव शांतिपूर्ण, लोकतांत्रिक और विधियुक्त (कानूनी) तरीकों से लाया जाना चाहिये।

3.13 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. चन्द्र बिपन एट. अल (1999) इण्डिया आफ्टर इण्डीपेन्डेन्स, पेंगुइन बुक्स, दिल्ली।

2. ज्योति बसु, इण्डिया एण्ड दी चैलेन्जेज़ ऑफ ट्वेन्टी फर्स्ट सैन्चुरी, 30वाँ जवाहर लाल नेहरू मैमोरियल लैक्चर, 13 नवम्बर, 1998, नई दिल्ली, भारत अखबार, दिल्ली मैगज़ीन।

3.

3.14 अनुशंसित साहित्य

1. इण्डिया आफ्टर गाँधी : दी हिस्ट्री ऑफ दी वर्ल्ड्स लार्जेस्ट डेमोक्रेसी, (2008), हार्पर कॉलिन्स, न्यूयॉर्क।

2. जोशी, ललित मोहन एड0 (2004), साउथ एशियन सिनेमा, इश्यू 5–6, लन्दन।

3.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारतीय समाज में पर्यावरणीय चुनौतियों पर एक निबन्ध लिखें।
2. स्वतंत्र भारत में महिलाओं की स्थिति पर चर्चा करें।
4. लोकतंत्र शब्द से आप क्या समझते हैं ? भारतीय लोकतंत्र के समक्ष कौन–कौन सी चुनौतियाँ हैं ?
4. आतंकवाद भारतीय समाज में एक सबसे महत्वपूर्ण चुनौती है। विश्लेषण करें।
5. सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार एक बुराई है, जिसका उन्मूलन किया जाना चाहिये। चर्चा करें।
6. साम्प्रदायिकता का क्या अर्थ है ? क्या यह भारतीय एकता के लिए खतरा है ?